स्वयं विष्णुः सूर्यः सुरपतिरथो सिंह इति किं
गुणैर्नाम्नाप्येषां हरिरिति जनैस्तर्कित-पदम् ।
विभात्येवं येषां स्फुरदुरु-यशोराशिरभितो
नमस्तेभ्यः श्रीमज्जिनहरि-गुरुभ्यो विनयतः ॥५॥

पुरे रोहीशाख्ये जनक-जननी-हर्ष-बहुलं,
महाज्ञाते वंशे जननमिह येषां समभवत् ।
जगज्जातं सर्वं तदनु वत चित्रं सुखमयं,
नमस्तेभ्यः श्रीमज्जिनहरि-गुरुभ्यो विनयतः ॥६॥

सुखाम्भोधि-श्रीमत्सुगुरु--भगवत्पूज्य-पदगा
गृहीत्वा प्रव्रज्यां प्रवचन-सुधास्वाद-सुभगाः ।
प्रसत्तेः पूज्य-श्रीछगन-सुगुरोर्ये जनमता,
नमस्तेभ्यः श्रीमज्जिनहरि-गुरुभ्यो विनयतः ॥७॥

महाराजस्थाने सुजन-बहुले गुर्जरवरे
सुराष्ट्रे वङ्गेऽङ्गे जनपद-विहारं विदधताम् ।
यशोगाथा गीता सुकवि-विबुधैः प्राप्त-सुहर्षै-
र्नमस्तेभ्यः श्रीमज्जिनहरि-गुरुभ्यो विनयतः ॥८॥

(शार्दूल विक्रीडितम्)

इत्थं षट् ख-ख-युग्म-सम्मित-पदे वर्षे सुपौषेऽसितेऽ
ष्टम्यां श्री गुरवः समाधि-सहिताः स्वर्गं गतास्ते मम ।
तीर्थे श्रीफलवृद्धि-पार्श्व-सुपुरे विद्यालय-स्थापकाः
साहाय्यं कलयन्तु साम्प्रत मलं नित्यं कवीन्द्र-स्तुताः ॥९॥

-प्राक्कथन-

मानव जीवन में भोग और त्याग की परस्पर विरोधी भावनाओं का संमिश्रण दिखाई देता है। दोनों के चित्रण से ही चरित्र यथार्थ चरित्र बनता है। यदि एक को छोडकर दूसरे को ही दिखाया जाय तो वह सत्य से परे की अव्यवहार्य चीज होगी। रंगों की विविधतावाला चित्र ही चित्ताकर्षक हुआ करता है, इकरंगा चित्र उतना सुन्दर और सर्वग्राही नहीं होता। विरोधी भावनाओं में समीकरण और सामंजस्य पैदा करने वाले एक तत्त्व आत्मा को जो पहिचान पाता है, वही सम्यग्दर्शन संपन्न मानव महामानव बन कर संसार से उपर उठ जाता है।

इस पुस्तक में ऐसे ही एक महामानव श्रीचन्द्रराज का चरित्र अङ्कित किया गया है। श्रीचन्द्रराज जहां अपार सम्पत्तियों का स्वामी, महान् विजेता और कई अप्सरा जैसी रूपसी कन्याओं का स्वामी था वहां लाखों का दान करने वाला, हारने वालों के साथ उदार स्नेह सद्भाव से बरतनेवाला और संयमी सतों की सेवा भक्ति से त्याग के प्रति अनन्त अनुराग रखने वाला दिखाई देता है।

जीवन एक भव की ही आकस्मिक घटना नहीं हुआ करता। उसके बनने और बिगड़ने में कई जन्मजन्मान्तरों के संस्कार काम करते हैं। प्राकृत चरित्रकार श्रीसिद्धर्षि महाराज ने लिखा है—

अभिप्राय

भगवान श्री महावीरदेव के शासन में स्त्री पुरुष दोनों को सेवा करने का समान अधिकार प्राप्त है। स्त्रियों में जैन साध्वियाँ त्याग-तपश्चर्या और ज्ञान की साधना के क्षेत्र में पुरुषों से किसी भी प्रकार से कम नहीं रही हैं। विदुषी-परमविदुषी साध्वी बुद्धिश्रीजी जैन शासन-गगन की एक परम प्रकाशवाली ज्योति थी। उनका स्थूल शरीर विद्यमान न होने पर भी उनका मूर्तिमान् साहित्य आज भी जनता में स्फूर्तिप्रद प्रस्तुत है। उपाध्यायजी श्री क्षमाकल्याणजी महाराज की संस्कृत चैत्यवन्दन चतुर्विंशतिका का हिन्दी अनुवाद आपने बड़े सुन्दर ढग से किया है, जो मुद्रित हो चुका है। इनकी यह दूसरी कृति श्रीचन्द्र चरित्र हिन्दी साहित्य की शोभा में अपूर्व वृद्धिकारक ही हुई है। इसके प्रकाशन मे प्रेस सम्बन्धी प्रयत्न करने वाले मुनिराज श्री प्रेमसागरजी को मै धन्यवाद दूंगा जिन्होंने पूरी कोशिस करके बारह वर्ष पहिले लिखे हुए इस ग्रन्थ को प्रकाश में लाया। अन्त में मैं पाठकों से प्रेरणा करूंगा कि श्रीचन्द्र चरित्र से जीवन को ऊंचे उठाने वाले आदर्श प्राप्त करें! इत्यलं विस्तरेण

निवेदक :—

बृहद् भट्टारक खरतर गच्छाचार्य

श्री जिनधरणीन्द्रसूरि

जयपुर (राजस्थान)

ध्यान से पढ़ें !

श्री फलोदी पार्श्वनाथ महाविद्यालय मेडतारोड (मारवाड़) में करीब तीन साल से आपके विद्यार्थी–धार्मिक–व्यवहारिक हिन्दी-संस्कृत--इंग्लिश-महाजनी आदि की ऊँचीकोटि की शिक्षा प्राप्त करते हैं। बोर्डिङ्ग में विद्यार्थी भोजन फीस पन्द्रह रुपये देते हैं और बिना फीस के शिक्षा प्राप्त करते हैं। आप अपने लड़कों को शिक्षा पाने के लिये अवश्य भेजें। यहां ये परीक्षाकेन्द्र हैं–१ हिन्दी साहित्य–सम्मेलन प्रयाग–मुनीमी, प्रथमा, विशारद। २–राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्द्धा–प्रारम्भिका, प्रवेशिका, कोविद। ३–संस्कृत हिन्दी विद्यापीठ लखनऊ–संस्कृत परिचय, संस्कृत कोविद, हिन्दी प्रवेशिका हिन्दी प्राज्ञ, प्राज्ञविशारद, प्राज्ञाचार्य। ४–होमियोपैथिक–डाक्टरी कोलेज देहली।

कई गरीब विद्यार्थी बिना फीस दिये भी भोजन पाते हैं। उनका और शिक्षा विभाग का खर्चा संस्था उठाती है। इसलिये दानवीरों से प्रार्थना है कि वे अपने दान का प्रवाह इस मारवाड़ के अति प्राचीन अतिशय-तीर्थ क्षेत्र में बहाकर जीवन में लाभ उठावें।

प्रार्थी :—

श्री फलोदी पार्श्वनाथ महाविद्यालय कमेटी

सेक्रेटरी--जँवरीमल डोसी खजवाना (मारवाड़)

॥ अर्हंनमः ॥

परम पूज्या गुरुवर्या श्रीमती विवेकश्रीजी महाराज साहिबा के पुनीत कर कमलों में

सादर सप्रेम सविनय

समर्पण

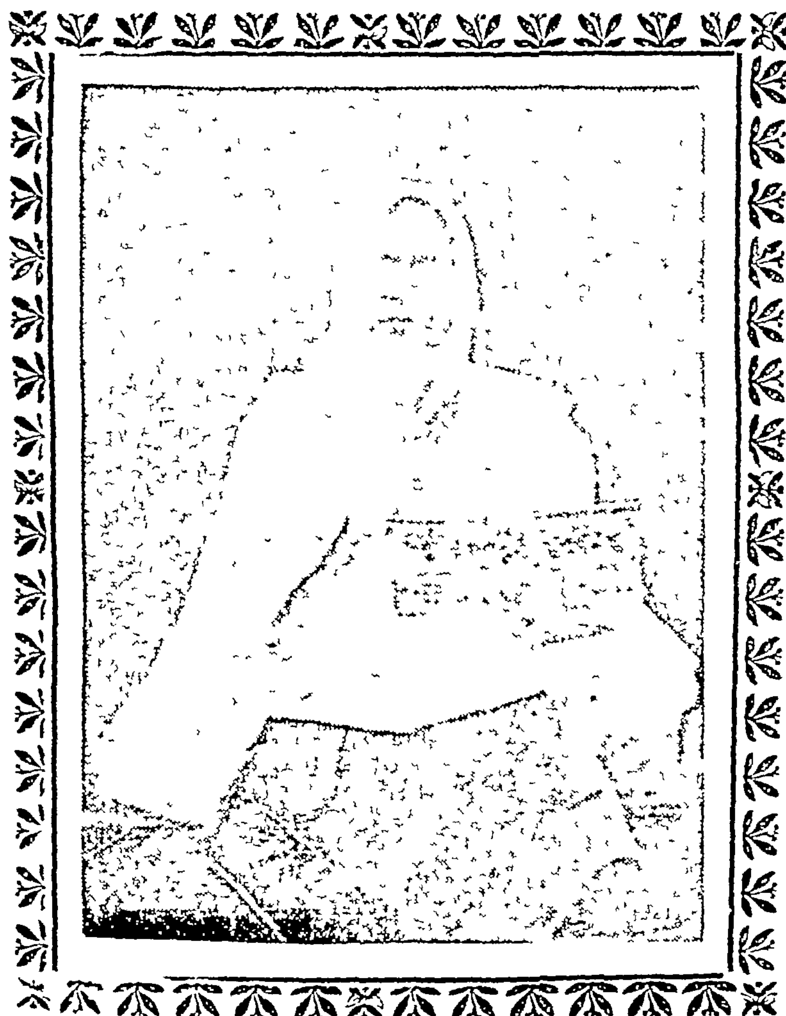
जिनका गुण गौरव सुना, जिनका लूं नित नाम।
उन गुरु के पद-पद्म में पहिले करू प्रणाम॥
जिनका पहिले ध्यान धर, पूर्ण किया यह नेक।
उनही को अर्पण करू, दें वे मुझे विवेक॥
मैं हूं इक लघु बालिका, गुरु चरनन की धूल।
करो दया गुरुदेव सब, मिट जावें भव शूल॥

सद्गुरुपद धूली

बुद्धिश्री

पूज्या परमपूज्या प्रभाते स्मरणीया स्वनाम धन्या स्वर्गीया

परम गुरुवर्या श्री श्री १०८ श्रीमती



श्री विवेकश्रीजी महाराज साहिबा

साध्वीश्रेष्ठा पूज्या श्रीमती दया श्रीजी महाराज

आपश्री शिष्यारत्न



श्रीचन्द्रचरित्र की सफल लेखिका

* श्रीमती बुद्धिश्रीजी महाराज *

ॐ अर्हं नमः

श्रीमत्सुखसागर—भगवज्जिनहरि-पूज्य-परमगुरुभ्यो नमो नमः

साध्वी श्रेष्ठा श्रीमती विवेक श्री जी महाराज की

शिष्या-रत्न परम दयावती श्रीमती

श्री दया श्री जी महाराज

की परम विदुषी

शिष्या

रत्न

श्रीमती बुद्धिश्रीजी महोदया द्वारा हिंदी भाषा में

लिखित एक अतिपौराणिक



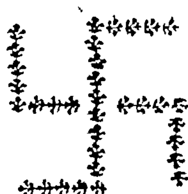
श्रीचन्द्रराजचारित्र



❋ श्री परम गुरुभ्यो नमो नमः ❋



卐 मंगलाचरणम् 卐



(दोहा)

ॐ अर्हं पहिले नमूं सुखसागर भगवान ।
जिन हरि पूजेश्वर नमूं वीर करैं कल्याण ॥



पुण्य विवेक दयामयी जिन वाणी जयकार ।
बुद्धि शुद्धि मेरी करें वाणी-विशद-विचार ॥



महा महिमशाली हुए महाराजा श्रीचन्द ।
यह चरित्र उनका लिखुं पढो सुनो सानन्द ॥



१

आज वैशाली में काफी चहल पहल दिखाई दे रही है। वहाँ के निवासी सुन्दर वस्त्रालंकारों को धारण कर उत्तरासंग किये शीघ्रता से नगर के बाहिर चले जारहे हैं। चलिये! पाठकगण! हम भी इनके साथ चलें, और जिन पूजनीय महात्मा के दर्शन करने को ये लोग इतने उत्साह एवं उमंग में दौड़े चले जारहे हैं, उनके दर्शन कर हम भी कृतार्थ बनें।

नगर के बाहिर ईशान कोण में विशाल उपवन है, जो नाना प्रकार के आम्र, जामून, कदम्ब, नींबू, नारंगी, अनार, अमरूद आदि फल वाले वृक्षों, तथा बकुल चम्पा, कोरंट आदि पुष्प वाले तरुओं एवं मालती, यूथिका, रजनी आदि लताओं के मंडपों से नन्दनवन के साथ स्पर्द्धा कर

रहा है। सभी वृक्ष फलित और कुसुमित हो रहे हैं। क्योंकि आजकल ऋतुराज वसन्त का आगमन हो रहा है, और प्रातः कालीन मन्द सुगन्धमय वायु ने उसके रूप सौन्दर्य्य एवं मधुरिमा को द्विगुणित कर दिया है, मानों अति मधुर रसालरस में अमृत घोल दिया हो, और उधर देखियें! उस ऊँचे आम्र वृक्ष पर बैठी कोयल पंचम स्वर में आलाप लेती हुई प्रकृति को मुखरित बना रही है। जरा इधर भी दृष्टिपात करियें! पुष्पों वाले पौधों की ओर मधुकरों के समूह सुमनों की मधुर गन्ध से आकर्षित हो लपके चले जारहे हैं।

वह सामने ऊँचा अशोक वृक्ष है, उसके अधो-भाग में तपोधन महामुनियों से घिरे हुए देवरचित स्वर्ण कमल पर भगवान् महावीर के प्रथम गणधर उज्ज्वल गौरवर्ण भव्य शरीर प्रशस्त ललाट और शान्त मुख मुद्रा वाले भगवान् इन्द्रभूति गौतम स्वामी विराजमान है। अहा कैसी पवित्र मूर्त्ति है। त्याग और तप ही जैसे शरीर धारण किये बैठा हो। उनके पुनीत पादपद्मों के निकट ही वैशाली के गण—तन्त्राधिपति परमार्हत महाराजा चेटक म. से बैठे हैं। पास ही उनका परिवारवर्ग एवं नगर प. गण अपने २ योग्य स्थानों पर बैठे हैं।

गणधर महाराज श्री गौतम स्वामीजी ने राजा प्रजा को लक्ष्य करके धर्मदेशना देते हुए फरमाया—

देवानुप्रियों ! धर्म, दान, शील, तप और भाव रूप से चार प्रकार का होता है। उन चारों में भी इच्छारोधन रूप तपोधर्म आत्मविकास में सर्वाधिक लाभदायक माना गया है। शास्त्रों में उसके अनेक भेद बताये गये हैं। उनमें श्री "आयंबिल वर्द्धमानतप" निकाचित कर्मों का भी नाश करने वाला है। उसका स्वरूप इस प्रकार है:—

एगाइआणि आयंबिलाणि इक्केक्क वुड्ढिमंताणि।
पज्जन्तमब्भतट्ठाणि, जाव पुण्णं सयं तेसिं॥
इयमंबिलवड्ढमाणं, नामं महातवचरणं।
वरिसाणि तव चउदस, मास तिगं वीस दिवसाणि॥

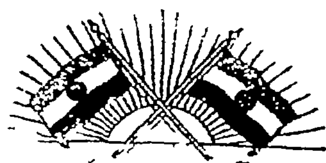
अर्थात्—एक आंबिल एक उपवास, दो आंबिल एक उपवास, तीन आंबिल एक उपवास यावत् सौ आंबिल एक उपवास हो तब यह तप पूर्ण हो जाता है। यह आंबिल वर्द्धमान तप लगातार करे तो चौदह वर्ष तीन मास और बीस दिन में पूरा होता है।

ज चंदणेण तइया, भविअं अइ गरुय वद्धमाणतवं।
तस्स फलेण हुओ, सोइ सिरिचन्द निवो सया सुहिओ॥"

अर्थात्—ऊपर बताये हुए उस बड़े भारी वर्द्धमान

आयंबिल तप को चन्दन नाम के एक भाग्यशाली पुरुष ने आराधन किया। उससे वह भाग्यशालो चंदन महाराजा श्रीचन्द्र हुए। वे ही श्री चन्द्रराज महाराज्य के सुख भोग को पाकर उतरोत्तर मोक्ष सुख के अधिकारी हुए।

महाराजा चेटक ने बड़े विनीत भाव से श्री गौतम स्वामी जी से पूछा भगवन् !-श्रीचंद्रराज महाराजा कौन हुए ? उनके पवित्र चरित्रामृत का पान आप श्री के पुनीत मुखारविन्द से करने की हमारी उत्कट अभिलाषा है। क्या आप दयालु हम पर दया करके फरमायेंगे ? इस प्रार्थना को लक्ष्य करके श्री गुरु गौतम स्वामी जी महाराज ने जो श्री चंद्र चरित्र फरमाया उसका पाठक अगले अंकों में रसास्वाद लें।



२

प्राचीन काल के भारतवर्ष में कुशस्थलपुर नाम का एक बड़ाभारी सुन्दर नगर था। उसमें एक लाख गाँवों पर शासन करने वाले न्यायी प्रतापी यशस्वी श्री प्रताप सिह नाम के महाराजा राज्य करते थे। उनके अंतःपुर में रूप-सौन्दर्य-शीलादि सद्गुणों से अप्सराओं को जीतने वाली पांच सौ दिव्य राणियाँ थीं उनमें मुखिया पट्टराणी जयश्री नाम की थीं। उनके जय, विजय, पराजय, और जयंत नाम के चार राजकुमार थे। एक करोड सुभट, दश लाख घोड़े, दश हजार हाथी और उतने ही रथों से सम्पन्न उनका सैन्य बल था। मंत्री, महामंत्री, सामंत आदि प्रशस्त साधनों से श्रीमान् प्रतापसिंह सुचारु ढंग से राज्य का पालन करते थे।

एक दिन महाराजा अपनी सुविशाल राज सभा में विराजमान थे। उस समय प्रति हारी द्वारा आज्ञा-प्राप्त एक सार्थवाहने उस सभा में बड़े अदब के साथ प्रवेश किया। शिष्टाचार के बाद महाराजा ने उससे परिचय पूछा तब उसने कहा कि देव ? मैं दीपशिखा का रहने वाला हूं। मेरा नाम वरदत्त है। व्यापार के निमित्त मेरा यहां आना हुआ है। आज आपके दर्शन पा मैं कृतार्थ हुआ हूँ।

महाराजा प्रतापसिंह ने आगंतुक व्यापारी का स्वागत करते हुए पूछा कि क्या आप अपनी उस दीपशिखा नगरी का परिचय भी देंगे ? सार्थवाह वरदत्त ने बड़ी प्रसन्नता से कहा क्यों नहीं। देव ? ऐसे तो भारतवर्ष में कई नगर हैं परन्तु दीपशिखा का ठाठ अपूर्व है। देवाधिक सौन्दर्य को धारण करने वाले स्त्री-पुरुषों से वह इन्द्रपुरी को भी मात देती है। भगवान के मंदिरों से कोट और बुर्जों से एवं राज महलों से शोभायमान इस नगरी के समान दूसरी कोई नगरी शायद ही कहीं होगी ? जिसके बीच में चार दरवाजों वाला, कनक कलशों से मंडित श्री आदि नाथ भगवान का एक बड़ा ही रमणीय विशाल जैन मंदिर है। जो उसे तीर्थ स्थान का महत्व प्रदानकरता है।

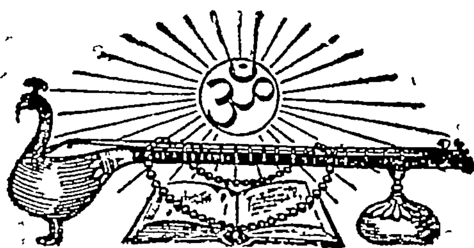
चारों दरवाजों से प्रारम्भ होकर चारों दिशाओं में दुकानों की श्रेणियों से विराजित चार बड़ी सड़कें जगह जगह चौराहों से मेल खाती हैं।

दीपशिखा के ईशान कोण में राज वर्गियों के अग्नि-कोण में व्यापारियों के वायु कोण में क्षत्रियों के और नैऋत्य कोण में सब प्रजाजनों के निवा-स्थान बने हुए हैं। उसके बाहिर पत्थरों से बंधा हुआ कमलों से राज हंसों से विराजित एक बहुत बड़ा पद्म सरोवर नाम का तालाब बना हुआ है। जगह जगह मधुर स्वादिष्ट जल से पूर्ण बावड़ियां कुएँ प्याउ एव फल फूलों से लदे पड़े पेड़ पौधों वाले हरे भरे उद्यान नगर की शोभा को चौगुनी बढ़ा रहे हैं।

हे महाराज ! दीपशिखा की तारीफ मुंह से नहीं की जा सकती। देखने से ही पता चलता है कि कैसी है वह ? अच्छा होता यदि आप वहां पधार कर उसे देखते। मैं मानता हूँ आपके आतिथ्य-सत्कार को करने में दीपशिखा के निवासी हमें भी बड़ा आनन्द प्राप्त होगा आप एक बार जरूर २ वहां पधारें।

इस प्रकार व्यापारी वरदत्त द्वारा दीपशिखा की विशिष्ट तारीफ को सुन कर एवं उसके भाव पूर्ण आमंत्रण

का खयाल करके महाराजा प्रतापसिंह का चित्त वहां जाने के लिये उत्कंठित हो गया । कई दिनों के बाद उसी उत्कण्ठा से प्रेरित हो देश दर्शन के बहाने अपनी अंग रक्षक सेना को तैयार होने की आज्ञा दी । बात की बात में सारी सामग्री जुट गई । भारी उत्साह के साथ अपने सामन्तों के व योग्य मंत्रियों के साथ दीपशिखा की दिशा में महाराजा ने प्रस्थान कर दिया ।



३

दिशाएँ शान्त हों। वायु अनुकूल बहता हो। आकाश निर्मल हो। पक्षी मधुर बोलते हों। ये सब भावी की शुभ सूचनायें हैं। महाराजा प्रतापसिंह भावी की मंगल प्रेरणा से प्रेरित हुए, अपने लक्ष्य-दीपशिखा की तरफ अबाधगति से जा रहे थे। मार्ग में आये हुए सुरम्य वनस्थल ने फिर भी उन्हें कुछ समय के लिये अपनी मनोरम लीला दिखाने के लिये रोक ही लिया।

महाराजा की आज्ञा से तंबू डाल दिये गये। विश्राम के लिये हाथी घोड़े खोल दिये गये। अपने २ डेरों में सभी आराम करने लगे। बढिया कीनखाब के बने तंबू में जिसमें मखमली फर्श और इरानी कालीनें बिछी हुई थी जो चारों ओर रेशमीन रस्सियों से चांदी के खूंटों मे

बंधा हुआ था उसमें एक रत्नजटित सुवर्ण पलंग पर लेटे हुए महाराजा अपनी थकावट को दूर कर रहे थे । सुन्दर जरी की पोशाक पहने हाथों में सोने चांदी के दण्ड लिये द्वार-पाल मौन मुद्रा में खड़े थे । डेरे के चारों ओर हाथों में नंगी तलवारें लिये हुए सेना के चुने हुए सैनिक पहरा लगा रहे थे ।

चारों ओर का वातावरण शान्त था । कभी २ आम के पेड़ों पर बैठी हुई मदमाती कोयल की कूक और मकरंद के लोभी भँवरों की गूंज कुछ क्षण के लिये शान्ति को अवश्य भंग कर देती थी । ऐसे प्रसंग में कोई चार कलावान् द्वारपाल के पास आकर बोला कि हम महाराज के दर्शन चाहते हैं । उनकी इस बात से प्रेरित हो द्वार-पाल ने महाराज को सूचित किया । महाराजा प्रतापसिंह गुणियों का सामादर करने वाले थे, अतः उन्हें अपने पास लाने की आज्ञा देदी । राजाज्ञा से वे चारों बड़े विनीत भाव से महाराजा के पास पहुँचे । स्वागत-शिष्टाचार के बाद महाराजा ने उनसे परिचय पूछा, तब उन कलाकारों ने अपनी ओज भरी वाणी से निवेदन किया, कि महाराज ! हम श्री गुणन्धर कलाचार्य के शिष्य हैं । आपके श्री चरणों की सेवामें रहना चाहते हैं । हम में से एक पक्षियों

। भाषा जानने वाला, दूसरा स्वामी के चित्त को पहचानने ाला, तीसरा स्त्री-पुरुषों के लक्षणों को समझने वाला ौर चौथा रथ को चलाने की कला में प्रवीण है।

महाराजाने कलाकारों को बड़ी प्रसन्नता के साथ अपने पास रख लिया। ठीक है गुणों का आदर कहां नहीं होता ? कहा भी है—

"गुणाः पूजा-स्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः"

अर्थात् सर्वत्र गुणों की ही पूजा होती है। गुणियों में वय या चिन्ह नहीं देखा जाता।

थकावट से और भोजन आदि कर्मों से निवृत्त होकर महाराजा उस रमणीय वन-प्रदेश में स्वतंत्रता के साथ घूमते हुए प्राकृतिक सौंदर्य को निहारने लगे। निर्मल जल से लहराती हुई नदी प्रवाहों में जल क्रीड़ा का अपूर्व आनंद लेने लगे। अनेक तरह के फल फूलों से लदे हुए पेड़ों की सघन छाया में वन-विनोद करते हुए महाराजा प्रतापसिंह अपने सामंतों मंत्रियों परिचारकों के साथ वापस अपने डेरे में लौट आये।

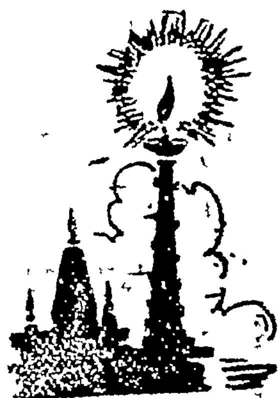
सूर्य अस्ताचल की ओट में छिपने लगा। आकाश लाल पीले बादलों से घिरता हुआ अन्धकार के मुंह में

जाने लगा। तारे मार्ग दिखाने लगे। चंद्रदेव ने भी धीरे धीरे अपनी प्रियतमा चांदनी के साथ अग्रसर हो - वर्षाना शुरू किया। लोग भी आमोद प्रमोद में होते हुए, भावी मंगल की सूचनावाले स्वप्नों के सफल दर्शन के लिये निद्रा देवी की गोद में सो गये।

रात्री बीतने लगी। पौ फटी। लाल साड़ी पहिने प्रकृति की लाडिली बेटी उषा-रानी हाथ में सोने का थाल लिये पूर्व की तरफ से आने लगी। संसार के समस्त प्राणी जगने लगे और अपनी २ भाषा में स्वागत करने लगे। मंगल बाजे बजने लगे। वैतालिक लोग स्तुति पाठ करने लगे। जय २ शब्दों से शिविर गूंज उठा। महाराजा ने भी अंगड़ाई लेते हुये उठ कर प्रातः कालीन आवश्यक कृत्यों से निवृत्त हो आगे प्रस्थान का आदेश दिया। बात की बात में सब तैयार हो गये और वहां से आगे को चल दिये।

महाराजा का सारा साथ मार्ग में आने वाली नदियों में, बड़े २ पद्म सरोवर में, मुक्ता के समान निर्मल जल वाली वावडियों में अपनी रुचि के अनुसार क्रीड़ा करता हुआ, रमणीय वनो-उपवनों में कमनीय लता कुंजों उद्यानों में विहार करता हुआ आगे बढ़ रहा था। रास्ते में

अनेक छोटे बड़े राजागण महाराज प्रतापसिंह के दर्शनार्थ आये, सभी ने अपनी २ योग्यता के अनुसार भेंट न्योछावर की। महाराज ने उन सब को स्वीकार करके उन लोगों का सम्मान सत्कार किया। अनेकों निर्धन याचकों को अनर्गल दान देते हुए अनेकों प्रकार के कौतुकों को देखते हुए वहां तक पहुँच गये जहां से दीपशिखा की दर्शनीय च्छटा दूर २ से दिखाई देती थी।



४

महाराजा प्रतापसिंह का शिविर दीपशिखा से थोडी दूर पर लग गया। प्रकृति अपने माननीय अतिथि के स्वागत में पक्षियों के मंगल गान सुना रही थी, मंद २ हवा के चँवर ढुला रही थी, सूर्य की सुनहरी किरणों से झिल मिलाते हुए वृक्ष की फैली हुई छाया छत्र का काम कर रही थी। पड़ौस में ही पद्म सरोवर निर्मल जल-कमल से महाराजा का पूजोपचार कर रहा था। ऐसे सुखमय समय में भोजनादि कार्यों से निवृत्त होकर महा-राजा प्रतापसिंह की आभ्यन्तर सभा जुड़ी हुई थी। अधिकारी लोग यथा स्थान पर बैठे हुए थे। चारों कलाविज्ञ अपनी २ कलाओं के सम्बन्ध में चमत्कारपूर्ण घटनाओं को सुना रहे थे, इतने में किसी पक्षी के बोलनें की आवाज

सुनाई दी। पक्षियों के स्वर को जानने वाले कलाविद् ने उसी समय विनय के साथ निवेदन किया महाराज! आप को निकट भविष्य में भारी प्रिय लाभ होने वाला है। कलाविद् की बात को सुनकर महाराज प्रतापसिंह अत्यन्त प्रसन्न हुए।

इसी समय दीपशिखा के स्वामी राजा दीपचन्द्र देव अपने मुख्य सामन्तों और मन्त्रियों को साथ लेकर वहां स्वागत के लिये आ पहुँचे। महाराजा का अभिवादन करते हुए बड़े नम्र शब्दों में अभिनंदन किया और कहने लगे—

हे देव! आज आपके शुभागमन से हमारा देश पवित्र होगया है। हमारी चिरसंचित अभिलाषायें आज पूर्ण होगई हैं। आपकी उज्ज्वल कीर्ति कथा से हमारे कान तो पवित्र थे ही, पर आज आपके पुनीत दर्शनों से हमारी आंखें भी कृतार्थता का अनुभव करने लगी हैं। आप जैसे अतिथि का स्वागत करते हुए हम अपना अहोभाग्य समझते हैं। महाराज आइयें हम लोगों पर कृपा करके अपने पदार्पण से दीपशिखा को पवित्र बनाइयें।

राजा दीपचन्द्र देव की विनीत प्रार्थना को सुनकर

महाराजा बहुत प्रसन्न हुए, और उन्होंने इष्टं वैद्योपदिष्टम् के न्याय से उनका अतिथि होना स्वीकार कर लिया। राजा ने बड़ी सज धज के साथ महाराज को नगर में प्रवेश कराया। दर्शनार्थी प्रजा-जनों का समुद्र उमड़ पड़ा। सारे शहर में आनन्द की लहर दौड़ गई। सवारी देखने की लालसा से ललित ललनाओं ने राजमार्ग की सारी ऊँची नीची अट्टालिकाओं को, झरोखों को अलंकृत कर दिया। नाना प्रकार के मंगल बाजे बज रहे थे।

महाराजा प्रतापसिंह कलाविज्ञों के साथ लक्षण संपन्न सफेद घोड़ों से जुते हुए सुवर्ण-सुन्दर रथ में बैठे हुए, सजे हुए मकानों, मन्दिरों, और बाजारों की शोभा को निहारते हुए जा रहे थे। चारों ओर से जयध्वनि उठ रही थी। नागरिक कन्याएँ केसरिये रंगे हुए अक्षत और सुगंधी फूलों को महाराज पर बरसा रही थीं। अकस्मात् महाराजा की दृष्टि एक उत्तुंग राजमहल के झरोखे से टकरा गई। उनने वहां एक अत्यन्त रूपवती कमलमुखी कन्या को देखा। उनका मन वहीं उलझ गया। महाराजा क्षण भर के लिये समाधिस्थ योगी की तरह निस्संज्ञ होगये।

इधर चित्त के भावों को जानने वाले कलावान् ने

महाराज के मन की बात जानकर कहा कि महाराज ! आपके अनुपम पुण्योदय से आपका चिंतित बहुत जल्दी सफल होगा । उस समय सावधान होते हुए महाराज ने कहा मालूम होता है मेरे हृदय को तुम जान चुके हो । बताओ यह किसका महल है ? और यह सुमुखी कन्या कौन है ? तब उस चितज्ञ चतुर ने कहा कि महाराज यह आपके अनन्य भक्त राजा दीपचंद्रदेव की महारानी प्रदीपावती का नवखंडी महल है । उन्हीं की कूख रूप सरोवर में कलहंसी के समान पैदा होनेवाली सर्वाङ्गसुन्दर सूर्यवती नाम की यह उन्हीं की पुत्री है ।

राजा दीपचन्द्रदेव, इस समय महाराज को कौन से अद्भुत समर्पणों से प्रसन्न करूं ऐसा सोच रहे हैं । इस कन्या के लिये भी वे चिंतित हैं कि कौनसे कुलीन गुणी और श्रीसंपन्न वर के साथ पाणिग्रहण कराकर कर्तव्य पालन करूं । अतः इस काम में कोई देरदार नहीं है । दूध शक्कर के समान यह सुखद संबंध होने ही वाला है आप निश्चिंत रहें । कलावान की मन के अनुकूल बातों को सुनकर महाराजा बहुत प्रसन्न हुए । राज मार्गों में होते हुए वहां के तीर्थ रूप भगवान श्रीऋषभदेव स्वामी के दिव्य मंदिर के दर्शन किये । भाव भरे स्तोत्रों से भगवान की

तुति कर महाराजा ने परमानंद पाया। इस प्रकार आगे
ढती हुई सवारी अपने पूर्व निर्धारित स्थान—राजा दीपचन्द्र
व के राजमहल में पहुँची।

राजमहल में अपने आदरणीय अतिथि के सत्कार में
बड़ी सुन्दर सजावट की हुई थी। अद्भुत कला-कौशल से
निर्माण किये हुए गलीचे बिछे हुए थे। उन पर मखमली
गद्दे तकिये लगे हुए थे। पास ही सभा भवन में रत्न जटित
स्वर्ण-सिंहासन महाराजा के लिये लगाया गया था।
अधिकारियों के लिये भी योग्य आसन लगे हुए थे।
सवारी से उतर कर महाराजा प्रतापसिंह राजा दीपचंद्रदेव
के द्वारा सत्कारित सन्मानित होते हुए बड़े ठाठ के साथ
सभा-भवन में रत्न सिंहासन पर आकर बिराजमान होगये।
यद्यपि महाराज सिंहासन पर बिराजमान थे पर उनका मन
मधुकर उस भाग्यवती राज कन्या के मुख-कमल का ध्यान
कर रहा था।

अवसर पाकर चित्रज्ञ कलावान् ने राजा दीपचंद्रदेव
से कहा कि आज यह कितना सुन्दर समय है। महाराजा
प्रतापसिंह के प्रताप से आज के सूर्य का आलोक संबंध
कितना सुहावना प्रतीत होता है। चित्रज्ञ की इस बात में
अपना मानसिक संकेत पाकर राजा दीपचन्द्र ने महाराज

से प्रार्थना की कि हे महाराज ! कुदरत की अकल कला से प्रेरित हो आपके श्री चरणों का संबंध इस देश के साथ इस नगरी के साथ और इसके निवासी हम लोगों के साथ हुआ है यह एक अभूतपूर्व घटना है। अब मैं अपनी राज कुमारी सूर्यवती जो मेरी एकमात्र लाडली बेटी है, उसका संबंध मैं चाहता हूँ आपसे हो जाय। सूर्य और प्रताप के प्राकृतिक संबंध के जैसे यह संबंध संसार में प्रकाश देने वाला हो। मेरी इस भावना का श्रीमान् भी आदर करेंगे।

राजा दीपचन्द्र की इस बात को सुन महाराजा ने बड़ी प्रसन्नता के साथ कहा कि—भला ! प्राकृतिक संबंध की बात का कौन हितैषी आदर नहीं करेगा ? आपके इस स्वाभाविक सद्भाव के लिये हम आपको धन्यवाद देते हैं।

महाराजा की स्वीकृति से दोनों ओर मंगल किये गये। बाजे बजने लगे। याचकों को दान दिया गया। ज्योतिषी लोगों से मुहूर्त निश्चित किया गया। विवाह की खूब जोरों से तैयारियां होने लगी। आखिर वह शुभ घड़ी भी आ पहुँची जिसमें महाराज का विवाह राजकुमारी सूर्यवती के साथ बड़े आनन्द समारोह के साथ संपन्न हो गया। प्रजाजनों और राजकर्मचारियों ने पूरा २ योग दिया। महा-

राजाने सबको यथायोग्य दान-मान-सन्मान-सत्कार से संतुष्ट किया। इस कार्य से जहां महाराज की इच्छा पूर्ण हुई वहां राजा दीपचन्द्र के सिर से एक बड़ा भारी बोझ भी हल्का होगया।

सामुद्रिक—अंगविद्या को जानने वाले कलावान् ने रानी सूर्यवती के सुलक्षणों को देखकर महाराजा से प्रेरणा की कि ये अद्भुत स्वरूप वाली देवी पट्टरानी बनने योग्य हैं। इनके शुभ लक्षण स्वामी के स्वसुर के पिता के पितामहके नाना के एवं पुत्र पौत्रों के छत्रपतित्व को सूचित करते हैं। ये बड़ी योग्य होगी। इनकी कूख में चिंतामणी रत्न के समान दो पुत्रों की उत्पत्ति होगी। सामुद्रिक की इस बात को सुनकर एवं रानी सूर्यवती के प्रत्यक्ष अनुपम गुण गौरव को देखकर महाराजा ने उन्हें अपने अंतःपुर में पट्टराणी पद पर प्रतिष्ठित किया। लोको में यह बात-अहो भाग्य! अहो रूप!! अहो सौभाग्य!!! पूर्व जन्म में बोये धर्म रूप कल्पवृक्ष के ये प्रारम्भिक फल हैं—इस प्रशंसा के रूप में खूब फैल गई।





सूर्य उदयाचल से ऊपर उठता हुआ आकाश के मध्य-प्रदेश में जा पहुंचा था। कड़ी धूप से तपी हुई जमीन लोगों के गमनागमन में बाधा पैदा करती थी। लोगों के शरीर से पसीना निकल कर गर्म हवा के झोंको को ठंडा कर देता था। ऐसे मध्याह्न में महाराजा प्रतापसिंह दीपशिखा के देवोपम वैभव संपन्न सुसराल में आनन्द-मौज कर रहे थे। खस की टट्टियां लगी हुई थी गुलाब जल छिड़का जा रहा था। गुलाब के इत्र की महक दूर २ तक के पदार्थों को सुवासित कर रही थी। महाराजा अपने आराम गृह में आराम कर रहे थे।

इस प्रसङ्ग में राजा दीपचन्द्र देव अपनी भतीजी चन्द्रवती के पति राजा शुभगांग के भेजे हुए

महाराजा की सेवा में उपस्थित हुए। परस्पर में एक दूसरे का अभिवादन करते हुए राजा दीपचन्द्र ने महाराजा से दूत का परिचय कराया। दूत ने राजकीय ढंग से महाराजा को प्रणाम किया। अपने आगमन का कारण बड़े रोचक ढंग से महाराजा की सेवा में इस प्रकार निवेदन किया:—

देव ! यहां से कुछ दूर वासुतिका नाम की एक बड़ी अटवी है। उसमें भीलों का स्वामी शूर नाम का पल्लीपति शासन करता है। आज तक कोई राजा उसे परास्त नहीं कर सका है। उसी अटवी के पश्चिम की ओर सिंहपुर नाम का एक सुन्दर नगर है। उसमें श्री शुभगांग नाम के राजा राज्य करते हैं। राजा दीपचन्द्र देव की भतीजी श्रीमती चन्द्रवतीदेवी उनकी पट्टरानी हैं।

एक समय कुछ चोर मौका पाकर राजा के महल में घुस गये, और रानीजी के एकावली हार को चुराकर ले गये। मालूम होने पर सिपाहियों ने पद चिन्हों के आधार पर उनका पीछा किया, और कुछ दूर पर माल सहित वे पकड़ लिये गये। दण्ड के लिये राजा के सामने उनको पेश किया। राजा ने उन्हें काफी कड़ा दण्ड देने की आज्ञा दी। तरह तरह की कठोर यातनाओं से व्याकुल होकर उन चोरों ने साफ २ कह दिया कि हम शूरपल्ली

पति के अनुचर हैं। उसी की आज्ञा से हमने यहां चोरी की है।

चोरों की इस बात को सुनकर राजा साहब को बड़ा क्रोध चढा। चोरों से एकावली हार को लेकर शहर कोतवाल को यह आदेश दिया कि इन्हें कारागार में बन्द करदो। कोतवाल ने भी "महाराज की जो आज्ञा"— कह कर उन सबको जेल भेज दिया।

जब ये समाचार पल्लीपति को मालूम हुए वह बहुत बिगड़ा! एकदम एक बहुत बड़ी सेना लेकर उसने सिंहपुर को घेर लिया। ऐसी स्थिति में रक्षा का कोई दूसरा उपाय न देखकर मुझे दूत बना कर आपकी सेवा में भेजा है। मैंने भी आपके सामने वास्तविक स्थिति को रखकर अपना कर्त्तव्य पालन किया है। इसके आगे जैसा आप उचित समझें वैसा करें। आप हमारे शिरोमणि हैं।

इतना कह कर दूत के चुप हो जाने पर राजा दीपचन्द्रदेव ने भी उसके वचनों का समर्थन करते हुए कहा महाराज! वास्तव में बात ऐसी ही है। इस दुष्ट पल्लीपति के आतङ्क से यह दीपशिखा भी अत्यन्त भय-भीत है। इसका सारा कारोबार करीब २ ठप्प सा होगया है। लोग इच्छानुसार व्यापार नहीं कर पाते। मार्ग इतने

दुर्गम बन गये हैं, कि यात्री उधर से निकलने का साहस नहीं करते ।

इस प्रकार दोनों की बातें सुनकर महाराजा प्रतापसिंह को आंखें लाल हो गई। भौंहें धनुष की तरह तन गईं। भुजायें फड़कने लगी और अपने दांतों से औष्ठ काटते हुए वे बोले—राजन् ! दुष्ट लोग विना किसी घोर प्रतिक्रिया के शान्त नहीं होते अतः इस जंगली भील को आगे बढ़ने से पहिले पील देना चाहिये। रण भेरी बजाने की आज्ञा दे दीजियें मेरी और आपकी सेनाओं को आक्रमण के लिये तैयार कीजियें।

महाराजा की आज्ञा पाते ही राजा दीपचन्द्र ने प्रधान सेनापतियों को अपनी २ सेना सजाने के लिये आदेश दिया। बस फिर क्या था ? रणभेरी बज उठी रण बांकुरे सिपाही अपने अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित सैनिक वेश में नियत स्थान पर एकत्रित होने लगे। सूर्य की रोशनी में उनके कवच और शस्त्र चमाचम चमक रहे थे। हाथियों की चिंघाड और घोडों की हिनहिनाहट के साथ सुभटों की सिंह गर्जना से दशों दिशायें मुखरित हो उठी। थोडी ही देर में चतुरंगिणी फौजें प्रयाण के आदेश की प्रतीक्षा में तैयार हो गईं। विशाल काय तोपें अपनी

भयानक मूर्तियों से दर्शकों के दिल को दहला देती थीं।

इधर महाराजा प्रतापसिंह और राजा दीपचन्द्र भी अपने सैनिक वेश में वहां आ पहुँचे। उनके सन्मान में तोपचियों ने तोपें दाग कर दोनों का स्वागत किया। सैनिकों ने सैनिक ढंग से दोनों का अभिवादन किया। महाराज की आज्ञा पाते ही सेना ने अबाधगति से सिंहपुर की तरफ कूच कर दिया। सिंहपुर के समीप एक सुन्दर नदी के किनारे शत्रुओं की चोट बचाकर डेरे डाल दिये गये।

भील राजा शूर के गुप्तचरों ने इन समाचारों से अपने स्वामी को परिचित किया। उसने भी अपने बूढ़े भील सरदारों को एकत्रित करके पूछा कि क्या करना चाहिये? उन्होंने कहा बलवान शत्रु के सामने से भाग जाना ही उचित होता है। भील राज शूर को उनकी यह सलाह पसंद न आई। वह स्वयं एक वीर योद्धा था। कायरता पूर्ण भाग जाने की अपेक्षा शत्रु से दो दो हाथ करके रणभूमि में सदा के लिये सो जाना ठीक समझता था। उसने अपने सैनिकों को अपना निर्णय सुना दिया। स्वामी की उत्तेजनात्मक प्रेरणा से प्रेरित हो सभी लड़ने को तैयार हो गये। श्रेष्ठ गंधहाथी की पीठ पर चढा हुआ

भीलराज शूर अपनी शबर सेना के साथ बड़े वेग से समर भूमी में जा पहुँचा।

इधर महाराजा प्रतापसिंह भी अपने शत्रु को परास्त करने के लिये रण-भूमी में आ डटे। ज्योंही उन्होंने अपनी फौज को देखा तब उन्हें मालूम हुआ कि सेना के सारे हाथी मद रहित निद्राग्रस्त से हो रहे हैं। आश्चर्य में डूबे महाराज ने राजा दीपचन्द्र से इसका कारण पूछा कि यह क्या बात है? उनने कहा देव! भीलराजा शूर का हाथी- गंध हाथी है जिसकी गंध से ये सारे हाथी मद रहित हो गये हैं। महाराजा इस बात को सुनकर कर्तव्य मूढ से हो गये।

इसी समय रथ विद्या में निपुण कलावान् ने महाराज से अर्ज की, आप रथ पर सवार होकर मेरी भी कला देखियें। उसकी इस बात को सुनकर महाराजा बहुत प्रसन्न हुए और अपना दिव्य धनुष लेकर रथ पर सवार हो गये। अब क्या था! रण का बाजा बज उठा। युद्ध प्रारम्भ हो गया। रथियों से रथी, पैदलों से पैदल और सवारों से सवार भिड़ गये। तोपें भी भीषण आग उगलने लगी। जिस हाथी के गोला लग जाता था वह वहीं ढेर हो जाता था। घोड़े सवार सहित घायल हो जाते थे और

पैदलों से तो मैदान का मैदान साफ हो जाता था।

सारथी ने महाराजा के रथ को शत्रु की ओर बढाया। महाराजा की बाण वर्षा से परेशान हुआ भीलराजा शूर भागने की चेष्टा में हाथी को प्रेरणा करने लगा पर सारथी ने रथ को उसके चारों ओर इस प्रकार घुमाया कि वह भाग न सका। दोनों वीरों में घोर घमासान युद्ध होता रहा। दोनों एक दूसरे को हराने की चेष्टा में थे, पर अन्त में महाराज ने उसे अपने बाणों से क्षत-विक्षत करके हाथी पर से गिरा दिया और जीवित पकड़ कर उसे लकड़ी के पींजड़े में डाल दिया। उसके जयकलश नाम के गधहाथी को अपने वश में करके महाराजा ने दूसरे भील सामन्तों को भी काबु में किया। बिना नायक की भील सेनायें हताश होकर भाग गई।

चारों ओर विजय दुंदुभियाँ बजने लगीं। जय ध्वनि सुनाई देने लगी घेरा टूटने पर शुभगांग राजा ने भी नगर के बाहर आकर महाराजा को बड़े आदर के साथ प्रणाम किया। महाराजा ने भी उन्हें अनेक प्रकार से सन्मानित करके अपनी उदारता का परिचय दिया।

बाद में उस भीलराजा शूर को अपने साथ लेकर

महाराज ने उस वाखुतिका अटवी में प्रवेश किया। उस पल्ली पर अपना आधिपत्य जमा कर एक मुड़ा (१६मण) मोती और छप्पन करोड़ सोना मोहरें दण्ड रूप में प्राप्त की। शेष सब धन राजा दीपचन्द्र और राजा शुभगांग को दे दिया। पल्ली से प्राप्त बहु मूल्य वस्तुएँ कपड़े और धन सैनिकों में भी यथा योग्य रूप से वितीर्ण किया गया। इस प्रकार विजय-वरमाला पहन कर माहाराजा प्रतापसिंह अपने साथियों के साथ बहुत प्रसन्न हुए।

महाराजा ने अपने सभासदों के सामने उन चार कलाविज्ञों की भूरि २ प्रशंसा की। उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए महाराज ने फरमाया—आप लोगों को कला के कारण ही हमें कन्या का लाभ और विजय प्राप्ति हुई है। आप लोग अपनी परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये हैं। हम आपकी इस सेवा को सदा काल याद रखेंगे। इस प्रकार कृतज्ञता का परिचय देते हुए महाराजा ने उन चारों को बहुमूल्य पुरस्कारों से पुरस्कृत किये।

उस अटवी को महाराजा ने साफ करवा दी। वहीं रानी सूर्यवती के नाम से सूर्यपुर नाम का एक सुन्दर नगर बसा दिया। दोनों राजाओं को बड़े २ भूखण्ड भेंट किये। राजा शुभगांग के आतिथ्य को स्वीकार करते

हुए महाराजा सिंहपुर पधारे। वहां थोड़े दिन विश्राम करके शुभगांग से विदा लेकर राजा दीपचन्द्र देव के साथ पुनः दीपशिखा नगरी में महाराजा लौट आये।

दीपशिखा में विजयी योद्धा के वेष में प्रवेश करते हुए महाराजा का भारी स्वागत हुआ। शूर दस्यु के संताप की समाप्ति से सब की अन्तरात्मा हृदय से आशीर्वाद दे रही थी। पुष्पवृष्टि और जयनादों के बीच महाराज अपने निवास स्थान पर पहुँचे। महारानी सूर्य-वती ने मांगलिक वस्तुओं से भरे थाल को लेकर द्वार पर महाराज को बधाये। विशाल भाल पर तिलक किया। अक्षतों के स्थान पर मोती चिपकाये। आरती उतार कर महाराजा को महल में प्रवेश कराया। दान-मान-सन्मान से संतुष्ट हुई प्रजा ने अपने जीवन को उस रोज़ धन्य माना।



६

मनुष्य के जीवन में जननी और जन्म भूमि की महत्ता अवर्णनीय है। जन्म भूमि का आकर्षण हृदय में इतना अधिक हुआ करता है इसका प्रधान कारण है वहां अपने आदमी रहते हैं। अपनों से रहित देश काणीपीठ कहा जाता। इसी लिये जन्म भूमि के मुकाबले स्वर्ग कमजोर माना जाता है। जैसे कि—

> जनम भोम री जोड़, बुधिया कोइ न कर सके।
> सुरगां भारी खोड़, उठे न कोइ आपणो॥

उसी जन्म भूमी की याद महाराजा को भी आने लगी। अपने श्वसुर राजा दीपचन्द्र देव से कुशस्थल को लौटने की इच्छा प्रकट की। राजा ने कुछ दिन और

ठहरने का अनुरोध किया। मगर उन्होने अधिक ठहरने में अपनी असमर्थता जाहिर करते हुए राजा दीपचन्द्र के प्रति अनुपम आदर की भावना व्यक्त की।

राजा ने अपने सामर्थ्यानुसार अपनी पुत्री को हाथी घोड़े दास दासियां सोने और रत्नों के आभूषण, बहुमूल्य पोशाकें आदि देने योग्य वस्तुओं को दहेज में देकर सैन्द्री आदि सखियों के साथ उसे विदा किया। राजा रानी राज्य के उच्च कर्मचारी और प्रियजन सभी अपनी राजकुमारी महारानी सूर्यवती को पहुँचाने के लिये साथ चले। शास्त्र वचन और लौकिक रिवाज के अनुसार पद्म सरोवर के आने पर सब वहां ठहर गये।

यथास्थान पड़ाव पड़ गया। सभी अपने २ काम में लग गये। महारानी सूर्यवती अपने माता-पिता से दिल खोल कर मिली। अपने प्रियजनों को रुलाती हुई स्वयं आंसू भर लाई। सबने उसे अंतःकरण से अनेकों प्रकार के आशीर्वाद दिये। उसने अपने स्नेहमय हृदय को कड़ा करके अपने माता-पिता से अस्फुट स्वर में विदा मांगी।

माता-पिता उस अपनी लाडली बेटी की वियोग व्यथा से विह्वल हो उठे। उन्होंने जिसे आज तक प्यार से पाला पोसा था, जिसे देखकर वे फूले न समाते थे,

जिस पर वे प्राणों को भी न्योछावर करने में नहीं हिचकिचाते थे, वही आज उनके स्नेह बन्धन को ढीला कर उनसे प्रथमबार विदा हो रही थी।

दृश्य बड़ा करुणोत्पादक था। सबकी आंखों में आंसू थे। सबकी वाणी मारे सिसकियों के मूक हो गई थी। राज कुमारी माता-पिता के चरणों का अपने अश्रूजल से प्रक्षालन कर रही थी। उसके सिर के बाल माता पिता के नेत्रों से गिरे हुए आंसुओं से गीले हो चुके थे। आखिर राजा ने अपने अन्तरतल को कड़ा करके राजकुमारी के सिर पर हाथ रखते हुए कुलीन स्त्रियों के योग्य शिक्षा देते हुए बोले बेटी !

> शूश्रूषस्व गुरून्कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नी-जने,
> भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मास्म प्रतीपं गमः।
> भूयिष्ठ भव दक्षिणा परिजने भाग्येस्वनुत्सेकिनी,
> यान्त्येवं गृहणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥

गुरुजनों की सेवा करना। सौतों के साथ प्रियसखियों का सा व्यवहार करना। कदाचित् पति द्वारा तिरस्कृत होने पर ईर्ष्या से कभी उनके विपरीत मत चलना। परिजनों में चतुराई से बरतना साथ ही सेवकों पर अनुग्रह रखना। अपने बड़े भाग्य पर कभी गर्व मत करना। ऐसा

करने वाली स्त्रियाँ ही गृहिणी पद के अधिकार को प्राप्त करती हैं। इसके विपरीत आचरण करने वाली दूसरी स्त्रियाँ उभय कुल को लजानेवाली होती हैं।

बेटी! मेरे इस उपदेश को हृदय में सदा धारण रखना। अपने अच्छे आचरणों से उभय कुल की कीर्ति को बढाना। कभी २ हमको भी अपना स्वजन जानकर अवश्य याद करती रहना।

महाराजा प्रतापसिंह की तरफ मुख करके उन्हें भी अपनी बेटी की भोलावण बड़े भाव भरे शब्दों में की। इस प्रकार स्नेह की सरिता बहाते हुए राजा दीपचन्द्र अपनी बेटी को बिदा दे दीपशिखा को ओर परिवार के साथ लोट पड़े। वे सर्वस्व खोये हुए व्यक्ति की तरह बेसुध चले जाते थे। चलते २ रुक गये, घूमकर पीछे की ओर देखा सूर्यवती आंखों से ओझल हो चुकी थी। वे लम्बी और गरम सांस लेते हुए बोले :—

अर्थोहि कन्या परकीय एव
तामद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विसदः प्रकामं
प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा॥

निश्चय ही कन्या-धन पराया-धन है। आज उसे अपने पति के घर भेज कर धरोहर वापस लौटा देनेवाले

के जैसे मेरी अन्तरात्मा अत्यन्त प्रसन्न और बोझ से हल्की हो गई है।

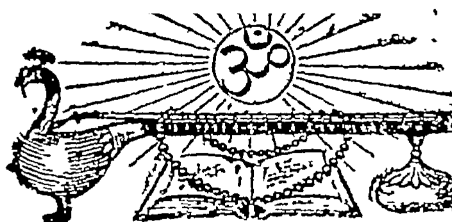
महाराजा प्रतापसिंह महारानी सूर्यवती को साथ लेकर कुशस्थल की ओर चल पड़े। थोड़े ही दिनों में कुशस्थल के बाहरी उपवन में जा पहुँचे उनके आगमन की खुशी में सारा शहर तरह तरह से सजाया गया। भारी उत्सव मनाया गया।। महाराज शुभ मुहूर्त में नई महारानी के साथ नगर में प्रविष्ठ हुए। जनता ने उनका हृदय से स्वागत किया। महाराज नगर के मुख्य राज-मार्ग से होकर अपने विशाल महल में जा पहुँचे। वहां एक बड़ा भारी दरबार लगा और राजकीय रीत रिवाज संपन्न होने पर सब अपने २ घर चले गये।

राज-काज में फिर पहले की ही तरह महाराज व्यस्त हो गये। उनकी प्रशस्त न्याय्य नीति से सारी प्रजा पहले से भी अधिक उन्हें चाहने लगी। अपने प्राचीन पुण्यों के प्रभाव से माननीय भोग भोगते हुए महाराज बड़ी ही निश्चिन्तता से राज-काज चलाने लगे। सच है पुण्य से क्या नहीं होता ?

सुकुल जन्म-विभूतिरनेकधा,
प्रिय-समागम-सौख्य-परम्परा।

नृपकुले गुरुता विमलं यशो,
भवति पुण्य-तरोः फलमीदृशम् ॥

उच्चकुल में उत्पत्ति, अनेकों प्रकार के ऐश्वर्य, विद्वानों का समागम, निरन्तर रहने वाला सुख, राज-कुल में गौरव और निर्मल यश ये सब पुण्य रूपी वृक्ष के ही फल हैं ॥





सुखी-दुःखी भोगी-योगी रोगी-निरोगी धनी-निर्धन ऐसे स्त्री-पुरुषों की टोलियां की टोलियां जिसकी छाती पर पग रखते हुए जाती हैं। जो मूक भाव से सबको अग्रसर होने के लिये मार्ग देती है ऐसी कुशस्थलपुर की सड़क पर उत्सुक आदमियों का झुण्ड जा रहा था। महाराजा प्रतापसिंह के चारों राजकुमार अपने बड़े भाई जयकुमार के साथ अपने महल के झरोखे में इच्छानुसार क्रीड़ा कर रहे थे। उन्होंने सेवकों से पूछा आज इतनी भीड़ क्यों इकट्ठी हो रही है। सेवकों ने कहा स्वामिन्! इन दिनों नगर में एक भारी निमित्त जाननेवाला पण्डित आया हुआ है। उसी के आस-पास आदमियों का यह समूह जा रहा है।

कुतूहलप्रिय राज-कुमारों ने अपने सिपाहियों को भेज कर उस निमित्तज्ञ को अपने पास बुलाया। पारस्परिक स्वागत विधि होने पर निमित्तज्ञ से पूछा— आपका क्या परिचय है? नैमित्तिक ने कहा मेरा परिचय एक कहानी रूप है। आप लोग सुनना ही चाहते हैं तो सुनियें।

यहां से पश्चिम में राजा शुभगांगदेव की राजधानी सिंहपुर नाम का नगर है। उसमें श्रीधर नाम का एक धनी ज्योतिषी था। उसके नागिला नाम की स्त्री थी। उनके धरण नाम का पुत्र था। वहीं प्रियंकर नाम का एक जैन ज्योतिषी रहता था। उसके शीलवती नाम की स्त्री और श्री देवी नाम की पुत्री थी। वह जैन धर्म में अनुरागिणी और परम रूप लावण्य शालिनी थी।

श्रीधर की मांगणी से प्रियंकर ने बड़े ठाठ के साथ सुमुहूर्त में धरण के साथ श्रीदेवी का विवाह कर दिया। प्रियंकर ने शक्त्यनुसार दहेज और कुलोचित शिक्षा देकर श्रीदेवी को ससुराल में विदा की।

श्रीदेवी अपने नये संसार—ससुराल में लज्जा रखती हुई लगन से सारे काम काज करने लगी। फुरसत से धार्मिक कृत्यों में भी उपयोग देने लगी। मित और मधुर भाषण से उसने अपनी ओर से ससुराल वालों को प्रसन्न

करने में कोई कोर कसर नहीं रखी, पर उसकी सासु नागिला क्रोधी, कुटिल और निष्ठुर स्वभाव वाली थी। इसलिये वह कुँए पर रहंट के निरंतर चलते रहने पर भी खट २ करने वाली लकड़ी की तरह खट खट किया करती थी। अकारण ही डांटना डपटना, बुरा भला कहना उसका नित्य कर्म होगया था। सच है बहुओं का जीवन बड़ा ही कष्टमय होता है :—

शय्योत्पाटन-गेहमार्जन-पयः-पावित्र्य-चुल्ली-क्रिया,
स्थाली-क्षालन-धान्य-पेषण-भिदा गोदोह-तन्मन्थने।
डिम्भानां परिवेषणादि च तथा पात्रादि-शौच-क्रिया,
श्वश्रूभर्तृ—ननान्द—देवृविनयः कष्टं वधूर्जीवति॥

शय्या उठाना, घर में झाड़ु लगाना, पानी भरना, चौका लगाना, रसोई बनाना, थालियां धोना, धान पीसना, गायें दोहना, बिलोणा करना, बच्चों को खिलाना पिलाना, बरतन मांजना, और सास पति ननंद एवं देवर आदि की सेवा तथा आज्ञा का पालन करना। इन कामों से ठीक बात है कि बेचारी बहुएँ बड़े कष्ट से संसार में जीती रहतीं हैं।

जिनेश्वर भगवान के वचनों में श्रद्धा रखने वाली वह सास के अत्याचारों से पीड़ित होने पर भी माता-पिता या पड़ौसी उसको कुशल पूछते तो वह यही कहती थी कि मैं सब तरह से सुखी हूं।

इधर उसकी सास उसे दुःख देने पर ही उतारू हो चुकी थी। वह घर की नई पुरानी टूटी फूटी वस्तुएँ अपने पुत्र को दिखाती और बहू के विरुद्ध कान भर २ उसे क्रोधित करती और रुष्ट हुआ वह भी उसे पीटता एवं तरह २ के दुःख दिया करता था। इतना होने पर भी वह कुलीन बहू दूसरों को दोष न देती हुई अपने पूर्व कर्मों के फल को ही इसका कारण मानती थी।

इस प्रकार उसी दशा में रहते उसके कई दिन बीत गये। एक समय रात्री में श्वसुर की अंगुठी घर में कहीं गिर गई। किसी को पता तक न चला। प्रातःकाल जब श्री देवी ने घर में बुहारा लगा कर कूड़े करकट को एक स्थान पर जमा किया तो उसमें वह अंगुठी मिली, और उसको उसने अन्दर के कोठे में रखदी। इसके बाद वह गोबर इकट्ठा करने पशुओं के बाड़े में चली गई।

"प्रभाते कर-दर्शनम्" के नियम से श्वसुर ने दोनों हाथों को मुख पर फेर कर रेखा दर्शन करते समय उंगली में अंगुठी न देख घबड़ाई हुई अवाज से कहा कि क्या करूं ? मेरी तो अंगुठी कहीं गिर पड़ी, क्या किसी ने देखी है ? यह सुन सब एक दूसरे को आपस में पूछने लगे, इधर उधर खोजने लगे पर अंगुठी का पता न चला तब वे सब निराश होकर बोले कि वह तो गई अब

मिलने की नहीं। यह बात बाड़े में स्थित बहू के कान में सुनाई दी, और उसने शीघ्र ही आकर अंगुठी को अन्दर के कोठे से निकाल कर ससुर के हाथ में रख दी। सब प्रसन्न हुए।

नागिला को पता चला तब उसे एक और छिद्र मिल गया। वह चिल्लाकर बोली अरे! जिस घर की बहूएँ ही चोर हों वह घर कहां तक टिक सकता है। ऐसे तो एक२ करके सारी वस्तुएँ चली जायेंगी। अरे लोगों! इसके आचरणों को तो देखो ऐसी बहू तो मुझे किसी के घरमें दिखाई नहीं देती। अरे इसकी धीठाई तो देखो यह अपने पूज्य श्वसुर से भी नहीं चुकी। इसने उनकी अंगुठी भी चुरा ली। क्या करूं! कहां जाऊँ!! मेरी तो कोई बात ही नहीं सुनता। इस राक्षसी ने मेरा सारा घर चौपट कर दिया। यदि मुझे यह पहले से ही ज्ञात होता तो मैं इसके साथ अपने बेटे का विवाह ही न करती।

जब धरण घर लौटा तो मा-नागिला ने उसे खूब बहकाया। सारी बात इस प्रकार कही कि उसका क्रोध भड़क उठा। उसने बिना सोचे समझे उस सती स्त्री को पीटना शुरू कर दिया। डंडे की चोट उसके सिर में बड़े जोर से लगी। सिर फट गया। फिर भी वह श्रीदेवी

समभाव को धारण करती हुई 'णमो अरिहंताणं'—मंत्रको जपती हुई पृथ्वी पर धड़ाम से गिर पड़ी।

यह बात हवा की तरह सारे शहर में फैल गई। किसी ने उसके मां बाप से भी कह दिया। वे भी सिर पीटते रोते चिल्लाते वहां आ पहूंचे। भारी विलाप करने लगे। श्रीदेवी के बूढ़े मां बाप को रोते विलखते देख कर पति धरण की आंखों में भी आंसू आ गये। वह मन ही मन अपने किये पर पछता रहा था। वह भी दुःख के वेग से विलाप करने लगा।

अरे! विना विचारे क्रोध के वश हो मैंने यह कैसा अनर्थ कर दिया। कान के कच्चे मनुष्यों की यही दशा होती है। हे प्रिये! तूने कभी मेरी सेवा से मुख नहीं मोड़ा। कठोर से कठोर आज्ञा को सहर्ष पालन किया। यह अनर्थ मेरी अज्ञानता से हो गया है। तेरा कोई दोष नहीं है। तू सदा शांति-युक्त और क्षमामयी रही है। यह सब मेरा ही दोष है। अरे मुझ अपराधी के अपराध को क्षमा करदे। धरण की हालत बड़ी शोक पूर्ण थी।

इधर लोगों ने नागिला को बहुतेरा धिक्कारा और उसकी तीव्र निंदा की। लोग बोले—यह बड़ी दुष्टा है। श्रीदेवी को इसने बहुतेरा दुःख दिया है। यह

लेकर ही संतुष्ट हुई। विधाता ने ठीक किया जो श्रीदेवी को इस दुष्टा के फंदे से उठा लिया, क्यों कि उसके दुःखों की हद हो चुकी थी।

लोगों में इस प्रकार बातें हो रही थी कि कोई वैद्य उसके भाग्य से प्रेरा हुआ उधर से आ निकला। उसने मंत्रौषधि से अधिवासित जल उस पर कई बार सिंचन किया। कुछ होश आया। फिर भी खतरा दूर न होता हुआ देख वैद्य ने धर्मोपचार करने की मां बाप को सलाह दी। मां बाप भी उसे अपने घर ले गये।

श्री देवी ने भगवान के बचनों पर श्रद्धा रखते हुए आराधना-आलोचना की। चोरासी लाख जीवायोनि से खमतखामणा किये। पुण्य की अनुमोदना की। चतुर्विध संघ ४ ज्ञान मन्दिर ५ जीर्णोद्धार ६ और नये मंदिर निर्माण, रूप सात क्षेत्रों में धन का व्यय किया। संघ भक्ति, नवकार मंत्र का जाप, तपस्या की भावना- मारे जाने वाले प्राणियों को अनुकम्पा से छुड़ाना, ममत्व का त्याग, सम्यक्त्व, ब्रह्मचर्य आदि व्रतों को उच्चारण विधि आदि सुकृत साधना करती हुई पण्डित मरण से सद्गति को प्राप्त हुई।

श्रीदेवी के मां बाप बहुत दिन तक शोक ग्रस्त रहे। आखिर धर्म-ध्यान के आलंबन से अपने विचारों को स्थिर किया। सारे शहर में इस चर्चा के फैल जाने से श्रीधर को बाहर निकलना भी मुश्किल हो गया। धरण भी पत्नी वियोग से दुःखी रहने लगा।





क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों कषायों के चुंगल में फँसा हुआ जीव क्या २ अनर्थ नहीं कर देता ? सब कुछ कर देता है । इसीलिए ज्ञानी विवेकी लोग कषायों से बचते रहते हैं । कषाय ही जीवन को विडंबना पूर्ण बना देते हैं । श्रीधर नागिला और धरण इन्हीं कषायों के चक्कर में पड़कर दुःख पाते हुए अपनी जन्म भूमि को छोड़ने को मजबूर हुए और किसी नये नगर में जा बसे ।

नये नगर में रहते हुए श्रीधर का परिचय बढ़ा । व्यवसाय भी उन्नत हुआ । लक्ष्मी देवता की भी कुछ कृपा हुई । इस हालत में धरण की सादी करने का विचार हुआ । इसी विचार से प्रेरित होकर भद्रंकर नाम के एक ज्योतिषी की लड़की उमादेवी के साथ बात चीत हुई ।

शुभ मुहूर्त्त में धरण ने उमादेवी का पाणिग्रहण किया।

उमा बड़ी ही उद्धत क्रोधी और सबसे अप्रिय भाषण करने वाली थी। घर के काम काज में कभी हाथ नहीं बँटाती थी, और पद २ में घर के मर्म को प्रकाशित करती रहती थी। घर का सारा काम काज सासु-नागिला को ही करना पड़ता था। शेरनी के सामने बकरी की सी दशा उमा के सामने नागिला की थी। उसी के दुःख में दुःखी रहते हुए श्रीधर और नागिला कालान्तर में काल कवलित हो गये। उमा की कपट लीला में धरण भी चौंधिया गया। सब तरह से उसके हृदय में इतना दृढ़ विश्वास पैदा कर दिया कि कहीं संदेह नाम मात्र को भी नहीं रहा। थोड़े ही दिनों में वह उमा का भावुक बन गया।

एक दिन सोमदेव नाम के अपने मित्र के सामने धरण ने अपनी स्त्री उमा की बड़ी तारीफ़ की। उसने कहा भाई तुम जो कहते हो ठीक हो सकता है, परन्तु नीति-शास्त्र में कहा है कि गुरुओं की स्तुति प्रत्यक्ष में, मित्र-बन्धुओं की परोक्ष में, कर्मचारियों की और नौकरों की काम हो जाने पर, स्त्रियों की उनके मरने के बाद में और पुत्रों की तो कभी करनी ही नहीं चाहिये ? कहां तक कहूं। स्त्रियाँ तलवार की धार से भी तेज, हिरण के सींग से भी अधिक टेढ़ी, नदी की तरह नीच गामिनी और

वज्र के समान कठोर हृदय वाली होती हैं। स्त्रियों का मन कहीं होता है, वचन कहीं होता है, और क्रिया में कुछ और ही भाव होते हैं। ऐसी हालत में इनके स्नेह और भोलेपन की क्या व्याख्या करते हो ?

यह क्या कहते हो ? ऐसा धरण से पूछे जाने पर मित्र ने कहा ठीक कहता हूँ। तुम बहुत सीधे हो इतना एक दम सीधा होना भी एक प्रकार से अपराध है। तुम सुनना चाहते हो लो सुनों—तुम्हारी स्त्री उमा कभी घर पर नहीं रहती है। इसने बाहरी प्रेम से तुम्हें वश कर लिया है। उस मायाविनी का तुम से सच्चा स्नेह नहीं है। मेरी बात का विश्वास न हो तो बाहर गांव जाने के बहाने से परीक्षा कर लो।

मित्र की बात से शंकाशील धरण ने उमा को समझा बुझा कर बाहर गांव जाने की आज्ञा ली। स्त्री की आज्ञा से वह अपने मित्र के घर चला गया। दिन भर वहीं ठहरा। साम को मित्र के कहने से चोर की तरह अपने घर में जा छिपा। उस समय उमा बाहर गई हुई थी।

कुछ ही समय के बाद उमा लौट आई। प्रसन्नता से पक्वान्न—रसवती तैयार की। इतने में कोई मनुष्य

गुप चुप उसके घर आया। छिपे हुए धरण ने विस्फारित नेत्रों से उसे देखा। मन में कहने लगा अरे! यह पापी क्षत्रिय रणधीर मेरे घर पर कैसे आया ?

उमा ने घर का द्वार बंद कर रणधीर को प्यार से स्नान कराया। बढिया तेल फुलेल लगाये। वस्त्र पहिनाये बाद दोनों ने तैयार रसवती का रसास्वाद लिया। खा पी कर प्रसन्न हुए। भारी प्रेम और उमंगमे दोनों नेरमण किया। रति खेद से खिन्न दोनों को निद्रा आगई। दोनों को सोया हुआ देख कर धरण क्रोधित होकर नीचे आया। विचारने लगा दोनों को मारना ठीक नहीं। क्यों कि स्त्री को मारने का पाप तो मुझे पहिले ही लग चुका है। ऐसा विचार कर उसने कोतवाल के पुत्र रणधीर को तलवार से मार दिया। स्वयं किंवाड़ खोल कर वहीं आगे होने वाली घटना को देखने के लिये ठहर गया।

इधर रणधीर के खून से लथपथ होने पर उमा जाग उठी। अरे! यह क्या हुआ ? किसी ने इसे मार डाला। ऐसा कहती हुई वह द्वार की ओर देखती है तो द्वार खुला पड़ा था। उसने निश्चय किया कि किसी दुश्मन ने मेरे प्यारे को मार डाला है। उसने तत्काल शोच विचार कर उस मुर्दे और को तलवार को एक मजबूत चादरे में बांध कर

गठरी सिर पर लादे घर से निकल पड़ी धरण भी पछे २ हो लिया। शहर के बाहर किसी शून्य कूप में उस लाश को फैंक कर जल्दी ही घर लौट आई।

घर के बाहर खडे धरण ने अपने मनमें उमा के इस धृष्टता—पूर्ण कुकर्म की जी भर कर निन्दा की। इधर उमा ने घरमें जाकर जल्दी से पक्वान्न आदि को एक बड़े वर्तन में भर कर बाहर निकली, और घर के द्वार मजबूती से बंद कर उस वर्त्तन को सिर पर उठाये चल पडी।

धरण ने गुप्त रीति से उसका पीछा किया जल-मार्ग से नगर की सीमा को पार करके श्मशान में होती हुई, वह एक पहाड की गुफा में जा घुसी। उस गुफा में एक वहुत वडा सुन्दर विशाल भवन था। स्थान २ पर रखी हुई दीपमालाओं से वह जगमगा रहा था। उसके मध्य भाग में एक सुन्दर सिंहासन पर जोगणियों के समूह से घिरी हुई खर्परा नाम की प्रमुख योगिनी विराजमान थी।

उमा को देख जोगणियाँ मारे प्रसन्नता के उछल पडी और उमा आगई इस प्रकार हर्षध्वनि करने लगी। उमाने अपने साथ लाई हुई मिठाइयों द्वारा उन सब को संतुष्ट किया, और फिर सादर नमस्कार करके उस प्रधान योगनी के चरणों में बैठ गई। खर्परा ने इधर उधर की बात चीत के

बाद उमा से पूछा कि क्या तुमने उस हमारे दिये मंत्र की साधना करली ? उमाने उत्तर देते हुए कहा स्वामिनि ? मन्त्र आपकी कृपा से सिद्ध हो चुका है। अब मैं तरूत्पत पेड से उडने की-विद्या चाहती हूँ अगर आप देंगी तो बड़ी कृपा होगी।

खर्परा ने कहा, यदि तेरी यह इच्छा है तो तू मुझे महाबली दे। यह सुन उमाने कहा कि काली चौदस को मैं अपने पति की बली आपको दूंगी। ठीक कह कर योगिनी ने उसे विदा की। रवाना होती हुई उसने योगिनी से वशी करण चूरण मांगा। योगिनी ने पूछा कि पहले दिये का क्या हुआ ? उमाने कहा माँ ? उससे एक आदमी को मैंने वश किया था, पर वह बिचारा आज मर गया। इसी लिये मुझे उस वश्य चूर्ण की आवश्यकता हुई है। उस की याचना से खर्परा ने उसे वैसा ही चूरण दिया। वह खर्परा को नमस्कार कर, वहां से चल कर उसी मार्ग से अपने घर लौट आई।

इधर धरण भी उसके इस प्रकार के चरित्र को देख कर और जोगणियों की बातें सुन कर दिल में बहुत डरा उसके रोम २ खड़े हो गये। कलेजा धक् धक् करने लगा। उसके आश्चर्य की सीमा न रही। उसके हृदय में कभी

वीर रसका कभी बीभत्स रस का संचार होने लगा। हास्य और शृङ्गार रस तो लुप्त प्राय होगये। परम सुखदायी शान्तरस की तरफ झुकते हुए उसने अपनी स्त्री के प्रति घृणा दिखाते हुए कहा कि धिक्कार है इस के कर्मों पर, लानत है इस के विचारों पर, और थू है इस के दुराचारों पर। बली देने के लिये यदि यह वश्य चूर्ण से मुझे वश कर लेगी तो सांकल से बंधी गाय की तरह मैं अन्यत्र कैसे जा सकूंगा ?

इस प्रकार विचार कर वह वहां से सीधा मित्र के घर पहुँचा। मित्र के पूछने पर जो घटनायें घटी थी वे सभी सचाई के साथ उसने कह सुनाई। मित्र ने कहा—हेमित्र ! दुखः, भय, निन्दा से क्या है ? स्त्रियां स्वभाव से ही चंचल होती हैं। कहा भी है:—

> रवि चरिय गह चरियं, ताराचरियं च राहु चरियंच।
> जाणंति बुद्धिमन्ता महिला चरियं न याणंति॥
> जल मज्झे मच्छपयं, आकासे पंखियाण पयपंती।
> महिलाण हियय मग्गो, तिन्हिवि लोए न दीसंति॥

सूर्य-ग्रहोंके-तारा के और राहु के चार को पण्डित लोग जानते हैं पर स्त्रियों को नहीं जान सकते। पानीमें मछलि यों के पदचिन्ह, आकाश में पंखियों के पदचिन्ह

और कुलटा स्त्रियों के हृदय का मार्ग ये तीनों लोक में दिखाई नहीं देते हैं।

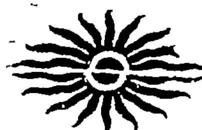
अब तुम क्या करोगे? इस प्रकार मित्र द्वारा पूछे जाने पर गद् गद् स्वर से धरण ने कहा कि मैं इस स्त्री उमा का मूंह देखे विना ही कहीं अन्यत्र चला जाऊँगा। मैं हत्यारा हूँ, पापी हूँ इस लिये अब मैं ज्यादा जिना नहीं चाहता। अब कहीं जाकर शांति से प्राण त्याग करना ही मेरे लिये श्रेयस्कर है।

मित्र ने कहा ऐसा मत करो। अपने घर जाओ। वहां से किसी प्रकार धन ग्रहण करो फिर कहीं जाकर किसी सुविहित गुरु से प्रायश्चित्त करो। नहीं तो जिस प्रकार दूध पीकर नागनी उन्मत्त हो जाती है इसी प्रकार यह उन्मत्त हो जायगी और ओर भी अधिक अनुचित कार्य करेगी।

मित्र की प्रेरणा से धरण डरे हुए भावों से अपने घर गया। पति को आया हुआ देख उमा बडे आदर के साथ वनावटी प्रेम दिखाती हुई एक दम खडी हुई और सम्मुख जाकर बोली प्राणेश! आइयें पधारियें यह विर हानल से संतप्त दासी आपका स्वागत करती है। इस प्रकार कहती हुई पति का हाथ पकड बड़े प्रेम से अंदर ले

आई। यह देख धरण के आश्चर्य की सीमा न रही। वह मन ही मन जल रहा था, फिर भी उसने अपना मनोभाव तनिक भी प्रकट न होने दिया। उल्टा प्रसन्नता पूर्ण विश्वासी के जैसे कुछ इधर उधर की बातें करके अपने काम में लग गया।

इधर रणधीर के पिता ने रणधीर की खोज शरु की। शहर का कोना कोना छान डाला, पर कहीं पता न चला। अंतमें शून्य कुँए से निकलती दुर्गन्धसे उसका पता चला शव निकाला गया। सर्वत्र हाहाकार मच गया। उसने भी इसकी चर्चा पति के सामने की। उसने भी दुनियावी ढंग से शोक प्रदर्शित किया। इस प्रकार करते धरते कुछ दिन बिते। एक दिन मौका पाकर मायाविनी उमा से विरक्त हुआ धरण घरका सारा धन बटोर कर घर से निकल गया।



१०

संसार की रंग भूमि में जीव नाना प्रकार की अवस्थाओं में परिणत होता हुआ अनेक विध खेल खेलता है। धरण भी उन्हीं खिलाडियों में से एक खिलाडी होने के नाते उमा को छोड कर मित्र की सलाह से विदेश के लिये चल पडा। रास्ते में अपने लिये अवधूत का वेश निरापद समझ कर उसने अपने कपडे गेरुए रंग में रंग लिये। किसी सच्चे गुरु की खोज में कई नगरों में घूमता हुआ किसी गांव की प्याउ पर जा पहुँचा। वहां रहे हुए एक सिद्ध पुरुष से उसका परिचय हुआ। वह नमस्कार कर उसके पास बैठ गया।

धरण को विनयादि गुणों से युक्त देख कर उस सिद्ध पुरुष ने पूछा कि हे भाई ! तुम कौन हो ? इस प्रकार पूछे जाने पर उसने अपना आदि से लेकर अन्त तक का सारा वृत्तान्त कह सुनाया, और पूछ बैठा, कि मेरे द्वारा की गई दोनों हत्याओं के पाप से मेरा छुटकारा किस प्रकार होगा ?

मुझ अपरिचित को भी अपनी गुप्त बात कह देने वाला यह निश्चय ही निष्कपट और भोला व्यक्ति है। ऐसा अपने मन में सोच कर सिद्ध पुरुष ने कहा "हे भाई ! इस समय मैं स्वयं चिन्तित हूँ । बुद्धि स्वस्थ मनुष्यों की ही काम देती है। अतः मैं तुम्हें उपाय नहीं बता सकता।"

सिद्ध की बात को सुन कर धरण ने पूछा श्रीमानजी ! आपको कौनसी चिंता सता रही है। प्रश्न का उत्तर देते हुए सिद्ध ने कहा। "मेरे गुरु ने पहले मुझे संतुष्ट होकर एक विद्या दी थी। वह विद्या सोने के पुतले के सामने सिद्ध होती है। सोना उतना मेरे पास है नहीं। पुतला बनता नहीं, विद्या सिद्ध होती नहीं। बस यही चिंता आज भी मुझे कांटे की तरह कष्ट पहूँचा रही है।

धरण बोला "मेरे पास अनेकों रत्न हैं जिनसे सोना खरीदा जा सकता है। आइये इन्हें बेचकर सोना खरीदें

और आप्त वचनानुसार सुवर्ण पुरुष बनवा कर आप विधि-पूर्वक विद्या सिद्धी के लिये प्रयत्न करें।

उसके इस उदारता गुण से अत्यधिक प्रसन्न हो कर और अपरिचित मनुष्य में भी सहसा विश्वास कर लेने की स्वाभाविक वृत्ति को देख कर प्रशंसा करके उस सिद्ध पुरुष ने कहा "मुझे रत्नों से कोई प्रयोजन नहीं है, तुम इन रत्नों को सुरक्षित रखलो" मैंने तो सिर्फ तुम्हारी परीक्षा ही की है। क्यों कि एकदम किसी पर विश्वास नहीं किया जाता। सुवर्ण पुरुष का मतलब भी सोने के पुतले से यहां नहीं है, किन्तु श्रेष्ठ—वर्णवाले उत्तम—पुरुष की पात्रता से ही देखी जाती है। इस लिये तुम्हें पात्र देख कर और तुम्हारी नम्रता से संतुष्ट होकर गुरु द्वारा दी हुई उस श्रेष्ठ विद्या को मैं तुम्हें दे रहा हूं। अच्छे भाग्य से प्रेरित हो तुम यहां आये हो।

सिद्ध कहता है—मैं वृद्ध हो गया हूँ। मेरे पास कर्ण पिशाचिनी नाम की सिद्ध विद्या है उसे तुम भक्ति पूर्वक ग्रहण करो। जो तुम्हें त्रिकाल संबंधी सभी वस्तुओं का ज्ञान देगी। धरण ने उस विद्या को विधि पूर्वक आदर से ग्रहण की। विद्या-सिद्धि होने पर उसकी चारों तरफ प्रसिद्धि हो गई। कुछ दिन उस सिद्ध पुरुष की सेवामें

रह कर बाद में वह उसकी आज्ञा पाकर पृथ्वी पर घूमने लगा।

जंगलों, पहाड़ों, नगरों, और गावों में तरह तरह के कौतुक देखता हुआ, अपनी इच्छानुसार घूमते हुए उसने एक दिन किसी आम के पेड़ की छाया में बैठे हुए एक साधु—महात्मा के दर्शन किये। बड़ी ही श्रद्धा और भक्ति के साथ वंदन किया एवं अपनी आत्मा को धन्य धन्य समझता हुआ उन साधुराज के श्रीचरणों में बैठ गया। मुनिराज ने उसे 'धर्मलाभ'—का आशिर्वाद दिया। साथ ही परम विजयी जैन-धर्म का उपदेश देना शुरु किया।

हे भव्यात्मन्! दुर्गति में पड़ते हुए प्राणी को जो बचाता है, और सन्मार्ग में लगाता है। उसी का नाम धर्म है! वह अहिसा संयम और तप के द्वारा प्राप्त होता है। जिस प्रकार मेरे प्राण मुझे प्यारे हैं, उसी प्रकार दूसरे शरीरधारी को भी उसके प्राण उतने ही प्यारे हैं। ऐसा समझ कर बुद्धिमानों को चाहिये कि प्राणी—मात्र की रक्षा करें। अहिंसा का ठीक से पालन जीवन को संयम में रखने से होता है। संयमी आदमी ही सदा सुखी रहता है। संयम रखने के लिये मन वचन काया की चंचलता पर

नियंत्रण करना पड़ता है वह नियंत्रण विवेक पूर्वक की हुई तपश्चर्या से होता है।

हे देवानुप्रिय ! इस संसार में नवकार के समान कोई मन्त्र नहीं है। प्राणियों की रक्षा—अहिंसा के समान कोई धर्म नहीं है, और श्री शत्रुंजय तीर्थ के समान कोई तीर्थ नहीं है। ये तीनों त्रिलोकी में अद्वितीय माने जाते हैं। नमस्कार मंत्र के प्रभाव से प्राणी पापों से छूट जाता है आपत्तियां मिट कर संपत्तियां हो जाती हैं। अहिंसा से जीवन अभय होकर अजरामर—पद का अधिकारी हो जाता है। शत्रुंजय—तीर्थ के स्पर्श से अनन्त आत्मा बाह्याभ्यन्तर शत्रुओं को जीत कर विजयी हो जाते हैं। श्री शत्रुंजय-सिद्धाचल तीर्थ पर जाने से पापी आत्मा भी निष्पाप हो मोक्ष में जाते हैं।

इस प्रकार उन मुनिराज की देशना को सुन कर धरण धर्म में बहुत प्रभावित हुआ और अपने दोनों हाथ जोड़ कर किये हुए पापों को प्रकाशित करता हुआ अपनी आत्मा की निन्दा करने लगा। हे पूज्य ! मैं हत्यारा बड़ा पापी हूं। कुकर्मों को करने वाला हूँ। मेरे से जो दो हत्यायें हुई हैं इससे मेरी क्या गति होगी ? आप कृपा कर मेरे मार्ग-दर्शक बनें।

धरण की बात को सुन कर उत्तर देते हुए मुनीश्वर ने फरमाया हे भव्यात्मा ! तुम पाप-भीरू हो इसलिये निश्चय ही लघुकर्मा हो। तपश्चर्या से सारे पाप कर्मों की निर्जरा हो जाती है। अतः तुम श्रीसिद्धाचल तीर्थाधिराज जो कि सौराष्ट्र देश में वर्त्तमान है—वहां जाकर तपश्चर्या करते हुए विधि पूर्वक श्री नवकार मन्त्र का जाप करो जिससे तुम्हारा परम-कल्याण होगा।

मुनि महाराज के वचनों को सुनकर उनमें श्रद्धा को रखता हुआ वीतराग दर्शन में आत्म शांति को देखता हुआ मुनिमहाराज को वारंवार वन्दना की। अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिये वह श्री तीर्थाधिराज शत्रुंजय की तरफ चल पडा। चलते २ अनेक ग्राम-नगरों को पार करता हुआ इस कुशस्थल-पुर में आ पहुँचा हूं। मैं वही धरण हूँ। उन सिद्ध-पुरुष की कृपा द्वारा मन्त्र-विद्यासिद्धि से मैं भूत-भविष्य और वर्त्तमान ऐसे तीन काल की बातों को जानता हूँ। इसी लिये सब लोग मुझे निमित्तिया कह कर पुकारते जानते हैं।

धरण के विस्तृत चरित्र को सुनकर चारों राज-कुमार बड़े विस्मित हुए और आपस में कुछ विचार करने लगे। कुछ सोच कर उनमें से ज्येष्ठ राजकुमार जय ने उस नैमित्तिक

के सामने फल और द्रव्य रखकर पूछा कि हम चारों में से पिता का राज्य किसे मिलेगा ?

इस प्रकार पूछे जाने पर उसने शास्त्र की विधि से एवं अपने इष्ट से विचार करके सिर हिलाते हुए कहा कि "आप लोग ऐसा अनिष्टकारी प्रश्न क्यों करते हैं? नाराज होने की बात नहीं है। आप चारों में से किसी को भी पैत्रिक-राज्य मिलने की संभावना भी नहीं है। राज्य तो तुम्हारी विमाता सूर्यव्रती से उत्पन्न होने वाला राजकुमार ही भोगेगा। इसमें सन्देह की कोई बात नहीं है।

इस प्रकार उस कालज्ञ के कडुए वचन को सुन कर चारों राजकुमार क्रोधित हुए से बोले। अरे! तुम कुछ नहीं जानते। देखा तुम्हारा शास्त्र! और देखी तुम्हारी इष्ट शक्ति! तुममें सोचने समझने की शक्ति की दिवाला ही मालूम होता है। वीराग्राणी जयकुमार के रहते और हम लोगों के रहते दूसरा कौन राजा हो सकता है? इस प्रकार राजकुमारों के क्रोधावेश को देखकर वह बोला कुमारों! इस समय मेरा चित्त स्थिर नहीं है। अभी मैं जा रहा हूँ फिर जब वापस लौटुंगा तब भली प्रकार इस बात पर विचार कर आप लोगों से कहूँगा। ऐसा कह वह उठा, धन को वहीं छोड़, बड़ी शीघ्रता से वहां से चल दिया, और क्रम

से शत्रुञ्जय पर पहुँच कर साधु द्वारा बतलाई हुई विधि से तपस्या करने लगा ।

इधर निमित्तज्ञ के कथन को सुनकर राजकुमार बड़े सोच विचार में पड गये । वह बात सत्य है, या असत्य है ? इसका निर्णय कर न सके । उनमें से एक ने कहा कि निमितज्ञ चाहे सत्य वक्ता हो और देवताओं की तरह सफल-वाणी वाला ही क्यों न हो कोई न कोई उसकी बात असत्य भी हो सकती है । किसी की बात को सहसा आंख बन्द करके नितान्त सत्य मान कर चिन्तित हो जाना यह कोई बुद्धिमानों का काम नहीं है ।

मंत्री-पुत्र रोहिणेय देवी द्वारा बतलाये हुए भावी-संकट से बचने के लिये भूमीगृह में जा कर बैठ गया, और वह संकट उसका बाल बांका किये बिना ही आकर चला गया । इस लिये हमें भी कोई सफल उपाय सोचना चाहिये । जिस से हम अपने अधिकारों की रक्षा कर सकें ।

इस बात को सुनकर बुद्धिमान जय कुमार कहने लगे भाई ! व्यर्थ की चिंता क्यों करते हो जो होनी होगी सो तो होकर ही रहेगी वह तो किसी के हाथ की बात नहीं है । वह कोई ऐसा सर्वज्ञ भी नहीं था, जिससे उसकी बात विधाता के अंकों की तरह अमिट और ध्रुवसत्य मानी

जाय। अगर ऐसा होना ही है तो उसे रोक भी कौन सकता है।

अवश्यं भाविनो भावा, भवन्ति महतामपि।
नग्नत्वं नीलकण्ठस्य महाहि-शयनं हरेः॥

कहा है, अवश्य होने वाले भाव बड़े आदमियों के भी हो के रहते हैं। जैसे नीलकण्ठ महादेव की नग्नाव-स्था, और हरि का शेष की शय्या पर सोना।

ऐसा होने पर भी इतना तो अवश्य करना होगा कि हमारी विमाता सूर्यवती के पुत्र हो तब उसे गुप्तरीति से मौत के घाट उतार देना चाहिये।

जब ये चारों भाई इस प्रकार एकान्त में आपस में विचार विमर्श कर रहे थे, उस समय रानी सूर्यवती की सखी सैन्द्री सीढी के नीचे खडी उनकी ये सब बातें सुन रही थी। उसने अपनी स्वामिनी रानी सूर्यवती को निमि-राज की बात से लेकर अब तक की सारी घटना जल्दी से सुना दी। यह सुन रानी हर्ष और विषाद से युक्त हो, अपनी सखी सैन्द्री से बोली "हे सखि? तुम हो बताओ अब मैं क्या करू?" न मालूम अब क्या होगा? अगर तू कहे तो मैं यह सारा हाल महाराजा से कहूँ? अथवा इस सोच विचार से क्या जो होना होगा सो तो होगा

ही। भला, ऐसी किसमें शक्ति है जो इस कर्म रेखा को मिटा सके ? । अतः धैर्य और शान्ति ही इस चिन्ता के भार को हलका कर सकती है।

ऐसा कह वह अपने कार्य में लग गई, और दिनों दिन परमेष्ठी स्मरण, तपस्या, एवं देव-दर्शन में उत्साह और उमंग बढाने लगी।

एक समय रात्री में सुख-पूर्वक नींद में सोयी हुई महारानी सूर्यवती ने चार भिन्न २ स्वप्न देखे। प्रथम स्वप्न तो उसने यह देखा कि-निर्मल पूर्णिमा की रात्रि में आधी रात के समय चन्द्रमा का बिम्ब वेग से अपने स्थान से चलकर फिर वहीं अपने नियत स्थान पर आ गया। दूसरा स्वप्न उसे यह दिखाई दिया कि किसी ने लाकर एक खिला हुआ कमल उसके हाथ में दिया, और उसने मुरझाते हुए उस कमल को अपने हाथ से विकसित किया। तीसरे स्वप्न में उसने देखा कि अमृत के समान सफेद जिन मन्दिर वर्षा के कारण स्याम पड़ गया और बारंबार मन्दिर का यह हाल न हो ऐसा विचार कर महाराजा ने उसे मणिमय बना दिया। चौथे स्वप्न में वह क्या देखती है ? कि किसीने कहीं से आकर एक बन्द छत्र उसके सिर पर रखा, और वह छत्र अपने आप खुलकर तन गया।

इस प्रकार इन चारों स्वप्नों को देखकर वह जाग उठी और उसने राजा को बड़ी नम्रता से वे चारों स्वप्न कह सुनाये। राजा ने भी इन स्वप्नों को सुनकर और पृथक् २ उनके फलों का विचार करके रानी से कहा कि हे देवि! तुमने बड़े ही सुन्दर स्वप्न देखे हैं अतः तुम्हारे बड़ा भाग्यशाली पुत्र होगा।

यह बात सुन कर वह बड़ी प्रसन्न हुई, और धर्म की महिमा गाती हुई अपने महल को चल दी।

दूसरे दिन प्रातःकाल दरबार के समय महाराजा प्रतापसिंह अपनी राज-सभा में पधारे। सभा में पहले से ही उपस्थित अमीर उमरावों सरदार और सामन्तों ने तलवारें निकाल कर महाराजा का मूक अभिवंदन किया। अभिवन्दन के बाजे बज उठे। चारणों और बन्दीजनों के स्तुति पाठ और जय जयाराव से सभा-मण्डप गूँज उठा। कुछ ही क्षणों में वे रत्न-जटित-सिंहासन पर आ विराजे। संकेत पाकर सब यथा-स्थान बैठ गये।

इसके बाद सभी मंत्रियों निमित्तज्ञों और स्वप्न के फलों को बताने वाले—स्वप्न पाठकों को बुलाकर राजा ने विधि पूर्वक महारानी द्वारा देखे हुए स्वप्नों के फल पूछे।

उन्होंने उत्तर दिया कि हे राजन् ! स्वप्न में पूर्ण चन्द्रमा के देखने के कारण कलाविज्ञ, कमल के देखने से लक्ष्मीवान् मन्दिर के देखने के कारण अद्भुत धर्मात्मा छत्र देखने के कारण संपूर्ण पृथ्वी का एक छत्र शासक- ऐसा आपके छत्रपति पुत्र होगा। यद्यपि इन स्वप्नों के भाव अतीव दुर्ज्ञेय हैं फिर भी ये बातें तो जरूर होकर रहेंगी।

यह सुन राजा बहुत हर्षित हुए और उनने स्वप्न पाठकों का खूब सत्कार किया। अनंतर महाराणी को इन स्वप्नों के भावी फलों से जल्दी ही सूचित किया।

इधर रोहणाचल में रत्न के जैसे महारानी श्रीमती सूर्यवती की कूख में गर्भ बढने लगा। एक समय रानी को चन्द्रपान का दोहला—इच्छा हुई। लेकिन उसकी पूर्ति न होने के कारण वह अतीव निस्तेज और दुर्बल हो गई। एक दिन राजा ने राणी की ऐसी दशा देखकर पूछा कि क्या बात है ? तब उसने राजा को अपना मनोरथ कह सुनाया। कैसे पूर्ण किया जाय ? इस प्रकार मन में चिंतित राजा ने शीघ्र ही इस कार्य की पूर्ति के लिये मन्त्री को आदेश दिया।

मंत्री ने कुछ सोच विचार कर राजा से कहा कि यह तो जल्दी से पूर्ण होगा आप चिन्ता न करें।

उसने नई व्याई हुई गायों के मधुर और पौष्टिक दूध में थोड़ा सा पानी मिलाकर लघु और सुपाच्य बनाते हुए उसमें मिश्री मिलाकर बहुत स्वच्छता के साथ उबाल लिया। एक बन्द कमरे में ऊंची कनारवाले चांदी के थाल में दूध पिरस कर सुन्दर पर्णकुटी में चन्द्रमा की चांदनी को आने योग्य गुप्त छेद कर दिया। चन्द्रमा से प्रतिबिम्बित दूध को ब्राह्म-मुहूर्त में बड़ी चतुराई के साथ महारानी को पिला दिया। वह इस प्रकार के चन्द्रपान से बड़ी संतुष्ट हुई।

चन्द्रपान के दोहद की पूर्ति से प्रसन्न हुए राजा रानी ने अपने पुत्र का नाम गर्भ में रहते हुए ही उस स्वप्न के अनुसार श्री चन्द्रकुमार रख दिया। नामाक्षरों से अंकित हीरे से जड़ी हुई एक सोने की अंगूठी भी बनवा दी। इस तरह भावी पुत्र की लालसा से राजा रानी इतने खुश हो रहे थे, कि उनकी खुशी त्रिलोकी में भी समाती नहीं थी।



११

एक समय महाराजा प्रतापसिंह वन विहार के लिये गये हुए थे । वहां उनके सामने वड़ी तेजी से कुछ गुप्तचर आये और इस प्रकार अपनी पुकार महाराजा को सुनाने लगे ।

हे देव ! नैऋत्य कोण के समुद्रतट पर रत्नपुर और कण-कोट्टपुर नाम के दो नगर हैं । वहां के मल्ल और महामल्ल नाम के दोनों राजाओं ने मिलकर अपनी [illegible] का उल्लंघन कर देश गांव और पुरों को नष्ट कर दिये हैं । साथ ही वड़े वेग से उनकी फौजें इधर की तरफ वढ रही हैं ।

यह वात सुनकर महाराज एकदम राजमहल को लौट आये । सेनाधिपति को सेना सजाने और रण दुंदुभि

बजाने का आदेश देकर सीधे अन्तःपुर में महारानी सूर्य-वती के पास पहुँचे और बोले, हे प्रिये ! यह रण-यात्रा अचानक आ खड़ी हुई है। इसलिये तुम सुख-पूर्वक रहना, मैं शत्रुओं को बहुत शीघ्र ही जीत कर वापस लौट आउंगा।

महाराज की इस बात को सुनकर रानी ने महाराज से प्रार्थना की, कि देव ! गर्भवती होने के कारण यद्यपि मेरा आपके साथ चलना उचित नहीं है तोभी मैं आपकी अनुपस्थिति में क्षण भर के लिये भी यहां नहीं ठहर सकती। क्योंकि मुझे मेरे गर्भ के लिये अमंगल का भय आठों प्रहर सताता रहता है। इतना कह उसने उस निमित्तज्ञ की भविष्यवाणी और जयादि चारों राजकुमारों की बातचीत भी राजा को कह सुनाई।

महारानी के वचनों को सुनकर कुछ क्षण तक विचार कर महाराज बोले प्रिये ! दुःखी मत हो। सब ठीक होगा। मैं इन चारों राजकुमारों को अपने साथ ले जाऊंगा। तुम शेरनी की तरह निर्भय होकर यहीं सुख से निवास करो।

इधर वे चारों राजकुमार महाराज का बुलावा पाकर परस्पर में सलाह करके जयकुमार को महल में ही छोड़कर जहां सामन्त आदि खड़े थे क्रम पूर्वक जा पहुँचे। राजा ने

केवल तीन ही पुत्रों को आये हुए देखकर जय के अना-गमन का कारण पूछा। उन्होंने निवेदन किया कि महाराज! जयकुमार बीमार हैं। अतः आने में अशक्त हैं। कुमारों के कहने पर विश्वास न करते हुए महाराज ने उसे बुलाने को फिर सिपाही भेजे। जय ने उनको भी कुछ घूँस देकर और बीमारी का बहाना बनाकर वापस लौटा दिया। वारंवार बुलाने पर भी जब वह महाराज के पास न आया, तो उन्होंने सारी बात भावी पर छोड़कर उसकी उपेक्षा कर दी। एक बड़ी सेना के साथ प्रयाण भी कर दिया—कहा भी है:—

उदयति यदि भानुः पश्चिमायां दिशाया,
प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति वह्नि।
विकसति यदि पद्मं पर्वताग्रे शिलायां,
तदपि चलति नो या भाविनी कर्म-रेखा॥

यदि सूर्य पश्चिम दिशा में उदित हो जाय, यदि मेरु चलायमान हो जाय, यदि आग शीतल हो जाय, और यदि पर्वत की शिला पर कमल खिल उठे तो भी भविष्य कर्म रेखा कभी नहीं टल सकती।

नाना देशों के माण्डलिक राजा स्थान २ पर अपनी २ सेनाओं के साथ आकर महाराज की सेना में मिलने लगे। इस तरह महाराजा प्रतापसिंह की फौज एक बड़ी वेगवती

नदी की तरह इठलाती हुई शीघ्र ही समुद्र के किनारे पहुँच गई। सेना को विश्राम करने की आज्ञा प्रदान करके उन्होंने अपने गुप्तचरों द्वारा उन दोनों शत्रुओं का पता लगवाया और ससैन्य उन्हें जा घेरा।

मोर्चे लग गये। युद्ध के नगाड़े बज उठे। दोनों सेनायें समर भूमि में आमने सामने आ डटी। दोनों ओर से तीरों की बोछार होने लगी। तलवारे चमक उठी। बर्छे और भालों की चमक से सारा रणस्थल चम-चमाने लगा। इधर महाराज भी प्रधान शत्रुओं के साथ भयंकर रूप से जा भिड़े। रणचण्डी के खप्पर भरे जाने लगे। भाले वाले भाले वालों से, तलवार वाले तलवार वालों से, गदाधारी गदाधारियों से जुथ गये। रथी रथियों से सामन्तों से सामन्त, घुडसवारों से घुडसवार, हाथीचढ़ा से हाथीचढे दिल खोल कर बडा बहादुरी के साथ लडने लगे।

दुश्मन वीरों ने लड़ाई के मैदान में ऐसे खुल कर हाथ दिखलाये कि महाराज की सेना में एक बारगी भारी भगदड मच गई। परन्तु हाथी पर सवार तीनों विजय आदि राजकुमारों ने अपनी ओजस्विनी रणचातुरी से अपनी सेना का साहस बढाकर फिर से शत्रुओं पर धावा बोल दिया। ... ... की सेना राजकुमारों के

बाणों की बौछार को सहन न कर सकी। एवं उसके पैर उखड गये । अपने वीरों को भागते देख क्रोध से अपने होठों को दांतों से काटते हुए मल्ल और महामल्ल ने राजकुमारों पर धावा बोल दिय । बहुत देर तक घमासान युद्ध हुआ। अवसर पाकर मल्ल ने विजय कुमार को तलवार की चोट से मूर्छित कर दिया।

इधर महाराज अपने पुत्रों व सिपाहियों को कुछ खिन्न देख उसी जगह आ धमके और अपना चन्द्रहास खड्ग निकाल कर मल्ल पर टूट पडे। कुछ ही क्षणों में महाराज प्रतापसिंह ने मल्ल का सिर काट डाला । यह देख कुशस्थलीय फौज ने अपने महाराज की जयध्वनि से आकाश को गूंजा दिया।

इधर मल्ल की मृत्यु के समाचार पाते ही महामल्ल अपने जीवन को और बची खुची सेना को लेकर रत्नपुर की ओर भाग गया। महाराज प्रतापसिंह ने भी कर्णकोट्ट-पुर आदि उसके सब प्रदेश अपने आधीन करके क्रमशः रत्नपुर को और महामल्ल को घेर लिया। शत्रु को बल-वान और नगर को अभेद्य जानकर महाराज आक्रमण के अवसर की प्रतीक्षा में वहीं डटे रहे । वहां समुद्र के किनारे नौका विहार आदि क्रीडा करते हुए अपना समय बिताने लगे।

उधर सूर्यवती महाराज के चले जाने से हृदय में उत्पन्न होने वाले दुःख को वीतराग भगवान के वचनों से दूर करके स्वाभाविकतया धार्मिक कृत्यों में लग गई। एक दिन उसने अपने महल के बाहर सशस्त्र सिपाहियों को देखकर अपनी सखी से कहा हे सखि! देखो ये सिपाही किसके हैं? और ये यहां क्यों आये हैं? यह सुन सैन्द्री-ने उनके पास जाकर उन्हें पूछा कि तुम कौन हो? उसके इस प्रश्न का उत्तर देते हुए वे बोले 'हे सैन्द्री! हम महाराजा के नौकर हैं रानीजी के गर्भ की रक्षा के लिये हमें रत्नपुर से यहां भेजा है। तुम किसी बात की अपने मन में शंका मत करो''। उनके इस प्रकार के वचन सुन-कर और उनकी अलग २ अच्छी तरह जांच करके वापस लौटी हुई उसने रानी से कहा—''हे स्वामिनी! सुनो द्वार पर खडे ये सिपाही जयकुमार के प्रतीत होते हैं और झूंठमूंठ में अपने को महाराज के सेवक बता कर हमें धोखा देते हैं। ऐसा मालूम होता है कि जयकुमार ने गर्भ-रक्षा के बहाने अपनी दुष्ट-बुद्धि से गर्भ—हत्या के लिये इन्हें नियुक्त किया है।

सैन्द्री के मुख से इस दुःखद वृत्तान्त को सुनकर रानी ने एक लम्बी सांस भर कर कहा—हा सैन्द्री! मैं अब क्या करूं?। कहां जाउं? तुमने जो उस निमित्तज्ञ के वचन,

और इनकी आपसी सलाह को सुना था, वह तुम्हें इस समय याद है ? प्रयाण के समय महाराजा के वारवार बुलाने पर भी यह कुटिल जयकुमार बिमारी के बहाने यहीं पर अड़ा रहा। न मालूम इस दुष्ट के यहां रहते क्या २ अनिष्ट होगा ? रानी इतना कह कर शोक में लीन हो गई।

इधर जयकुमार ने बाल–हत्या के लिये तरह २ के कई उपाय किये लेकिन वे सब भाव–रहित धर्म, और जल रहित अंकूरों की तरह निष्फल हुए। अन्त में वह शुभ दिन आ पहुँचा जिसकी प्रतीक्षा बडी उत्कण्ठा से की जा रही थी। पूर्ण समय में और शुभ लग्न में अर्धरात्री के समय महारानी सूर्यवती ने पुत्र-रत्न पैदा किया।

उसके जन्म समय में सभी ग्रह उच्च के थे। वह अपने तेज से दीपक की आभा को निस्तेज कर रहा था। स्वरूपधारी सूर्य की तरह सुन्दर और तेजस्वी पुत्र रत्न को देखकर रानी का हृदय-रूपी सरोवर हर्ष–रूपी जल से भर गया, और वह उसके शरीर से रोमांच के बहाने बाहर निकल कर बहने लगा।

उस सुन्दर सौभाग्यशाली सम्पूर्ण-सामुद्रिक शुभ-लक्षणों से युक्त पूर्णचन्द्र के जैसे मुख वाले खिले हुए कमल

पाखड़ी के समान विशाल नेत्रवाले और अष्टमी के न्द्रमा के जैसे सुन्दर ललाट वाले बालक को देखकर नी प्रसन्नता के अतिरेक से अपने को भूल गई। उसका न मयूर नाच उठा, हर्ष के आंसू और शरीर में रोमांच आया। पर क्या करती बाहर यमदूतों की तरह खड़े यकुमार के सिपाहियों को देख उसकी बड़ी २ उमंगें और आशायें विलीन होगई। उसने अपनी प्यारी सखी न्द्री और दूसरी सखियों को गद्गद् स्वर से कहा— 'सखियों! मेरे हीन-कर्मों की ओर तो जरा निहारो, देखो ऐसे सुअवसर में महाराज भी यहां नहीं हैं। पितृ वर्ग भी उपस्थित नहीं हैं। मैं वधाई द्वारा किसको आन-न्दित करूं। मुझ भाग्य-हीना को धिक्कार है। सखि! नाच गान आदि महोत्सव तो दूर रहे आज थाली का बजाना भी खतरे से खाली नहीं है। यद्यपि यह पुत्र सब गुणों की खान है, फिर भी इसका यह जन्म-समय संपूर्ण प्रकार के हर्षों का शोषण करने वाला है।

यह सुनकर सब सखियाँ उसके दुःख से बड़ी दुःखी हुई, और अपनी स्वामिनी से बोली "महारानीजी! अपने चित्त में दुःख मत कीजियें, अभी प्रसूति समय है। बुद्धि हीन हो जाती है। इसलिये आप जैसे विवेकियों को चिंता नहीं करनी चाहिये। इस दुःख से, ऐसे विकल्पों से, ऐसी

हार्दिक चिंताओं से क्या होता है? भाग्य से ही आपके इस कुमार का सब कुछ ठीक होगा। आज पुत्र जन्म से तुम्हारा मनोरथ रूपी कल्पवृक्ष पुष्पित और फलित हुआ है। अतः इस नामाङ्कित मुद्रा से इसे विभूषित कर दो''।

ऐसा कहकर सखियों ने कुमार को नहला–धुला कर वेश कीमती सुन्दर वस्त्राभूषण पहना दिये। श्रीचन्द्र नाम से अंकित अंगुठी से उसे विभूषित कर दिया। उसको इन्द्र के समान सर्वांग सुन्दर और अद्भुत रूपवान देखकर सैन्द्री ने सखियों से कहा ''बहनों! देखो तो सही विधाता ने इस कुमार के सुन्दर शरीर को मणि-रत्नों के सारतत्वों का संग्रह करके ही बनाया मालूम देता है। दही को मन्थन कर निकाले हुए मक्खन के पिण्ड की तरह इसका कोमल और स्निग्ध शरीर है। महाराजा प्रतापसिंह के घर कल्पवृक्ष के समान आज यह राजकुमार पैदा हुआ है। अतः बड़े २ प्रयत्नों से इसकी रक्षा होनी चाहिये। बताओ, इसकी रक्षा का शीघ्र कोई उपाय बताओ। नहीं तो प्रातःकाल होते ही जयकुमार के सेवक ढूंढकर इसे शीघ्र ही हस्तगत कर लेंगे। हम अनाथ हैं अतः उपाय के सिवाय हम कोई कुछ नहीं कर सकती हैं। इतना कह वह सैन्द्री रुक गई।

उसके रुकते ही उनमें से एक ने कहा, "पुत्र को किसी सन्दूक आदि में छिपा देना चाहिये" । इस बात को सुन दूसरी बोली यह उपाय तो ठीक नहीं । क्योंकि ये लोग जब बालक को खोजने के लिये बल पूर्वक प्रविष्ट होंगे तब हममें से कौन इनको रोक सकेगा ? । इन घातियों के सामने हमारा बालक कब तक छिपा रह सकता है ! । क्या बादलों से घिरे हुए चन्द्रमा को राहु नहीं ग्रसता ? अतः हे सैन्द्री ! तुम बडी बुद्धिमती हो । तुम्हीं इसबाल-रक्षा-का कोई उपाय बताओ । क्योंकि जो काम बुद्धि से होता है वह न तो बल से होता है, न भाई बन्धुओं की सहायता से ही हो सकता है अतः तुम कोई अपनी बुद्धि का चमत्कार दिखा दो ।

इस पर सूर्यवती ने कहा 'सखि ! मैंने पूर्व जन्म में कोई बडा भारी पुण्य किया था जिससे मैंने इस जन्म में ऐसे पुत्र-रत्न को पैदा किया है । अब उसकी रक्षा के उपाय को तुम्हारी प्रशस्त बुद्धि हीं निश्चित कर सकती है ।



१२

भावी-भाव एक अद्‌भुत शक्ति है। वैसे ही सहायक और वैसी ही बुद्धियां मनुष्य को प्राप्त हो जाती हैं जैसी भवितव्यता होती है। नव-प्रसूत राजकुमार श्रीचन्द्र के लिये भी प्रकृति का यही अटल नियम लागु हो गया।

रानी सूर्यवती की परम-सखी सैन्द्री ने सोच विचार र यह राय निश्चित की कि राजकुमार को महल के बाहर किसी अच्छी जगह रख दिया जाय। ऐसा करना भी बडा कठिन है। क्यों कि द्वार पर खडे सिपाही जाने वालों की पूरी छानबीन करते हैं। बाद बाहर जाने देते हैं। पर जो दासी हमेशा उपवन में से सायंकाल के समय शय्या के लिये ताजेफूलों का टोकरा भरकर लाती है और प्रातः वापस काम में लाये हुए फूलों को लेजाकर उपवन में एक

तरफ डाल आती है। उसे ही राजकुमार को बाहर ले जाने का काम सौंपा जाय। प्रतिदिन के व्यवहार से उस फूल लाने वाली मालन पर सिपाही शक न करेंगे।

सूर्यवती ने सैन्द्री की राय की प्रशंसा करते हुए कहा हे सखि! तुम धन्य हो। तुम्हारी बुद्धि देवताओं से भी बढकर है। तुम्हारी सलाह ने मुझमें जीवन ला दिया है। वास्तव में तुम भारी शोक को भी हरने वाली हो।

इस प्रकार की मंत्रणा करते २ रात्री बीत गई। मानों उस कुमार के दर्शन के लिये उदयाचल के ऊंचे शिखर पर सूर्य देवता अपनी सुनहरी किरणों को फैंकने लगे। सखियों ने कुमार को हाथों हाथ अपनी २ गोदी में लेकर किसी ने तिलक, किसी ने अंजन और किसी ने वस्त्रा-भूषण से सुसज्जित किया। महारानी सूर्यवती ने भी अपने पुत्र को गोद में लेकर बड़े प्रेम से बहुत देर तक तृपित नयनों से निहारते हुए खूब दूध पिलाया। वह अपने आप कुमार को सम्बोधित कर कहने लगी—"प्यारे श्रीचन्द्र! कैसे तुम अकेले रहोगे? पहाड़ों—जंगलों में कौन तुम्हारी रक्षा करेगा? अपने कमल के समान कोमल मुख के जल्दी दर्शन देना"—इत्यादि वचन वह कह ही रही थी कि इतने में पहिले से आज्ञा-प्राप्त वह वन-मालिन

आ खड़ी हुई। उसने बड़ी चतुराई से कुमार को फूलों के टोकरे में रखकर हमेशा की तरह बेरोकटोक सिपाहियों के सामने से उपवन में पहूँच गई।

रत्न-कंबल में छुपाये हुए राजकुमार को टोकरे में से निकालकर उसने उन फूलों के ढेर में सुरक्षित रख दिया, और बोला—"हे कुमार! भेद खुलने के भय से मैं यहां क्षणमात्र भी नहीं ठहर सकती हूँ, आप चिरंजीवी-प्रसन्न रहें। मै फिर आऊंगी—ऐसे कहती हुई वह बार २ सिंह-की तरह घूम २ कर देखती हुई महारानी के पास चली आई इतने में दिन भी पुरी तरह से निकल आया।

प्रातः काल में जय कुमार के सिपाहियों ने महारानी के प्रसव के निशान देखकर उन्होने सारा हाल जय से जा य। सुनते ही साथियों के साथ जय कुमार वहां आ और सावधानी से शोध करने पर भी कुछ न मिलने से उसने सैन्द्री से पूछा कि बता— रानी के क्या हुआ? तब सैन्द्रीने महारानी के गर्भाशय के निकले हुए मैले को दिखाते हुए रोनी सी सूरत से कहने लगी— मालिक! गजब होगया! हमारे तो सारे मनोरथ मिट गये!! आशायें अधूरी रहीं!!! क्या बताउं महारानीजी के पुत्र होना तो दूर रहा पुत्री भी नहीं हुई।

जयकुमार मन ही मन प्रसन्न होता हुआ सोचने लगा लगा। चलो बिना औषधि के रोग मिट गया। परंतु बाहरी दिखावे के लिये शोक करता हुआ कहने लगा सैन्द्री! अगर सचमुच ऐसा ही हुआ है तो बहुत बुरा हुआ। मैने तो सोचा था भाई का जन्मोत्सव बड़े ठाठ से मनाउंगा। पर दुष्ट विधाताने मेरी अभिलाषायें पूर्ण नहीं होने दी। ऐसे बनावटी शोक को करता हुआ सिपाहियों के साथ वह वहां से चला गया।

जय कुमार के चले जाने पर सर्वत्र शांति हो जाने से रानी ने सैन्द्री से कुमार को लाने के लिये आज्ञा दी। उसने उपवन में फूलों के ढेर को खूब ढूंढा पर दरिद्री को निधान के जैसे कुमार को न पाकर रोती बिलखती वापस घर लोट आई। उसकी बात सुनकर रानी सूर्यवती बेहोश होकर गिर गई। समय के अनुकूल उपचार से रानी को होश में लाया गया। पुत्र स्नेह से व्याकुल रानी संकटापन्न अवस्था में भी साहस कर के सखियों के साथ उपवन में पहुँची और चारों ओर कुमार को ढूंढना शुरु किया। वन–मालिन से भी पूछा कि बताओ राजकुमार को कहां छिपाया है? उस बेचारी ने रोते हुए फूलों के ढेर की तरफ अंगुली निर्देश करते हुए कहा स्वामिनी! यहीं, इसी ढेर में मैंने तो कुमार को छिपाया था, पर न जाने

क्यों कुमार के दर्शन नहीं मिल रहे। रानी और उसकी सखियों ने बड़ी होशियारी के साथ चारों ओर श्रीचन्द्र-कुमार को ढूंढा, मगर कहीं भी उसका पता न चला। सच है पुण्य-हीन-प्राणी के लिये कल्पवृक्ष कहां रखे हैं? दैवयोग से चिन्तामणि रत्न किसी निर्धन को प्राप्त हो जाय पर वह उसके पास थोडे ही ठहरता है? हाय मेरे बेटे का क्या हुआ? क्या किसी ने उसे मार दिया? अथवा कोई उसे चुरा ले गया? सखियों! मुझ अभागिनी के भाग्य में ऐसे पुत्र रत्न का टिकाव कैसे हो सकता है!। हा! दुर्दैव मैं तो जींदा भी मरी हुई हूँ। ऐसे रानी सूर्य-वती मुक्तकण्ठ से विलाप करने लगी। लडखडाती हुई रानी को सैन्द्री हाथ पकड कर महल में ले आई। वहां भी रानी का विलाप जारी रहा—

हायरे दुर्दैव! मैने तेरा क्या बिगाडा है? जो तैंने मुझे पहिले ऐसा पुत्र रत्न दिया और देकर वापस छिन लिया? क्या मुझ पर अनर्थ परम्परा प्रारम्भ करने के लिये ही ऐसा अनिष्ट शरु किया है? अथवा हे दैव! तुम्हारा इसमें क्या दोष है?

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानः
स्व-कर्म-सूत्र-ग्रथितो हि लोकः॥

कोई किसी को सुख या दुख पहूँचाता है यह धारणा ही गलत है। मैंने उसे ऐसा कर दिया, यह भी एक झूंठा अभिमान है। वस्तुतः सारा संसार अपने २ कर्मों से गूंथा हुआ है।

पूर्व-जन्म में अबोध-अवस्था में मैंने ही कभी शील भ्रष्ट किया होगा। या किसी जीव को सताया होगा? किसी की कोई बडी भारी चोरी की होगी? किसी के बच्चे को उसकी मां से जुदा किया होगा? करडके मोड़े होंगे या किसी पक्षी के अंड़े फोडे होंगे? द्वेष वश किसी को झूंठे कलंक दिये होंगे? अथवा ऐसे ही घोर पाप मैंने किये होंगे? जिनको जिनेश्वर भगवान ही जान सकते हैं— उन पापों का दुष्परिणाम आज में इस प्रकार भोग रही हूँ।

महारानी के विलाप से दुःखी हुए निकट रहनेवाले स्वजन स्वयं दुःखी होते हुए भी उनको धीरज बंधाने लगे "स्वामिनि! भावी किसी के टाले नहीं टलती। संयोग वियोग सुख दुःख ये सब अपने किये कर्मों का ही फल है। ये अवश्य भोगने होते हैं इस में किसी का किन्तु परन्तु नहीं चलता। आप स्वयं तत्त्व को जानती हैं अधिक शोक करने से कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। आये हुए दुःख को मिटाने का उपाय धीरज से शोचना चाहिये।

क्यों कुमार के दर्शन नहीं मिल रहे। रानी और उसकी सखियों ने बड़ी होशियारी के साथ चारों ओर श्रीचन्द्र-कुमार को ढूंढा, मगर कहीं भी उसका पता न चला। सच है पुण्य-हीन-प्राणी के लिये कल्पवृक्ष कहां रखे हैं! दैवयोग से चिन्तामणि रत्न किसी निर्धन को प्राप्त हो जाय पर वह उसके पास थोडे ही ठहरता है? हाय मेरे बेटे का क्या हुआ? क्या किसी ने उसे मार दिया? अथवा कोई उसे चुरा ले गया? सखियों! मुझ अभागिनी के भाग्य में ऐसे पुत्र रत्न का टिकाव कैसे हो सकता है!। हा! दुर्दैव मैं तो जींदा भी मरी हुई हूँ। ऐसे रानी सूर्यवती मुक्तकण्ठ से विलाप करने लगी। लडखडाती हुई रानी को सैन्द्री हाथ पकड कर महल में ले आई। वहां भी रानी का विलाप जारी रहा—

हायरे दुर्दैव! मैने तेरा क्या बिगाडा है? जो तैंने मुझे पहिले ऐसा पुत्र रत्न दिया और देकर वापस छिन लिया? क्या मुझ पर अनर्थ परम्परा प्रारम्भ करने के लिये ही ऐसा अनिष्ट शरु किया है? अथवा हे दैव! तुम्हारा इसमें क्या दोष है?

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमान.

कोई किसी को सुख या दुख पहूँचाता है यह धारणा ही गलत है। मैंने उसे ऐसा कर दिया, यह भी एक झूंठा अभिमान है। वस्तुतः सारा संसार अपने २ कर्मों से गूंथा हुआ है।

पूर्व-जन्म में अबोध-अवस्था में मैंने ही कभी शील भ्रष्ट किया होगा। या किसी जीव को सताया होगा ? किसी की कोई बडी भारी चोरी की होगी ? किसी के बच्चे को उसकी मां से जुदा किया होगा ? करडके मोड़े होंगे या किसी पत्ती के अंड़े फोडे होंगे ? द्वेष वश किसी को झूंठे कलंक दिये होंगे ? अथवा ऐसे हो घोर पाप मैंने किये होंगे ? जिनको जिनेश्वर भगवान ही जान सकते हैं— उन पापों का दुष्परिणाम आज मैं इस प्रकार भोग रही हूँ।

महारानी के विलाप से दुःखी हुए निकट रहनेवाले स्वजन स्वयं दुःखी होते हुए भी उनको धीरज बंधाने लगे "स्वामिनि ! भावी किसी के टाले नहीं टलती। संयोग वियोग सुख दुःख ये सब अपने किये कर्मों का ही फल है। ये अवश्य भोगने होते हैं इस में किसी का किन्तु परन्तु नहीं चलता। आप स्वयं तत्त्व को जानती हैं अधिक शोक करने से कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। आये हुए दुःख को मिटाने का उपाय धीरज से शोचना चाहिये।

स्वजनों के आश्वासन से विवेकवती रानी सूर्यवती ने आखिरकार दिल को मजबूत बनाया। अपने इष्ट के ध्यान में लीन होगई। उसी समय कुछ देर के लिये आंखें लग गई। उस अर्धनिद्रित अवस्था में उनने स्वप्न में सफेद वस्त्र धारण की हुई अपनी कुल देवी के दर्शन किये। प्रसन्नवदना देवी दिव्य वाणी से कहती है बेटि! दुःखी मत हो। मैंने ही तेरे भाग्यशाली बेटे को फूलों के ढेर से हटाकर सुरक्षित स्थान में पहूंचाया है। तेरे पास रहने में उसे अधिक कष्ट उठाना पडता। आज से बारह वर्ष बाद वह तेरा बेटा श्रीचन्द्र राजाधिराज बन कर अचानक ही तुम लोगों को मिलेगा। मैं तुम्हारी कुल देवी हूँ"।

इस प्रकार दिव्य स्वप्न देखकर सहसा रानी जागृत हो जाती है, और बडे प्रसन्न मन से सैन्द्री आदि सखियों को सारा सुखद स्वप्न वृत्तान्त कह सुनाती है। सखियों ने भी रानी का अभिनंदन करते हुए बड़ी खुशी के साथ मंगलाचार किया।

पुत्र मिलन की पुनीत आशा से सखियों के साथ रानी सूर्यवती दान-पुण्य देव पूजन, जप-तप, नवकार-मन्त्र स्मरण आदि धर्मकृत्य विशेष रूप से करने लगी। धर्म में पहिले से भी कई गुनी अधिक श्रद्धा उसकी होगई।

१३

पुण्यै विना नहि फलन्ति समीहितार्थाः ।

पुण्य से मनुष्य को मनचाहे फल मिलते हैं अतः अपना हितचाहने वालों को चाहिये कि हमेशा पुण्य कार्य करते रहें ।

महाराजा प्रतापसिंह के न्यायी राज्य में नगर सेठाई भोगने वाला राजा–प्रजामें सन्मान प्राप्त लक्ष्मीदत्त सेठ अपने विशाल वैभव के साथ कुशस्थल नगर को सुशोभित करता था । उसके पास सौन्दर्य शालिनी शीलालंकार धारिणी लक्ष्मीवती नाम की सेठानी थी । पति-पत्नी दोनों ही बड़े प्रेम और आनंद से अपना सुखमय जीवन बीताते थे । दान और सन्मान में उनका मुकाबला करने वाला कोई नहीं था । सभी तरह के सुख होने पर भी संतान का

खेलता हुआ श्रीचन्द्रकुमार धीरे धीरे चलने के लिये भी कदम उठाने लगा बन्धुजन उसको एक के बादएक गोदी में लेते हुए नहीं अघाते थे। जिसके पास वह जाता था, उसी के सुख का कारण वह बन जाता था उसने कभी किसी वस्तु के लिये न हठ किया, न मुंह ही बिगाडा। सदा प्रसन्न रहने वाला वह कुमार जब पांच-वर्ष का हुआ तब उसमें बल-बुद्धि और तेजो-लक्ष्मी का संचार अपने आप होने लगा। एक बार सुना, देखा, ज्ञान–विज्ञान पहले अभ्यास की हुई विद्या के जैसे आसानी से ही उसे आ जाता था।

एक समय श्रीचन्द्रकुमार कौतुक देखने की इच्छा से अपने पिता के साथ रथ पर सवार हो उद्यान की ओर चला। फल फूलों से लदे हुए हरे भरे पेडों को संगमरमर से बने हौज, बावडियों को देखता हुआ वह घूम रहा था इतने में ही वह क्या देखता है—बाजे बज रहे हैं। खुले हाथों दान दिया जा रहा है। नाटक हो रहे हैं। हटो हटो की अवाज लगाते हुए छड़ीदार प्रजाजनों को हटाकर सडक साफ कर रहे थे। सबके आगे हाथी पर राष्ट्रध्वज फहरा रहा था। उसके पीछे कई तरह के बाजे बजाने वालों की टोलियां चल रही थी। सजे सजाये कोतल घोडे चलते थे। घुड सवार अमीर उमराव सामंत मन्त्री अपनी २

राजकीय पोशाकों को पहने बडी आन बान और शान के साथ चल रहे थे। इनके पीछे मदमस्त चाल से चलता हुआ, खरेमोतियों की झालरों वाली झूल से सजा हुआ, सोने चांदी के गंगा-जमुनी हौदे को रेशम के रस्सों से कसा हुआ मनोहर चित्र कारी से सजाई हुई सूंडवाला माथे पर कानों में दांतों में, और पावों में सुनहले रत्न जडित आभूषण पहना हुआ गजराज जरीकी पोशाक पहने अंकुश लिये महावत से प्रेरित होता हुआ धीरे धीरे चल रहा था। उसके हौदे में रानी की तरह आदर प्राप्त एक-सारिका बैठी थी। उसके सिर पर छत्र था। दोनों ओर दासियाँ चामर ढाल रही थीं। विस्मय पैदा करने वाली ऐसी सवारी को देख कर वह स्तंभितसा होकर सोचने लगा कि यह क्या घटना है ?।

देखते २ वह सारिका हाथी के हौदे से उतर कर श्री आदीश्वर भगवान के भव्य मन्दिर में प्रविष्ट हुई। उसके पीछे पालकी से एक सुन्दर स्त्री उतरती है और वह अपने सेवकों को आज्ञा प्रदान कर रही है। पिता की आज्ञा से कुमार ने उसे पूछा कि—हे देवि ! तुम कौन हो और यह पक्षी होती हुई भी मानवी के समान आचरण करने वाली सारिका कौन है ? भगवान के मन्दिर में आने का व इस

बड़े भारी इस ठाठ का वृत्तान्त अगर छुपाने योग्य न हो तो मैं सुनना चाहता हूँ।

कुमार की ओर ललचाई हुई निगाह से देखती हुई वह स्त्री कहती है कुमार ! मैं महारानी सूर्यवती की मुख्य दासी हूँ। मेरा नाम सैन्द्री है। यह सारिका मेरी स्वामिनी सूर्यवती की परम-प्रेम-पात्र है। इसका जन्म कर्कोटक द्वीप में हुआ है। किसी जहाजी व्यापारी ने इसे महाराजा प्रतापसिंह को यहां भेट की थी। यह अपने ज्ञानी गुरु के प्रसंग से प्राप्त कला के द्वारा महाराज का मनोरंजन किया करती है।

कुमार ! सुना होगा ? महारानी को पुत्र वियोग का असह्य दुःख हुआ था। महाराज दुश्मन को जीतने गये थे। पत्र द्वारा दुःखद समाचार को पाकर महाराजा भी बड़े दुःखित हुए थे। उस समय महारानी के मन को शांत कर ने के लिये इस सारिका को महाराजा ने यहां भेजी थी। तब से यह महारानीजी को समय २ पर उपदेश देकर और श्री वीतराग की वाणी को सुना कर धर्म ध्यान में प्रेरित करती है, और दुःख का समय काटने में साथ देती है।

इस सारिकाने किसी ज्ञानी गुरु से यह सुन रखा है कि तू राजकुमारी होगी, बस तब से ज्ञानी भगवान की वाणी पर श्रद्धा रखती हुई तीव्र तपस्या कर रही है महारानी जी के मना करने पर भी परम श्रद्धा से इसने आठ दिन के व्रत किये हैं। उसीका उद्यापन-निर्वाण समारोह कर के रानीजी ने अपने जन्म को सफल माना है। इस प्रकार कह कर सैन्द्री रुक गई।

सैन्द्री की बात सुन कर श्रीचन्द्र-कुमार सारिका की प्रशंसा करते हुए बोला-अहो, इसकी शक्ति-निर्मल श्रद्धा-वैराग्य और भाग्य सभी प्रशंसनीय हैं। तिर्यंच योनी में रहते हुए भी शुभ कर्मों का उदय होने से इसने धर्म की कितनी सुन्दर आराधना प्राप्त की है।

कुमार भी मन्दिर में पहुँचा। भगवान को भाव पूर्वक नमस्कार किया। सारिका की क्रियाओं को कौतुक भरी दृष्टि से देखता हुआ वह वहीं पर ठहर गया। सारिका ने चोंचसे विधिवत् जल चंदन पुष्प आदि चढा कर भगवान को अष्ट प्रकारी पूजा की। स्तुति स्तोत्र और चैत्य-वन्दन करके भाव पूजा भी संपन्न की। बाद ज्यों ही मन्दिर में से रवाना होने के लिये वह घूमी त्यों ही अचानक उस की दृष्टि उस दिव्य कुमार पर पडी। सुन्दर स्वरूपवाले उस

कुमार को देख कर वह वापिस भगवान श्री आदिदेव के चरणों में विनय–वंदन कर जोर से प्रार्थना करने लगी।

हे भगवन् ! मैं आत्म-भाव से श्री वीतराग परमात्मा को देवरूप निर्ग्रन्थ महात्मा को गुरु रूप, और केवली भग वान प्ररूपित विधि विधान को धर्मरूप मानती हूँ। यही सम्यक्त्व जन्म-जन्मान्तरों में भी आपकी दया से प्राप्त होता रहे और यह सुन्दर सुकुमार–कुमार ही मेरा स्वामी होवे। ऐसी प्रार्थना करके उसने अनशन व्रत ग्रहण कर लिया, और भगवान श्री आदीश्वर के चरणों का ध्यान लगा कर वहीं बैठ गई।

यह सब देख सुन श्रीचन्द्र कुमार ने उस सारिका से कहा–मैना ! तुम्हारा ऐसा करना उचित नहीं है। श्री जिनेश्वर देवने इस प्रकार से नियाणा-भावीफल की मांग-णी-करने का निषेध किया है। ऐसा करने से जीव सद्गति से वंचित हो जाता है।

कुमार के ऐसे वचन को सुनकर सारिका कहने लगी हे कुमार ! मुझे नियाणा-करने की कोई आवश्यकता नहीं है पर कुत्सित-स्वामी के मिलने पर सुचारु धर्म का आराधन नहीं होता। इस धार्मिक सहूलियत के विचार से ही मेरी यह प्रार्थना है–और मैंने आमरण अनशन कर लिया है।

सारिका की इस भावना से परिचित हो सैन्द्रीने महारानी सूर्यवती से सारिका के आमरण अनशन लेने की बात कही। तब वह घबराई हुई सी वहां आई, और उसने सारिका को ऐसा आमरण अनशन न लेने के लिये बहुतेरा समझाया। परन्तु उसने रानी को उत्तर दिया-"स्वामिनि! मेरे लिये ज्ञानी गुरु की ऐसीही भविष्य-वाणी है। उसी प्रेरणासे आज जो मैंने भगवान श्री ऋषभदेव स्वामी के सामने जो प्रतिज्ञा की है, वह कभी मिथ्या नहीं होगी। अब आप कृपा करके इस कार्य में सहायक बनें। बस, इतना कहकर मैना मौन करके स्थिर हो गई।

उसकी ऐसी धारणा को देख रानी गद्‌गद स्वर से कहने लगी। प्रिय सखि! तेरे बिना मेरे ये दुःख के दिन कैसे कटेंगे? मैं तेरे इस शुभ संकल्प को तुडाना नहीं चाहती। तेरा कल्याण हो। ऐसा कहकर रानी ने, सखियों ने और नगर निवासियों ने मिलकर अनेक प्रकार से उस अनशन की भारी महिमा की। तीन दिन के अनशन को करके सारिका ने अपने इस नश्वर-शरीर को त्याग दिया। रानी की आज्ञा से चंदन की चिता में उसका अंतिम संस्कार बडे समारोह से हुआ रानी उसकी मृत्यु से शोक-संतप्त हो उसके महान गुणोंको रह रह कर याद करने लगी।

सब लोग सारिका के गुणों को याद करते हुए अपने २ स्थान पर चले गये। श्रीचन्द्र कुमार भी अपने पिता श्री लक्ष्मीदत्त सेठ के साथ चकोरों को प्रसन्न करने वाले चन्द्रमा के जैसे—अपने घर पर पहूँच कर अपने दिव्य गुणों से सब का मनोरंजन करने लगा।



१४

कुशस्थल नगर में धीधन मंत्री के मतिराज और सुधिराज नाम के दो पुत्र थे। दोनों मंत्री-पद से विभूषित थे। छोटे भाई सुधीराज के कमला नाम की रूपवती गुणवती सती-पतिव्रता पत्नी थी।। उसने गुणों के सागर रूप गुणचन्द्र नाम के पुत्र-रत्न को जन्म देकर अपने श्वसुर-कुल में सन्मान प्राप्त किया था। मन्त्री-पुत्र गुणचन्द्र श्रेष्ठी-पुत्र श्रीचन्द्रकुमार के साथ पूर्व-जन्म के पुण्य-संस्कारों से अभिन्न-मित्र बन गया था। उन दोनों में क्षीर-नीर के समान घनिष्ठ प्रेम हो गया था। विनय विवेक–विचार-भक्ति और निस्वार्थ सेवा के गुणों से गुण-चन्द्रने श्रीचन्द्र का मन अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था। दोनों परस्पर में परम विश्वासी और एक मन वाले थे।

श्री लक्ष्मीदत्त सेठ अपने चिरंजीवी कुमार श्रीचन्द्र को पुरुषों की बहत्तर कलाओं में निपुण देखना चाहते थे। संपूर्ण कलाओं की शिक्षा देने वाले कलाचार्य की खोज करते हुए उन्हें सद्भाग्य से गंगा तट की तरफ से यात्रा करते हुए श्री गुणंधर नाम के कलाचार्य की भेंट हुई।

श्री गुणंधर–उपाध्याय सब विद्याओं में पारंगत जितेन्द्रिय, स्पष्ट-वक्ता, शान्त स्वभाव वाले, जैन दर्शन के अनन्य उपासक और बृहस्पति के समान सब शास्त्रों के ज्ञाता थे। अधिक क्या जितने गुण एक गुरु में होने चाहियें वे सब उनमें मौजूद थे।

लक्ष्मीदत्त सेठ को एक दिन अचानक श्रीगुणंधर उपाध्याय से मुलाकात हो गई। एक दूसरे के परिचय के बाद सेठ ने अपने पुत्र को पढाने के लिये उनसे प्रार्थना की। उपाध्यायजी ने भी कुमार श्रीचन्द्र को विनयादि-गुणों से संपन्न और सामुद्रिक शास्त्र के शुभ लक्षणों से युक्त योग्य–सुपात्र समझ कर अन्यत्र जाने का विचार स्थगित करते हुए विद्या पढाना स्वीकार कर लिया।

सेठ ने उपाध्याय को प्रसन्न करने के लिये धन देना चाहा पर उनने इस बात का निषेध करते हुए कहा सेठ !

उपकार के सामने धन क्या चीज है ? मैं कोई तुच्छधन पर उच्च विद्या को न्योच्छावर करने वाला ओछा आदमी नहीं हूँ।

पढते सहस्रों शिष्य हैं पर फीस ली जाती नहीं,
वह उच्चशिक्षा तुच्छ धन पर वेच दी जाती नहीं।
दे वस्त्र भोजन भी स्वयं कुलपति पढाते हैं उन्हें,
बस भक्ति से सन्तुष्ट हो दिन २ बढाते हैं उन्हें॥

विद्या के बदले में विद्या देने वाले और धन से विद्या देने वाले दोनों लोभी कहलाते हैं। विनय से सन्तुष्ट हो मुफ्त में विद्या प्रदान करने वाले गुरु होते हैं और वेही सच्चे पुण्य के अधिकारी होते हैं।

उपाध्याय की उदारता और निस्पृहता से परिपूर्ण-वाणी को सुनकर सेठ बहुत प्रसन्न हुआ। बहुमूल्य वस्त्रा-भरणों से स्वागत करते हुए उपाध्याय से निवेदन किया कि हे मान्यवर ! हम आपकी क्या सेवा करें ? हम और यह कुमार सदा आपके आभारी रहेंगे। आप इसे पढाना-प्रारम्भ करें और इसे कलावान बनावें।

श्री गुणंधर उपाध्याय ने सेठ लक्ष्मीदत्त से कहा विद्याभ्यास एकान्त में निरुपद्रव ठिकाने पर ही ठीक होता है। अतः ऐसा स्थान खोजना चाहिये। तब सेठ ने कहा भूदेव ! राजा की आज्ञा से मैने लक्ष्मीपुर नाम का एक

मैं विद्वान के साथ साथ बलवान होना भी जरूरी समझता हूँ। दुश्मनों से, गुण्डों से देश की, समाज की और धर्म की रक्षा करने के प्रसंगों में केवल कलम चलाने वाला ही काफी नहीं होता। तलवारें भी उठानी पडती हैं। निर्बल आदमी दूसरों की रक्षा तो दूर, अपनी रक्षा भी नहीं कर सकता। ऐसे कंगलों से उनके पूर्वजों की कीर्ति-कथायें भी कलङ्कित होती हैं।

मैं अहिंसा में मानता हूँ। आततायियों के मुकाबले में उनसे हाथ जोड कर प्राण बचा लेने या भाग जाने को मैं ठीक नहीं मानता हूँ। इस प्रकार की अहिंसा को मैं हिंसा ही मानता हूँ। अत्याचार करनेवाले हमेशा बुरे होते हैं। पर अत्याचारियों के अत्याचार को प्रतिरोधक शक्ति के रहते हुए चुपचाप सहन करनेवाले को मैं बहुत बुरा मानता हूँ। प्रसंगों के उपस्थित होने पर पुरुष को ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र सब कुछ होना चाहिये। ऐसा होने के लिये भी उस अवस्था के शास्त्रों का अभ्यास जरूर ही करना चाहिये।

इसीलिये आपसे मेरी प्रार्थना है कि श्रीचन्द्रकुमार-को आप धनुर्वेद की ऊंची-शिक्षा देने की कृपा करें। सेठ की इस बात को सुनकर श्रीगुणंधराचार्य ने बडी प्रसन्नता से कहा सेठ! आपकी इस भाव-भरी प्रार्थना से

मेरा मन बहुत प्रसन्न हो रहा है। आप ठीक ही कहते हैं कि कायर कपूतों के होने से न होना ही अच्छा है। कहा भी है—

जननी जणे तो भक्त जण, कां दाता कां शूर।
नहीं तो रहिजे वांझणी, मती गमावे नूर॥

अब आपकी प्रेरणा से मैं श्रीचन्द्रकुमार को धनुर्वेद की-राधावेध पर्यन्त की सारी शिक्षा उच्च स्तर पर दूंगा।

उपाध्याय ने सेठ की प्रार्थना से प्रेरित हो दुगुने उत्साह से कुमार को शस्त्रास्त्र-विद्या में पूर्णतया निपुण किया। जल में तैल के जैसे कुमार की बुद्धि में पहुँचा हुआ गुरु का ज्ञान भारी विस्तार को पाया।

कुमार की शिक्षा पूर्ण होने पर एक दिन श्रीगुणंधराचार्य ने स्वदेश लोटने की अपनी इच्छा अपने शिष्य के प्रति प्रकट की। उस समय जैसे कोई बडा भारी निधान कोई हठात् छिन लेता है। ऐसा दुःख कुमार के मन में उपस्थित हुआ। उसका खाना पीना सोना आमोद प्रमोद सभी तो छूट गये। अपने लाडले बेटे की ऐसी हालत को देखकर सेठ लक्ष्मीदत्त पूछते हैं बेटा! क्या बात है? क्यों अनमने उदास हो रहे हो? क्या किसी वस्तु का अभाव मालूम देता है? क्या बात है? मैं तुम्हारे इस उदास चेहरे को देख नहीं सकता हूँ।

इस पर कुमार ने बडे करुण स्वर में कहना शुरु किया पिताजी ! आपने जो बातें फरमाई, उनमें से एक भी कारण मेरी उदासी का नहीं है। मेरे हृदय में ज्ञान प्रकाश फैलाने-वाले आचार्य मुझे छोड कर अपने देश की ओर प्रस्थान करने का कहते हैं। उनके वियोग-दुःख के विचार-मात्र से मैं दुःखी हूं। उनके बिना मुझे कौन नेक सलाह देगे ! कौन मेरे संशयों को दूर करेगा ?

पिता पुत्र के बीच इस प्रकार का वार्तालाप हो हं रहा था, कि इतने में आचार्य भी वहां अपने घर जाने के अनुमति लेने आगये। उन्होंने कुमार को जब इस अवस्था में देखा तो वे उसकी भक्ति, गर्वशून्यता, नम्रता आदि गुणों से प्रभावित हो उसकी भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे

सेठ ने कलाचार्य का आदर करते हुए अपने शिष्य की हालत पर गौर फरमा कर कुछ समय तक और ठहरने के लिये प्रार्थना की। आचार्य ने भी प्रार्थना स्वीकार कर ली। यह देख श्रीचन्द्रकुमार का मन मन्दिर प्रसन्नता के प्रकाश से आलोकित हो गया।



१५

वीर पुरुष की हुई प्रतिज्ञा को और प्रारम्भ किये हुए कार्यों को पूरा करके ही छोड़ते हैं। आनेवाली विघ्न-बाधाओं से उनका मन मूर्छित नहीं हुआ करता है।

महाराजा प्रतापसिंह ने अपने शत्रु रत्नपुराधिपति के साथ आठ वर्ष के घोर संग्राम के पश्चात् उसे हरा दिया। रत्नपुर पर अपना अधिकार जमा लिया। वहां अपनी विजय वैजयन्ती फहरा कर अपनी शासन-सत्ता स्थापित कर दी। बाद में अपनी विजय-वाहिनी-विशाल फौज के साथ निरन्तर प्रयाण करते हुए अपनी राजधानी कुश-स्थलपुर में आ पहूँचे।

राज-मन्त्रियों ने महाराज की पधरावणी में नगर को खूब सजाया। सामंत-सेनापति-सभासद-सेठ साहुकार-

लोग महाराज के स्वागत में उनके सामने गये। नगर-सेठ लक्ष्मीदत्त अपने पुत्र के साथ एक अपूर्व भेंट लेकर उनके सत्कारार्थ उपस्थित हुए। महाराज ने भी क्रमशः उपाधि और योग्यतानुसार सारे सामन्तों-मन्त्रियों-नागरिकों के साथ हाथ मिला २ कर अभिवादन किया।

नगर सेठ लक्ष्मीदत्त के सर्वांग सुन्दर कुमार श्रीचंद्र-के अनुपम आकर्षण से आकृष्ट हुए महाराज ने पूछा कि यह अद्भुत बालक कौन है? तब सेठ ने कहा महाराज! यह आपके सेवक का उत्तराधिकारी है। कुमार ने बड़ी वीरोचित वृत्ति का प्रदर्शन करते हुए, महाराज को विनीत प्रणाम किया। अपने पुत्र चन्द्र को देखकर समुद्र जैसे उमड़ता है ठीक उसी प्रकार महाराज प्रतापसिंह भी श्री चन्द्रकुमार को देखकर अन्तरंग स्नेह से आन्दोलित हो उठे। उन्होंने उसे ताजिम के साथ कणकोट्टपुर की जागिरी बक्सिस कर दी। दूसरों को भी यथायोग्य पुरस्कार दान किया। महाराजा अपने महल में चले गये। जरूरी कामों को निपटाते हुए सुख से आराम करने लगे।

इधर श्रीचन्द्रकुमार का विद्याभ्यास सर्वतो-भावेन पूर्ण होगया। गुणंधर गुरु ने उसे प्रेमपूर्वक शस्त्र-धारा को बांधनेवाली दिव्य जडी प्रदान की और वे स्वदेश लौट

गये। संपूर्ण कलाओं में कुशल कुमार कामदेव के समान सुन्दर रूपवान नवजवान होगया। कुशस्थल में रहने वाले धनप्रिय, धनमित्र आदि आठ व्यापारी सेठों ने अपनी धनवती लक्ष्मी आदि आठ कन्याओं का सम्बन्ध कुमार-से करना चाहा। लक्ष्मीदत्त सेठ ने उनकी प्रार्थना से प्रेरित हो अपने कुल के योग्य उन कन्याओं को जानकर बड़ी धूमधाम से कुमार को परणा दिया। कलाओं से चन्द्रमा के समान वह उन पतिव्रता गुणवती पत्नियों को पाकर विशेषतया सुशोभित हुआ।

कमला कमल को छोड कर कुमार के कर कमलों में आवसी। चन्द्र अपनी क्षीणता को मिटाने कुमार के मुख-में लीन होगया। हमेशा चन्द्र के उदय से कमल संकुचित और श्री हीन रहेगा ऐसा समझ कर श्री कुमार के नाम-के अग्रभाग में रहने लगी। अन्तर्निहित गुण रूप रत्नों से कुमार रोहणाचल पर्वत के समान गौरव पाया। विबुधों से सेवित ऐश्वर्य संपन्न इन्द्र के समान कुमार सब की आंखों को आनन्द देने वाला हुआ। सुमेरु के समान धीर, सागर के समान गंभीर—गुणी श्री चन्द्रकुमार सर्वत्र सत्कार पाता हुआ भी भगवान श्री जिनेश्वर देव के शासन का अनन्य अनुरागी सेवक बना रहा। नित नये कवीश्वर नित नयी कविताओं द्वारा उसकी यशोगाथा गाया करते थे। दान-

पुण्य से प्रेरित उसकी लक्ष्मी दिन—दुणी रात—चौगुणी बढती जाती थी। दुर्जनों को उसकी पुण्य-लीला खटकती थी। कई बार सेठ लक्ष्मीदत्त के कान भरे जाते थे। पर सेठ सुनी अनसुनी करके कुमार के प्रति अपने स्नेह भाव को बनाये रखता था।

एक दिन अपने अभिन्न मित्र गुणचंद्र को साथ लेकर श्रीचन्द्र कुमार हवाखोरी के लिये उपवन में गये। वहां उनने तालाव के किनारे डेरे डाले हुए घोड़ों के सौदागरों-को देखा। उनके पास शोभा और चंचलता में सूर्यरथ-के घोडों को भी मात करने वाले अद्भुत घोडों को देखा। अपने अभिन्न मित्र को प्रेरित करते हुए कुमार ने कहा प्रिय मित्र! इन व्यापारियों से इन घोडों का मूल्य तो पूछो। गुणचंद्रने मित्र के कथनानुसार घोडों का मूल्य पूछा तब एक वृद्ध व्यापारी ने कहा आज तक हमने बहुत घोड़े बेचे हैं, लेकिन ये सोलह घोडे बहुत ही उत्तम जाती-के और बेशकीमती हैं।

इस वात को सुनकर कुमार घूम घूम कर एक एक घोड़े को देखने लगा। मित्र के पूछने पर उसने उन घोडों को जाती और गुणों का वर्णन बड़े पाण्डित्य-पूर्ण-ढंग से किया। वह कहने लगा, मित्र! मुख चरणों में सफेद रंग-वाला यह अष्ट—मंगल-जाती का अश्व है। लालवर्ण का

किराह, और श्याम रंग का खुगाह जाती का है। घी की कांति के समान सुन्दर यह सराह जाती का, और यह कबरे रंगवाला हलाह जाती का घोडा है। यह सब घोडों में श्रेष्ठ उराह जाती का अश्व है। हल्के पीले रंग का और काले घुटनों वाला यह बडा ही वेगवान कुलाह जाती का है। कुछ लाल कुछ पीला काले घुटनोंवाला यह रोकनाह है। यह होलक, और यह हरिक जाती का घोडा है। ये दोनों पंचभद्री जाती के अश्व हैं। ये सबसे अधिक वेगवान हैं। इनके हृदय मुंह और बाजुओं में भँवर पडते हैं। ये दोनों सुंदर लक्षणों से संपन्न हैं। दीखने में पतले दुबले दीखनेवाले ये घोड़े लाख लाख देने पर भी मिलने मुश्किल हैं।

इतने में वहां कई राजकुमार और राजवर्गी लोग आते हैं, और अपनी २ पसंद के कोई पचास, कोई सित्तर, और कोई पिचहत्तर हजार रुपया दे देकर घोडे ले जाते हैं। श्रीचंद्रकुमार भी वायुवेग और महावेग नाम के पंचभद्रजाती के पतले दुबले दीखने वाले दो घोडों को दो लाख रुपये देकर खरीद लाया।

दुर्जनों की बन आई, उन्होंने लक्ष्मीदत्त सेठके कान भर दिये कि सेठ! देखो तो आपके घर की लक्ष्मी किस कदर कचरापट्टी के घोडों की खरीद में बहाई जा रही है।

आपके धनघेले बेटे को कुछ होश हवास नहीं है। अगर ठीक प्रबंध न किया तो आपको भीख मांगनी पडेगी। दूसरे लोगों ने जहां मोटे ताजे तगडे घोड़ों की कीमत थोडी दी है वहां आपके इस कुमार ने पतले दुबले घटिया दर्जे के घोड़ों की कीमत लाख लाख रुपया देकर चुकाई। उसमें भी तुर्रा यह कि आप को पूछा तक नहीं। अरे बाबा! आपको वह कुमार तिनके के बराबर भी कब मानता है ?। हम तो आपके हित के लिये कहते हैं कि सावधान हो जाओ। नहीं तो बुढापे में तकलीफ उठानी पडेगी। वह बेटा किस काम का जो बाप की आज्ञा न माने। इस कार्य के लिये उसे उचित शिक्षा जरूर दीजिये तभी ठीक होगा।

यह सब सुनकर सेठने उन लोगों को डांटते हुए कहा—अधिक बकवाद मत करो। यह जो कुछ ऋद्धि सिद्धि है वह इसी के पुण्यों का प्रताप है। वह चाहे जितना धन खर्च करे, कर सकता है। उस भाग्यशाली के धन की कमी कभी न होगी। सेठ की इन बातों से वे विघ्न-संतोषी चलते बने, और कहते गये सेठजी! हमने तो आपके भले के लिये ये बातें बताई थी न मानो आपकी मरजी है।

इधर कुमार घोडों को लेकर आता है, और सेठ से निवेदन करता है, कि पिताजी ! दो लाख में ये दो घोडे लाया हूँ । 'बहुत अच्छा किया' इस प्रकार कहते हुए सेठ ने उसे स्नेहामृत से सिंचन किया । बाद में पिता की आज्ञा लेकर गारुडी मणियों से जडा हुआ सुवेग नाम का एक सुन्दर रथ तैयार करवाया । उसके लिये कुल क्रमागत रथ हांकने की विद्या में निपुण धनंजय नाम के सारथी को नियुक्त किया ।

एक दिन सुमुहूर्त्त में उन दोनों घोड़ों को रथ में जोत कर उनकी चाल ढाल और स्वभाव की परीक्षा के लिये कुमार अपने मित्र के साथ किसी एक दिशा को लक्ष्य करके बड़े वेग से चला । घोड़े इतने वेग से दौड़े कि रथ में बैठे तीनों को पेड़, पहाड़, नदी, नाले सब दिखाई दिये । प्रत्येक वस्तु आंखों के सामने आने के साथ ही उसी क्षण में आंखों से ओझल हो जाती थी । इस प्रकार आधे प्रहर में कोई पनरह योजन—साठ कोस तक चले गये । वहां विश्राम कर वापस उसी वेग से लौट आये ।

इस प्रकार श्रीचन्द्रकुमार हमेशा अपने मित्र के साथ रथ में बैठ अपनी इच्छानुसार नये २ पहाडों वनों और प्रदेशों आदि को देखता हुआ अपना मनोरंजन करने

लगा। दूर २ चले जाने पर देरी से आये हुए कुमार को सेठ ने एक दो वार बड़े प्यारभरे शब्दों में कहा बेटा! तुम्हारे दूर चले जाने से देरी से आने से तुम्हारे विरह में हमारा मन जल विना मछली के जैसे तडफता है। बड़े विनीत भावसे कुमार हाथ जोडकर अपने पिता से कहता है पूज्य पिताजी! क्या बताऊं रथ में बैठे बाद स्वतन्त्रता के साथ घूमने में जो आनन्द आता है उसको छोडने में मेरा मन भी वहुत दुःख पाता है। पर अब मैं जल्दी आने-की चेष्टा करूंगा।

पुत्र के विनीत वचनों को सुनकर सेठ गदगद होता हुआ कहता है बेटा! यदि ऐसा है तो जिस प्रकार तुम प्रसन्न हो वैसा ही करो। मैं तो तुम्हारे दुःख में दुःखी और तुम्हारे सुख में सुखी हूँ। मेरी ओर से तुम्हारी क्रीडाओं में आज से कोई बाधा न होगी।

पिता की आज्ञा को पाकर कुमार बहुत प्रसन्न हो गया। एक रोज वह त्रिकूट पर्वत की शोभा देखने गया। वहां पद्मासन लगाये हुए किसी भैरव नाम के योगी को ध्यान करते हुए देखा। कुमार ने योगी को नमस्कार किया। उसके गुणों से और लक्षणों से प्रसन्न होकर योगी ने उसे कहा बेटा! तुम अभी छोटे हो इस डरावने जंगल में अकेले कैसे आये हो?।

कुमार ने कहा योगिराज ! मैं मनोरंजन के लिये घर से निकलता हूं। आप जैसे महात्माओं की दया से मुझे कहीं कोई भय नहीं होता है।

योगी ने कुमार की वीरवाणी को सुनकर कहा कि भाग्यशाली मुझे कोई मंत्र सिद्ध करना है, आज अर्ध-रात्री के समय तुम मेरे उत्तर साधक बन सकोगे क्या ? कुमार ने विना किसी हिचकिचाहट के स्वीकार कर लिया। योगी ने अपनी साधना कुमार के उत्तर साधकत्व में की मंत्र जापआहुति आदि से वह सफल मनोरथ होगया। उसने मधुर स्वर में कहा कुमार ! मैं तुम्हारे साहस से सन्तुष्ट हुआ क्षुद्र प्राणियों को अन्धा बनाने-वाली यह दिव्य जडी देता हूँ। तुम इसे ग्रहण करो। एक बात और कहता हूं, आगे से तुम कभी किसी योगी का विश्वास मत करना।

श्रीचन्द्रकुमार ने कहा महात्मन् ! आपकी बड़ी कृपा है जो हित शिक्षा के साथ इस दिव्य जडी की बक्सिस मुझे दी। विधि पूर्वक जड़ी को लेकर योगी को नमस्कार कर और आज्ञा पाकर कुमार अपने घर को लौट आया।

इस प्रकार वह कुमार अपने मित्र के साथ रथ के योग से नये २ स्थानों की यात्रा, महात्माओं के दर्शन सिद्ध पुरुषों से सिद्धियां अपूर्व जड़ी बुंटी मणि मन्त्र औषधियाँ प्राप्त करता जाता था। इस तरह बड़े आनन्द और सुख से निश्चिन्त समय बिताने लगा।



१६

वसंत का समय था । आम के वृक्षों पर मंजरियाँ फूट रही थी । उनकी महक चारों ओर फैल रही थी । लाल आँखों वाली काली कोयलें कषाय कण्ठों से—पंचम-स्वर में कुहू कुहू कर रही थी । सारे वन और उपवन ऋतु-राज का स्वागत करने के लिये मस्ती में झूमते हुए हरे भरे इठलाते खडे थे । मकरंद के लोभी भौंरे पुष्पों की प्याली में रखे हुए रस को बार बार पीकर उन पर मंडरा रहे थे ।

श्रीचन्द्र कुमार अपने मित्र के साथ झूला झूल रहा था । मलयाचलकी शीतल मंद और सुगन्धित पवन उनके ललाट से पसीने की बूंदों को पोंछकर उनके वस्त्रों और बालों को हिला रही थी । दोनों दोस्त बडी प्रसन्नता-से सामने के बड़े झरोखे की राह से एक टक वसंत की

शोभा को निहारते थे। इतने में श्रीचन्द्र के मुंहसे ये भाव निकलने लगे।

कूलनमें केलिमें कछारनमें कुंजनमें
क्यारिनमें कलिन कलीन किलकंत है।
कहे 'पद्माकर' परागनमें पान हू में
पानन में पीक में पलाशन पगंत है॥
द्वार में दिशान में दुनी में देश देशन में
देखो दीप दीपन में दीपत दिगंत है।
वीथिन में ब्रजमें नवेलिन में वेलिन में
वनन में बागन में वगरो बसन्त है॥

इन भावों को सुन कर गुण चन्द्र भी अपने को रोक न सका, और बोल उठा—

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं,
स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः।
सुखाः प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः,
सर्वं सखे ! चारुतरं वसन्ते॥

मित्र! क्या बताऊं? विकसित फूलों वाले पेड़, कमलों से परिपूर्ण जलाशय सकामा स्त्रियें, सुरभित पवन, सुखकारक सायंकाल, और रमणीय दिन अधिक क्या वसंत में सभी सुन्दर हो जाते हैं।

इस प्रकार उनमें परस्पर विनोद वार्तालाप हो रहा था कि अचानक उनके कानों में बाजों की आवाज सुनाई दी। चतुरंगिणी सेना मंत्रियों और सामंतों के साथ जय आदि राजकुमारों को नगर से बाहर जाते देखा। श्रीचन्द्र- ने गुणचन्द्र से पूछा कि मित्र ! कहो यह किस बात का जलूस है ? गुणचन्द्र को इस बात का पहिले से पता था अतः उसने मित्र के प्रश्नका उत्तर विस्तार पूर्वक देना प्रारंभ किया। वह बोला—

मित्र ! यहां से दक्षिण की ओर तिलकपुर नाम का एक नगर है। वहां तिलकसेन नाम का राजा राज्य करता है। उसके सुतिलका नाम की पटराणी है। उस महारानी के तिलकमंजरी नाम की कन्या है जो स्त्रियों की चौसठ- कलाओं में प्रवीण हैं। इस समय वह पूर्ण तरुण अवस्था- में होने से पाणिग्रहण के योग्य हो गई है। एक समय राज-सभा में अपनी प्रतिज्ञा प्रकाशित की थी कि जो कोई वीर राधा-वेध करने में समर्थ होगा वही मेरा स्वामी होगा।

राजा तिलकसेन ने उसे विवाह योग्य समझ कर स्व- यंवर का शुभ मुहूर्त्त निश्चय कर लिया है। राधावेध के आचार्य की देख रेख में शास्त्र की विधि से राधावेध

आदि की सारी सामग्री जुटाली है। देश देशान्तरों के राजाओं के पास निमंत्रण-पत्र भेजे गये हैं। अतः उस स्वयंवर में सम्मिलित होने वाले सभी राजा लोग अपने राज्यों से चल कर निश्चित तिथि पर वहां पहुँच जायेंगे। आजसे सत्रह दिन बाद राधावेध का मुहूर्त है। तिलकपुर यहां से लगभग अस्सी योजन दूर है। ये जयकुमार आदि वहीं पहूँचने को जा रहे हैं।

इस प्रकार दोनों मित्रों को स्वयंवर सम्बन्धी बात चीत करते हुए अचानक आये हुए सेठ लक्ष्मीदत्त ने सुना गुणचन्द्र को अलग बुलाकर कहा कि पुत्र ! तिलकपुर में राधावेध आदि होने वाले हैं। अगर श्रीचन्द्र जाना चाहे तो पूछो।

मित्रने पिता की इच्छा पुत्र के सामने प्रकट कर दी लेकिन कुमार ने उसका कोई उत्तर नहीं दिया। सोलहवें दिन की संध्या को कुमार ने सारथि को रथ जोतने की आज्ञा दी। अपने मित्र को साथ लेकर पिता को बिना पूछे ही वह वायुवेग से तिलकपुर की ओर चला गया। मार्ग में आने वाले पहाड़ जंगल नदी नाले आदि सब को पार करता हुआ सुबह होते २ तिलकपुर के उद्यान में जा पहूँचा। सारथि को रथ सौंप कर, अपने मित्र को साथ ले वह

राधावेध मंडप की ओर चला। चारों ओर लोगों के झुंड के झुंड खडे राधावेध की साधना के सम्बन्ध में तरह २ की बातें कर रहे थे। स्थान २ पर आश्चर्यकारी दृश्यों को देखता हुआ वह समित्र स्वयंवर मण्डप में प्रविष्ट हुआ।

योग्य सिंहासनों पर देवताओं की शोभा को हरने वाले राजा लोग विराजमान थे। बीचमें राधावेध स्तम्भ खडा था। उस पर शास्त्र सम्मत उल्टे सीधे आठ २ चक्र चक्कर काटते थे। उनके बीच में एक मछली लगी हुई थी जिसकी बांयी आंख का तारा राधा कही जाती है। खंभ के पास ही तेल से भरा कडाह रखा था। उसमें घुमते चक्रों के बीच रही राधा का प्रतिबिंब पड रहा था। उस खम्भे के पास धनुष बाण रखे हुए थे। कडाहमें नीचे परछाँई को देखता हुआ उल्टे सीधे चक्रों के बीच की राधा को बाणसे बींधने वाला वीर राधावेध को सिद्ध करनेवाला माना जाता है। श्रीचन्द्र कुमार ने अपने मित्र को ये सारी बातें समझा कर उचित स्थान पर बैठ गया।

इतने में वहां बाजे बजने लगे। चलो, हटो की अवाजें आने लगी। सब एक तरफ हो गये। सुन्दर वैवाहिक वेश पहिने परिवार के साथ राजकन्या पालकी में बैठ कर सभा मण्डप में आई। पालकी से अभ्रान्त भाव

से उतर कर हाथों में वरमाला लिये वह खम्भेकी जिमकी तरफ आकर खडी हो गई। हजारों आंखें एक साथ उस पर आकृष्ट हो गई। उसके सौन्दर्यामृत पान में राजा लोग इतने लीन हो गये जो उन के मन शरीर से बाहर हो गये। सिंहासन पर केवल शरीर मात्र ही रह गये।

श्रीचन्द्र ने मित्र से कहा मित्र! अलौकिक सौंदर्यमयी इस राज-बाला का कहां तक वर्णन करें यह तो—

> अनाघ्रातं पुष्पं किसलय मलूनं कररुहैः
> अनाविद्धं रत्नं मधुनव मनास्वादितरसम्।
> अखण्डं पुण्यानां फल मिवच तद्रूप मनघ,
> न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः॥

बिना सूंघा हुआ फूल है। नखों से अछूता यह कोमल पान है। अणबींध रत्न है। बिना चखा हुआ यह नवीन पुष्प रस है। इसका निष्पाप रूप, पुण्यों का मानों अखण्ड फ ल ही है। न मालूम विधाता किसको इस का भोक्ता नियत करेगा? मित्रने जवाब दिया अभी सब कुछ सामने ही आया जाता है।

स्वयंवर मण्डप में श्रीषेण हरिषेण आदि बहुत से राजा और राजकुमार आये हुए थे। तिलकसेन की आज्ञा-से वहां के भट्टने उन सूर्यवंशी चन्द्रवंशी राजाओं के नाम

पिता वंश जाति देश और पुरादि कों का परिचय कराया। अपनी ओजस्विनी वाणी से उन सब को राधावेध के कार्य में प्रोत्साहित किया। भट्टवाणी से प्रोत्साहित राजा लोग क्रमशः राधावेध के खम्भे के पास आते और उस विधि को न जानने के कारण हंसी के पात्र बन कर चले जाते।

जय आदि राजकुमार भी अपनी अपनी बारी से वहां आये परन्तु लक्ष्य भ्रष्ट रहने के कारण लज्जित और निराश होकर मुंह नीचा किये वहां से हट गये। नर-वर्मा राजा ने एक चक्र को तो वींध दिया, पर बाण टूट जाने के कारण वह भी शर्मीन्दा होगया। शेष बचे काम-पाल वामांग शुभगांग का पुत्र श्रीमल्ल वरचन्द्र और दीपचंद्र के पुत्र आदि जो प्रवीण और विचारवान थे वे लोग तो पहेले से ही इस कार्य की गुरुता को सोच कर अपने स्थानों पर ही बैठे रहे।

जब यह दुष्कर कार्य किसी से पूरा न हुआ तो राजा तिलक सेन उसकी कन्या उसका परिवार और अध्यापक आदि सभी बड़े चिंतित हुए। तब भट्ट ने फिर जोशीली भाषा में कहना शुरु किया—"उपस्थित लोगों में क्या कोई वीर नहीं है, जो प्रण को पूरा करके सबको चिंता मुक्त

करे ? क्या पृथ्वी निर्वीरा हो गई है ? क्या राजकन्या को आजन्म क्वाँरी रहना पड़ेगा ? ठीक है पृथ्वी वीरों से खाली हो गई है। अब भविष्य में ऐसे कठोर प्रण करने का किसी को साहस नहीं करना चाहिये।

भट्ट की उस तर्जना भरी वाणी से श्रीचन्द्रकुमार की वीरता जाग उठी। मित्र की प्रेरणा ने उस उठती आगमें घृत की आहुति का काम किया ! वह शीघ्र ही उठ खडा हुआ। खंभे के सन्मुख जा पहूँचा और धनुष टंकार करके धनुष पर बाण को चढा लिया। शास्त्रोक्त विधि से उसने बाण चला कर सबके देखते लक्ष्य-भूत-राधा-को वींध दिया। चारों और जय२ ध्वनि से आकाश गूंज उठा। प्रसन्नता से कन्या का परिवार बाँसों उछलने लगा। पुरवासी आनन्दातिरेक से "जय चिरंजीव" कह कर फूल बरसाने लगे। राज कन्या का मुख उज्जवल हो उठा। उसकी चिंता मिट गई। बडी उत्सुकता से आगे बढकर उसने कुमार श्रीचन्द्र के गले में वर माला पहिना दी।

यह कौन है ? किसका पुत्र है ? इस प्रकार कहते हुए और उसके भाग्य-विद्या-बल-बुद्धि ओर मन्त्र विधि की प्रशंसा करते हुए राजादि सभी लोग वहां आ उपस्थित

हुए, और वहां बडीभारी भीड़ और कोलाहल मच गया। भीड़ में अवसर पाकर श्री चन्द्रकुमार अपने मित्र का हाथ पकड कर अपने रथ के पास आ पहुंचा। मित्रने उसे बहुत समझाया कि मित्र ! यहां ठहरो और विवाह करके राजपरिवार और माता पिता को आनन्दित करो।

मित्र को उत्तर देते हुए श्रीचन्द्रकुमार ने कहा—"हे सखे ! तुम्हें इस बात का तो पता ही है कि हम पिताजी को सूचित किये विना ही चुपचाप यहां आये हैं। अतः अब देर मत करो शीघ्र रथ में बैठो"। इतना कह उसने मित्र के रथ में बैठ जाने पर घोड़ों की लगाम ढीली कर दी। घोड़े हवा से बातें करने लगे।

इधर वन्दी जनों ने श्रेष्ठी-पुत्र श्रीचन्द्रकुमार को पहचान लिया, और सबके सामने उसके दिव्य चरित को प्रकट कर दिया कि यह—'कुशस्थलपुर निवासी सेठ लक्ष्मीदत्त का श्रीचन्द्र नाम का कुमार है। इसके आठ पत्नियां हैं। सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री गुणंधर गुरु के पास सारी विद्यायें पढी हैं और सारी कलाओं का अभ्यास किया है। इसके पास सुवेग नाम का रथ है जिसमें पवन-वेग और महावेग नाम के घोड़े जोते जाते हैं। वह महाराज प्रतापसिंह द्वारा प्रदान किये गये कणकोट्टपुर का अधि-पति है।

यह सुनकर राजा तिलकसेन ने अपने अपने सिपाहियों को कुमार को खोज लाने की आज्ञा दी। राजा की आज्ञा को पाकर कई घोड़ों पर और कई रथों पर सवार होकर उसके पीछे दौड़े परन्तु वह उनके हाथ नहीं आया। वहां उपस्थित राजा लोग उसके दुष्कर कार्य की और त्याग की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगे।

भेजे हुए सिपाही खाली हाथ लौट आये। राजा बड़ा दुःखी हुआ। वह राजकुमारी तिलक मंजरी बेहोश होगई। होश में आने पर वह इस प्रकार विलाप करने लगी।

हा प्राणनाथ ! आप मुझ अभागिनी को विना वरण किये ही क्यों चले गये। अगर विवाह की इच्छा न थी तो राधावेध जैसे दुष्कर कार्य को करने का साहस ही क्यों किया ?। स्वामिन् ! इस प्रकार रोती विलखती मुझ अबला को अविवाहित अवस्था में ही छोड कर चले जाना आप जैसे प्रणपूरकों का धर्म और कर्त्तव्य नहीं है। देव ! आपने मुझे किस अपराध पर यह दण्ड दिया है ?। वायु के वेग से भी अधिक तेज उस रथ से मेरी दृष्टि से ओझल होगये हो पर मेरे हृदय से आप कभी दूर नहीं हो सकते। हे स्वामिन् ! जलहीन मछली के समान तड–

फती हुई मुझे दर्शन रूप जल से जीवन प्रदान करने की कृपा करिये।

इस प्रकार पत्थरों को भी पिघला देने वाले विलाप करती हुई राजकन्या को उसके पिता और जयकुमार आदि लोगों ने समझा बुझा कर शान्त किया।

जयकुमार ने सबके सामने कहना शुरु किया ओह! वह तो हमारे नगर का रहने वाला, सेठ लक्ष्मीदत्त का कुमार, हमारे पिता का स्नेहपात्र, कणकोट्टपुर का जागी-रदार है। उसके लिये अधिक दुःखी मत होओ। यदि राजकुमारी मेरे साथ चले तो हमारे नगर में वह श्रेष्टि-कुमार आसानी से मिल सकता है। मैं भी राजकुमारी को वडी प्रसन्नता से ले जा सकता हूँ। इसमें अफसोस करने जैसी कोई बात नहीं है आप सब लोग शान्ति रखें। जयकुमार की इस प्रकार आश्वासन भरी बातों से राजा और राजकन्या वड़े ही सन्तुष्ट हुए मानों प्यासे को शीतल जल मिल गया हो।

स्वयंवर में आये हुए राजाओं को राजकुमारों को हाथी घोड़े और वस्त्राभूषणों से उचित सत्कार करके उनको अपने २ नगरों की तरफ विदा किये। तिलकमंजरी भी वडी सजधज के साथ तैयार हुई। त्यों ही मंत्री ने राजा

से प्रार्थना की कि राजन् ! जयकुमार के डेरे से गुप्तचरों द्वारा जो समाचार जानने को मिले हैं मालूम होता है दाल में कुछ काला है। विना सोचे समझे जय के साथ राजकुमारी को भेजना, खतरे से खाली नहीं।

मंत्री के इस प्रकार चेतावनी भरे वचन सुनकर राजा तिलकसेन ने राजकुमारी तिलकमंजरी को भेजने का विचार स्थगित कर दिया और अपने धीर नाम के मंत्री को श्रीचन्द्रकुमार को लाने के लिये भेज दिया।

इधर श्रीचन्द्रकुमार मित्र के साथ जल्दी से अपने नगर में पहूँच गया। सेठ लक्ष्मीदत्त उसकी राह में अपनी आंखे बिछाये बैठा था। दूज के चन्द्रमा के जैसे कुमार को घर पर आया देख सेठ ने उसे बड़े प्रेम से स्नेहालिंगन किया। पिता के देरी से आने का कारण पूछने पर इधर उधर के कोई खेल का बहाना बताकर उत्तर को टाल दिया।

कुछ दिनों बाद जयकुमार आदि स्वयंवर से लौट आये। राधावेध आदि की साधना का सारा वृत्तान्त अपने महाराजा को विस्तार पूर्वक कह सुनाया। सुनकर महाराजा ने प्रसन्नता के साथ कहा कि आज मुझे श्रीचंद्र-के सफल होने पर उतनी ही खुशी हुई है जितनी की

तुम्हारी सफलता पर होती। आज इसने अपने यश के साथ मेरे नाम को भी देश देशान्तरों में सुप्रसिद्ध कर दिया है। इसने इन सब विद्याओं को कब किस श्रेष्ठ आचार्य से सीखी हैं। छोटी अवस्था वाले इस श्रीचन्द्र-कुमार का पौरुष प्रशंसनीय है।

मंत्रिराज श्रीमतिराज ने विनय के साथ महाराज से अर्ज की कि— महाराज ! श्री गुणंधरोपाध्याय ने इस कुमार को कलायें सिखाई हैं। यह मेरे भतीजे का दोस्त है। इसका चरित्र सदा एक आश्चर्य रूप में देख रहा हूँ। यह कब तो स्वयंवर में गया और कब वहां से लौट आया ? कुछ पता नहीं। महाराज ने आश्चर्य करते हुए यह सब जानने के लिये उन पिता पुत्र को आदर के साथ बुलाने का आदेश दिया।

इधर राधावेध की अद्भुत बात सुनकर सेठ लक्ष्मी-दत्त ने प्यार भरे शब्दों में श्रीचन्द्र से कहा—"बेटा बारह प्रहर में तिलकपुर तक जाकर कैसे लौट आये हो" ज्यों ही कुमार अपनी यात्रा के वृत्तान्त को सुनाने लगा उसकी माता सेठानी लक्ष्मीवती भी सुनने की इच्छा से वहां आगई। कुमार कहने लगा—"पिताजी ! आपकी कृपा से, गुरुदेव के आशीर्वाद से, और पूर्व पुण्यों के प्रभाव से ही मैं ऐसा करने में समर्थ हो सका हूँ। दूसरी

बात यह है कि मेरे पास जो घोड़े हैं वे वेग में वायु का भी तिरस्कार करने वाले हैं। वैसा ही सुन्दर सुदृढ उनके उपयुक्त रथ है जिसमें बैठकर मैं चार प्रहर में सौ योजन जा सकता हूँ।

उसके वचन सुन प्रसन्न चित्त माता-पिता ने कहा "ओ हमारे वीर बेटे! तूने राधावेध करके राजकन्या के साथ विवाह कर हमें पूज्य क्यों नहीं बनाया ?। बीच में ही उत्तर देते हुए मित्र गुणचन्द्र ने वरमाला आदि के वृत्तान्त को विस्तार पूर्वक कह कर उन्हें और भी अधिक प्रसन्न किया। आपकी आज्ञा के विना यह काम संपन्न न हो सका। आज या कल में राजकुमारी या तिलक नरेश का कोई मंत्री आने ही वाला है।

मित्र की बातों को सुन खुश हुए माता-पिता कहते हैं—हमारा यह सौभाग्य है जो ऐसा धीर वीर उदार गुणी पुत्र मिला। राजकन्या जैसे अमूल्य रत्न को विना ब्याहे आजाना क्या कुछ कम निस्पृहता है ? इस प्रकार पुत्र की प्रशंसा करते हुए घर में भारी महोत्सव करके लोगों में बधाइयाँ बांटी।



सज्जन साधु पुरुषों के सत्संग में, देश विदेश की लोकोत्तर घटनाओं के दर्शन में, परोपकार करने में, और निष्पाप मनोविनोद की साधना में उत्तम पुरुषों का समय सदा बीतता रहता है।

चरित नायक श्री चन्द्रकुमार अपने अभिन्न मित्र श्री गुणचन्द्रकुमार के साथ हमेशा की तरह रथ में बैठ कर क्रीडा के लिये पूर्व की ओर एक दिन सायंकाल के समय निकल पड़ा। उनके माता पिता अपने योग्य पुत्र के इस प्रकार के हमेशा के कार्य क्रम को जानते थे अतः चिंता-से मुक्त रहा करते थे।

कुमार घर पर नहीं था उस समय महाराजा प्रताप-सिंह के मंत्री ने आकर सेठ से संदेश सुनाया कि आपके चिरंजीवी को बड़े आदर के साथ बुलाया है । सेठ ने वडी प्रसन्नता से कहा कि कुमार तो क्रीडार्थ गया हुआ है, चलियें मैं ही महाराज की आज्ञा का पालन करता हूं । छत्र चामर आदि राजकीय लवाजमे से सन्मानित हुए सेठ मंत्रियों के साथ राज--महल में पहुँचे । महाराज ने उनका अनुपम स्वागत करके पूछा सेठ ! कहियें आपके कुमार ने किस साधन से ऐसे अद्भुत कार्य किये ?

सेठने वडे विनय से उत्तर दिया महाराज ! मेरे वेटे-के पास न तो कोई यंत्र और न कोई मंत्र न कोई जादु-टोना है और न कोई देव की साधना ही । वह तो गुणं-धर गुरु के पास सब विद्याओं में पारंगत हो वडे धीर वीर और साहसी कामों को करता है । उसके पास पवन वेग महावेग नाम के घोड़ों वाला सुवेग नाम का दिव्य रथ है । इसी पर वैठकर वह असंभव कर्यों को संभव कर देता है । मुझे भी इसकी इस अद्भुत लीला का पता थोडे ही दिन हुए लगा है । एसा कहते हुए सेठने तिलकपुर की राधावेध की घटना विस्तार के साथ वडे रोचक ढंग से कह सुनाई और कहा कि देव ! आज भी वह अपने मित्र के साथ वैसी ही कोई क्रीडा के लिये रथमें वैठ कर गया है ।

इसीसे आपकी सेवा में वह न आसका और मुझे उपस्थित होना पड़ा है।

यह सुन महाराजाने कहा सेठ! तुम्हारा पुत्र बड़ा भाग्य शाली और लोकोत्तर चरित वाला है। जब वह क्रीडा से वापस लौटे तब मुझसे जरूर मिलाना। मैं उसे अपने पुत्रों से भी बढकर महत्तम पद प्रदान करना चाहता हूँ। ऐसा कह कर सेठ द्वारा की हुई भेंट को स्वीकारते हुए महाराज ने सेठ को कुमार के लिये वस्त्रालंकार और जागीर प्रदान की। इस प्रकार महाराजा से सन्मानित हो सेठ जगह २ कुमार के गुणग्राम को सुनता हुआ और याचकों को दान देता हुआ घर लौट आया।

इधर कुमार को रथ में घूमते २ जंगल में आधी रात का समय हो गया। उसे निद्राने आ घेरा। सारथि को रथ खोलने की आज्ञा दी। रथ एक सघन वृक्ष के नीचे खोल दिया गया। मित्रने शय्या तैयार कर दी। कुमार सो गया। मित्र जगता हुआ पहरा देने लगा। उसी वृक्ष की डाली पर बैठे एक शुक युगल ने कुमार के तेजस्वी चेहरे को देख आपस में बातें करना शरु किया। शुकीने कहा हे प्यारे! इस राज कुमार को दो बीजोरे के फल देकर अतिथि-सत्कार करके हमें अपना जीवन सफल बनाना चाहिये। बडे फल के खाने से राज्य प्राप्ति और छोटे के

खाने से मंत्रीपद की प्राप्ति होती है। ऐसा कह उस शुक युगल ने उडकर कहीं से दो बीजोरे के फल वहां लाकर कुमार के सामने रख दिये और उडकर कहीं अन्यत्र चला गया। गुणचन्द्र ने उठाकर उन फलों को अपने पास रखलिया।

राजकुमार के जगने पर मतिमान् गुणचन्द्र ने उन दोनों फलों को उसके सामने रखकर बडी प्रसन्नता से शुकयुगल का वृत्तान्त कह सुनाया। कुमार ने कुशल मनाते हुए उन फलों को सुरक्षित रखने का कह सारथि से रथ जुडवा कर मुसाफरी शुरु की। चलते २ वे एक बड़े तालाव के किनारे पहुंचे। प्रातःकाल होगया था। सबने वहां रुक कर प्रातःकालीन कृत्य किये। यहीं पर मित्र द्वारा दिये राजयोग कारक पहले बीजोरा फल को कुमार ने खाया। मंत्री पद कारक दूसरे बीजोरा फल को गुणचन्द्र और सारथि—दोनों मित्रों में बांट दिया।

भोजन कार्य से निपट कर कुमार मित्र के साथ उस सुन्दर वन को देखने के लिये इधर उधर घूमते२ वहां शान्त स्वरूप दयालु जितेन्द्रिय और संयम साधना में रमण करनेवाले श्रीसुव्रत नाम के एक मुनीश्वर को देखा।

साधुओं का दर्शन पुण्यकारी होता है। साधु जंगम-चलते फिरते तीर्थ रूप होते हैं। दूसरे तीर्थ तो समय पर

फल देते हैं। पर साधुओं का सत्संग तत्काल फल देने वाला होता है। इसीलिये कहा है—

साधूनां दर्शनं पुण्यं—तीर्थ–भूता हि साधवः।
तीर्थं फलति कालेन—सद्यः साधु–समागमः॥

कुमार साधु दर्शन से आत्मा को कृतार्थ मानता हुआ बड़े विनय से उन साधु महाराज को नमस्कार करके अपने उचित स्थान पर बैठ गया। उन मुनिराज ने भी धर्म-लाभ रूप आशीर्वाद देकर उन्हें अधिकारी समझ समयो–चित धर्मोपदेश दिया।

अय भव्यात्माओं। मानव जीवन बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है। उसमें भी आर्यदेश और श्रावककुल में जन्म पाना और भी कठिन होता है। उसके पा लेने पर भी आरोग्यमय दीर्घ–आयुष्य, सद्गुरु का समागम, शास्त्र–श्रवण, तात्त्विक बातों की श्रद्धा और सदाचार में शक्ति को लगाना किसी भाग्यशाली को ही प्राप्त होता है।

अय महानुभावों! अप्राप्य सामग्री को पाकर के भी प्रमादी मानव धर्माचरण से वंचित रह जाता है। इसलिये प्रमाद को छोडकर दान शील तप और भाव रूप धर्म में पुरुषार्थ को लगाना चाहिये। धर्माराधन से ही प्राणी

अनन्त संसार सागर को पार कर जाता है। अनादिकाल से आत्मा मोह से बेहोश रहता आया है। उसे होश में लाकर व्रत साधना से जीवन को ऊंचा उठाना चाहिये।

सर्वथा हिंसा–झूंठ–चोरी–विषयसंग और मूर्च्छा के त्याग से पंच महाव्रतों को धारण करने वाला व्यक्ति साधु होता है। जो साधु–जीवन नहीं बीता सकते, उन्हें गृहस्थ धर्म–मर्यादित जीवन रूप सम्यक्त्व मूल बारह व्रतों को धारण करने चाहिये।

हे कुमार! तुम्हारे शरीर में छत्राकार तीन रेखायें हैं। इससे पता चलता है कि तुम छत्रधारी पिता के पुत्र और छत्रधारी नाना के दोहिते कोई छत्रधारी राजा होने योग्य लक्षणों वाले दीखते हो। इस हालत में अगर अधिक साधना तुमसे न होसके तो भी समय पर सामायिक व्रत की साधना और अरिहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु रूप पंच परमेष्ठी नमस्कार मन्त्र का नित्य स्मरण तुम्हें अवश्य करना चाहिये। शास्त्रों में कहा है–

> सामाइय कुणंतो, सम भावं सावओ घडिय दुगं।
> आउं सुरेसु बंधइ, कम्माण य निज्जरं कुणइ॥ १॥
> समो य सव्व भूएसु, तसेसु थावरेसु य।
> तम्हा समाइयं कुज्जा, इइ केवलि भासियं॥ २॥
> दिवसे दिवसे लक्खं, देइ सुवण्णस्स खंडियं एगो।
> इयरो पुण समाइयं, करेइ न पहुप्पए तस्स॥ ३॥

अर्थात्–जो भव्यात्मा कच्ची दो घड़ि अडतालीस मिनीट तक समभाव से सामायिक करता है वह कर्मों की निर्जरा करता हुआ कम से कम वैमानिक देवता के आयुष्य का अधिकारी होता है। ॥१॥ जो त्रस और स्थावर जीवों के प्रति शत्रु मित्र भाव की विषमता न रखता हुआ समभाव रखता है। वही व्यक्ति सामायिक करने का अधिकारी होता है ॥२॥ एक आदमी हमेशा एक लाख खांडी–(सोलह मण की एक खांडी) सोना दान करता है और दूसरा केवल सामायिक करता है। वह सोना देने वाला सामायिक करने वाले की बराबरी नहीं कर सकता ॥३॥

जह अहिणा दट्ठाणं, गारुडमंतो विसं पणासेइ।
तह नवकारो मंतो, पाव विस नासेइ असेसं ॥१॥
न य तस्स किंचि पहवइ, डाइणि वेयाल रक्ख मारीयं।
नवकार पहावेण य, नासंति असेस दुरियाइ ॥ २ ॥
थंभइ जल जलणं चिंतियमित्तो वि पंच नमुक्कारो।
अरि-मारि-चोर-राउल-घोरुवसग्गं पणासेइ ॥३॥
जे के वि गया मुक्खं, गच्छंति य केइ कम्ममल मुक्का।
ते सव्वे विय जाणसु, जिण नवकार प्पहावेण ॥४॥

अर्थात्—सांप डसे आदमियों के विष को जैसे गारुडि मंत्र नष्ट कर देता है उसी प्रकार नवकार मंत्र मनुष्यों के पाप रूपी विष को मिटा देता है। ॥१॥ नवकार मंत्र

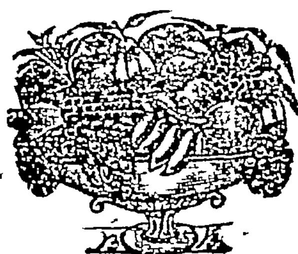
के जाप करने वाले का डाकिनी वेताल राक्षस और महा-मारी कुछ नहीं बिगाड सकते और सारे पाप अपने आप नष्ट हो जाते हैं ॥२॥ पंच परमेष्ठि नमस्कार मंत्र के चिंतन मात्र से जल—आग—दुश्मन—प्लेग—चौर—राजा आदि के किये घोर उपसर्ग मिट जाते हैं ॥३॥ जो कोई भव्यात्मा कर्म मल मुक्त हो मोक्ष में गये हैं जाते हैं—और जायेंगे वे सभी नवकार मंत्र के प्रभाव से ही जाते हैं।

अतः हे महानुभाव कुमार! नवकार मंत्र का स्मरण सदा करते रहना चाहिये जिससे जीवन मंगलमय बन जाता है।

इस प्रकार गुरुमहाराज के उपदेश को सुन कर प्रति-बोध पाये हुए उन श्री चन्द्रकुमार ने गुणचन्द्रने और सारथि ने गुरुदेव से आत्म दर्शन रूप सम्यक्त्व स्वीकार किया, और श्रावक धर्म के अधिकारी हो गये। अमृत—रसास्वा-दन से भी अधिक आनन्दित हुए कुमार ने हाथ जोड कर कहना शरु किया—गुरुदेव! आप जंगम तीर्थ रूप हैं। आपके दर्शन पाकर आज मैं कृतार्थ हो गया हूँ। गुरु की दया के बिना बुद्धिमान पुरुष भी धर्म तत्व को जानने में समर्थ नहीं हुआ करता है। इस तरह सिद्धि-कलायें-सब प्रकार की विद्यायें और आत्म हितकारी धर्मतत्व ये सब गुरु कृपा से ही प्राप्त होते हैं। संसार के सुख और संबंधी तो मिला

ही करते हैं पर तारणहार तीर्थरूप सद् गुरु का समागम भारी भाग्य से ही मिलता है। मैं आज धन्यों से भी धन्य जीवनवाला आप के श्री चरणों के दर्शन से हो गया हूँ।

हे भगवन् तत्व! मेरे आप के प्रवचन ने मुझे नवजीवन प्रदान किया है। हृदय की आंखें आज मेरी खुल गई हैं। मैं आज पंच परमेष्ठी महा मंत्र का जाप करने की प्रतिज्ञा करता हूँ। इस प्रकार श्री गुरु महाराज की स्तुति और वंदना करके कुमार ने वहां से आगे के लिये प्रस्थान किया।



१८

भुवन भास्कर दिन मणि सूर्य प्राणि मात्र को अपनी प्रखर किरणों से संतप्त कर रहा था। आकाश से आग बरस रही थी। गरम हवा के झौंके शरीर पर जलते अंगारों के सामान लगते थे। सभी पेड पौधे झुलस गये थे। गर्मी के मारे पृथ्वी तवे के समान तप रही थी। ऐसे समय में श्रीचन्द्र कुमार अपने मित्र के साथ सुवेग रथ में बैठ नदी नालों वनों उपवनों को पार करता हुआ एक गहन जंगल में जा पहूँचा था।

गर्मी की अधिकता ने कुमार को भी आघेरा था। उस का मुख मुरझा गया था, और प्यास के मारे उसका

कण्ठ सूखने लगा था। पानी का कहीं पता नहीं लगता था। मित्र बहुत दुःखी थे। वे आपस में कहने लगे, न मालूम आगे क्या होने वाला है ?" कुमार सूखे पत्ते की तरह कुम्हला गया है। केवल एक यही उपाय शेष रह गया है कि इस ऊंचे पेड पर चढ कर जल की तलास की जाय।

सारथी झपट कर पेड पर चढ गया। उस ने इधर उधर चारों ओर नजर दौडानी शरु की। थोडी ही देर में दक्षिण की ओर उसे एक सरोवर दिखाई पडा। वह बडी प्रसन्नता से नीचे उतरा और गुणचन्द्र से बोला " मित्र यहां से दक्षिण की ओर बगुले और चकवे उडते नजर आते हैं। अतः अवश्य ही उधर कोई तालाब है। सारथि रथ पर बैठ गया और बात की बात में वे तीनों वहां पहुँच गये। सरोवर के किनारे पर आमों का एक सुन्दर वन था। वहीं पर एक सघन आम के पेड के नीचे रथ ठहराया गया। दोनों मित्र दौड़कर स्वादिष्ट और शीतल जल ले आये। कुमार ने खूब धाप कर पानी पिया। कुछ स्वस्थ होने पर सरोवर की पाल पर आया, और वहां बैठ कर तलाव की शोभा निहारने लगा। कला पूर्ण पत्थरों की सुन्दर बांधनी को देख कर वह अचरज में डूब गया।

थोडी देर बाद मित्रों के साथ तालाब के किनारे २ कुमार घूमने लगा। एक जगह उसने देखा कि कोई धोबी सुन्दर और बहुमूल्य वस्त्रों को धो धो कर धूप में सुखा रहा है। कुमार की दृष्टि धूप में सूखती एक बहुमूल्य और बारीक साड़ी पर पड़ी। उसे देख उससे न रहा गया, और उसने अपने मित्र गुणचन्द्र से कहा—मित्र ! इस साड़ी की ओर देखो। गंध के वशीभूत हुए भौंरे इस पर मंड़रा रहे हैं। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह किसी पद्मिनी स्त्री की साड़ी है। जिसके पसीने की पद्म गंध से प्रेरित ये भौंरे इस पर मंडरा रहे हैं। कहा भी है—

पद्मिनी पद्म-गंधा च मदगंधा च हस्तिनी।
चित्रिणी चित्र गंधाच, मत्स्य गंधा च शंखिनी॥

अर्थात्—पद्मिनी स्त्री के शरीर में कमल के समान सुगंध होती है। हस्तिनी स्त्री के शरीर में हाथी के मद के जैसी गंध होती है। चित्रिणी के शरीर में तरह २ की गंध निकलती है, और शंखिनी स्त्री के शरीर में मछली की सी गंध होती है

कुमार की बात से आश्चर्य चकित हुए गुणचन्द्र ने धोबी से पूछा हे भाई ! इस स्थान का नाम क्या है ? और ये बहुमूल्य वस्त्र किस के हैं ? धोबीने उत्तर दिया "भाई!

तुम विदेशी मालुम देते हो इसोलिये सुनो। यह दीपशिखा नाम को नगरी है। महाराज दीपचन्द्रदेव यहां के शासक हैं। मैं उन्हीं का नल नाम का धोबी हूँ। जिसके किनारे पर आप खडे हैं—यह यहां का सुप्रसिद्ध पद्मसरोवर नाम-का तालाब है। ये वस्त्र तो महारानी प्रदीपवती के हैं, और जो ये साड़ियां हैं, वे उनकी भतीजी और भतीजो की पुत्री की हैं।

गुणचन्द्र ने पूछा महाराज की भतीजी कौन है? इस पर धोबीने कहा देव! सुभगांग राजा की रानी श्री चन्द्र-वतीजी महाराज दीपचन्द्रदेव की भतीजी हैं। उनके वामांग-नाम का एक कुमार और शशिकला तथा चन्द्रकला नाम-की दो पुत्रियां हैं। शशिकला को तो उसके पिता—राजा सुभगांगने रत्नपुर के स्वामी महामल्ल नरेश के साथ ब्याह दी थी। छोटी कुमारी चन्द्रकला बडी ही रूपवती सौन्दर्य से काम प्रिया रतिका भी तिरस्कार करनेवाली परम गुणवती कन्या है।

महाराजा दीपचन्द्र देव कुल—देवी के कथनानुसार पद्मिनी चन्द्रकला को अपने यहां ले आये हैं, और यहीं ननिहाल- (नानेरे) में विवाह महोत्सव करेंगे। किसी ज्ञानी मुनि की यह भविष्य—वाणी है कि—"यह पद्मिनी

चन्द्रकला किसी राज राजेश्वर की राजमहिषी-पटराणी होगी" ।

पद्मिनी चन्द्रकला माता--भाई आदि के साथ इस समय यहां रह रही हैं । इनके नानाजी ने व पिताजी ने विवाह योग्य सारी तैयारियाँ कर ली हैं। केवल वरकी प्रतीक्षा में दिन बीत रहे हैं।

धोबी के ऐसे वचन सुनकर रथको वहीं छोड कुमार अपने मित्र के साथ उस नगरी को देखने के लिये चला। तालाब के एक ओर उसने बड़े २ तम्बू गड़े देखे। पास खड़े एक व्यक्ति को उसने पूछा कि यह किसका पड़ाव है? उस व्यक्ति ने कहा-'महानुभाव! तिलकपुर के प्रधान मंत्री-'धीर' अपने स्वामी तिलक नरेश की आज्ञा से दलबल के साथ कुशस्थल की ओर जारहे हैं। विश्राम के लिये यहां ठहरे हैं। इस समय मंत्रीराज यहां की राज-सभा में अपने 'वीणारव' नाम के गायक के साथ गये हुए हैं।

इस प्रकार सुनकर कुमार मित्र के साथ आगे बढे। मित्र ने कहा सखे! लो आपके तो एक और निमंत्रण आ पहुँचा मालुम देता है। इस तरह वे दोनों परस्पर में बातें करते हुए मार्गमें आये हुए उद्यान को देखने के लिये अन्दर प्रविष्ट हुए। उनके देवोपम सौंदर्य से आकृष्ट

हुए उद्यान रक्षकने उनको शकुन के लिये अनुपम पके हुए आम का फल भेंट किया कुमार ने बड़े आदर के साथ उस फलको लेते हुए, उसे यथायोग्य इनाम देकर सन्तुष्ट किया। भीतर की ओर आगे बढे।

कहीं आमों पर कोयल बोल रही थी, तो कहीं चम्पा अपनी सुनहरी आभा के साथ सुगंधी बखेर रहा था। कहीं कचनार और कदम्ब फूल रहे थे, तो कहीं गुलाब और बकूल की बहार दर्शकों के मन को मोह रही थी। कहीं अशोक वृक्ष अपनी मस्ती में फूल रहा था, तो कहीं नीबू और लींची के पेड़ लहलहा रहे थे। जगह २ बड़ नीम अर्जुन सरल ताल-हिंताल-मंदार-जामुन-शहतूत-आंवला-कटहल-जम्बीर नारंगियों के हरे भरे पेड खड़े हुए थे।

तरह तरह के फल-फूलों से लदे हुए पेड़ों की अनुपम-छटा को देखते हुए कुमार ज्यों ही किसी निकुंज के पास पहुँचे, त्यों ही उन्हें रूप-लावण्यवती लीलावती सखियों के साथ पुष्प क्रीडा करती हुई साक्षात् वनश्री के समान कोई दिव्य कन्या दिखाई दी।

कमल पर जिस प्रकार भौंरे मंडराते हैं उसी प्रकार उसके अलौकिक शरीर पर भौंरे मंडरा रहे थे। यह देख

कुमार ने यह निश्चय किया कि निस्संदेह यह पद्मिनी है। उसे सकाम-भाव से देखता हुआ कुमार धीरे २ मित्र के साथ उद्यान से बाहर निकल आया।

उधर वह राज कन्या भी धीर ललित गति वाले वीर कुमार को देख कर मोहित हुई अपनी चतुरा सखी से बोली प्रिय सखि ! मेरे चित्त के सर्वस्व को चुराने वाले ये पुरुष-सिंह कौन हैं ? और कहां के निवासी हैं ?। उनके साथी को पूछ कर परिचय तो प्राप्त करो ।

आज्ञा पाते ही चतुरा गुणचन्द्र के पास जा पहुँची और बड़ी नम्रता से बोली—हे आर्य ! मैं चन्द्रकला नाम की राजकन्या की चतुरा नाम की दासी हूं । कुमारी ने यहां आप लोगों के दर्शन किये हैं। स्निग्ध भाव से मेरे द्वारा स्वागत करती हुई वे कुमार के नाम और निवास स्थान को जानना चाहती हैं। अतः आप बताने की कृपा करें। और अपना परिचय दें। चतुरा के पूछने पर ज्यों ही मित्र गुणचन्द्र ने प्रसन्न होकर कुमार का कुछ परिचय दिया, त्यों ही कुमारने उसे बलपूर्वक रोक कर नगरी की ओर आगे बढना जारी रखा। नगरी की विशाल सडकें, कोट कांगरों की कारीगरी सजी हुई सुन्दर दुकानों की श्रेणियां, आकाश से बातें करनेवाले उंचे

उंचे राजमहल और चतुरशिल्पियों के कला कौशल को प्रकट करनेवाले श्रेणिबद्ध भव्य-भवन- इन सबको देखता हुआ कुमार भगवान श्रीआदिनाथ के मंदिर के पास पहुँचा। श्रीजिन दर्शन की भव्य भावना से उसने विधि पूर्वक मन्दिर में प्रवेश किया।

उधर चतुरा से सारा हाल सुनकर कुमार की उपेक्षा-वृत्ति से दुःखी हुई चन्द्रकला ने दृढता से कहा कि मैंने अपने मन से इन कुमार के प्रति पति-भाव धारण कर लिया है। ये कुमार ही इस जन्म में मेरे पति होंगे। मेरा अन्तःकरण ही इसमें पक्का प्रमाण है। इनका पता जानने के लिये हमें इनके पीछे चलना चाहिये। ऐसा कह वह सखियों के साथ कुमार के पीछे पीछे चली। कोविदा नाम की सखी को अपने मन की बातें बताने के लिये अपनी मां चन्द्रवतीजी के पास भेज दी।

इस प्रकार पद्मिनी चन्द्रकला श्रीचन्द्र कुमार का अनुसरण करती हुई श्रीजिन मंदिर में पहुँची। वहां कुमार द्वारा कराती हुई भाव भरी भगवान की स्तुति को सुन कर वह बड़ी प्रसन्न हुई। उसने भी भगवान को विधि पूर्वक वंदन किया। वहां चतुराने गुणचन्द्र को इशारे से कुमार का नाम व स्थान पूछा। उसने भी इशारे से ही कुमार

का परिचय–"कुशस्थलपुर के रहने वाले लक्ष्मीदत्त सेठ का पुत्र श्रीचन्द्र कुमार नाम"-बता दिया। चतुरा ने चन्द्रकला को सारे संकेत सुना दिये उसने भी गुणचन्द्र को कुछ विलम्ब करने का संकेत किया। एवं कुमार का परिचय अपनी माता को भी सूचित कर दिया।

इधर कुमार भगवान की चैत्य-वंदना विधि--पूर्वक करता हुआ मूल मन्दिर से निकल कर बाहर मंडप में लौट आता है। वहां कुशल कारीगरों के द्वारा निर्माण किये हुए हाथी सिंह, शुक सारिकाओं के जोडले, पेड-लता व पूतलियों के दिव्य दृश्य देखता हुआ कुमार अपने मित्र-को भी बड़ी बारीकी से दिखाता हुआ द्वार देश के पास आता है। वहां मित्र ने प्रेरणा की कि 'सखे! इस स्वर्गोपम स्थान की अवर्णनीय सुन्दरता को कुछ देर के लिये बैठ कर देखने को जी चाहता है"--इष्टं वैद्योपदिष्टं के न्याय से कुमार भी मित्र की बात को मंजूर करता हुआ वहां बैठ जाता है। उतने में पद्मिनी चंद्रकला उसके दृष्टि पथ की अतिथि हुई।

वह बोला—प्रिय गुणचन्द्र! देखो तो सही कितना सुन्दर रूप है? इस कन्या के प्रत्येक अंग से अमृत के ... झरते हैं। प्रकृति का यह अनुपम निर्माण नहीं

क्या ? मैंने बहुत सी स्त्रियों को देखी हैं परन्तु ऐसा नोहर रूप किसी का भी नहीं देखा। इस प्रकार स्नेहभरी ष्टि से प्रशंसा करते हुए कुमार को देख कर गुणचन्द्र मन ही मन राजकन्या की मनोरथ सिद्धि मानी।

इसके बाद कुमार फिर अपने मित्र गुणचन्द्र से कहने लगे—कि भाई! संसार में सिर्फ मन ही एक ऐसी स्तु है जो मोक्ष और बंधन का कारण है। यह बड़ा ही चंचल है बडे २ योगी महात्माओं के लिये भी दुर्जेय है। सी मन के कारण—

> विमुच्य दृग्लक्ष्यगतं जिनेन्द्रं,
> ध्याता मया मूढधिया हृदंतः।
> कटाक्ष-वक्षोज-गभीर-नाभि-,
> कटीतटीयाः सुदृशां विलासाः॥

सामने बिराजमान जिनेन्द्र देव का ध्यान छोडकर मूढबुद्धिवाले मैंने अपने मनमें स्त्रियों के कटाक्ष स्तन-नाभि और कटि आदि अंगों के विलासों का ध्यान किया।

मित्र! वेही मनुष्य धन्य हैं जो इन लीलावतियों के चक्कर में न फँस कर अपने मन पर काबू रखते हैं। मेरी राय में अब यहां अधिक ठहरना उचित नहीं है। ऐसा कह कर कुमार वहां से चल पडा।

इधर गुणचन्द्र ने कुमार श्रीचन्द्र को कुमारी के संकेत से प्रेरित हो कुछ देर और ठहराने के लिये राज-भवन आदि दर्शनीय स्थानों को देखने का प्रस्ताव रखा। परन्तु स्त्री लाभ की ओर से निस्पृह वृत्ति वाले कुमारने उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया। जल्दी से रथ की ओर चलते हुए उनने राजमहल--बाजार--चौराहे- प्याउएँ--बावडियाँ- दुकान-मकान आदि सरसरी निगाह से देख लिये और सीधे रथ की ओर जा पहूंचे।

कुमार की इस निस्पृहवृत्ति को मन ही मन सराहता हुआ गुणचन्द्र इस प्रकार के उदार और आदर्श गुणी दोस्त को पाने के कारण अपनी आत्मा को धन्य मानता हुआ, अपने भाग्य को अत्यधिक मानने लगा। उसने सोचा अभी तक न वह कन्या आई न वह दासी ही यहां कहीं दिखाई देती हैं। चलने की उतावल करनेवाले कुमार को कैसे ठहराउं? इतने में उसे बडी मधुर मुरजध्वनि के साथ संगीत सुनाई दिया। उसने कुमार से कहा—देव! इस मधुर संगीत में भारी आकर्षण है। इस देश के इस प्रकार के संगीत का रसास्वादन बार २ कहां होगा! मेरी राय में इस आनंद का रसास्वाद लेकर फिर पीछे अपन रथ की ओर चलेंगे। कुमारने भी मित्र के इस प्रस्ताव पर सहमति प्रकट की। संगीत की सुधामधुर स्वर लहरी में दोनों दोस्त लीन होगये।

१६

संसार में आदमी सोचता कुछ है। प्रकृति में कुछ और ही निर्माण होता जाता है। इसी लिये ज्ञानी लोग फरमाते रहते हैं कि निरभिमान भावसे संसार के प्रत्येक काम को करते जाओ। होना है वह होकर के ही रहता है और नहीं होना है वह कितना ही संकल्प विकल्प करते रहो नहीं होगा। संसार का प्रत्येक प्राणी प्रकृति की अनंत शृंखला की एक २ कडी रूप है। प्रत्येक कडी दूसरी कडीयों से जुडी हुई हैं। अपेक्षा रहित कहीं कुछ नहीं है।

दीपशिखा के सेठ वरदत्त को स्वप्न में भी खयाल नहीं था कि मेरे बच्चे के लेखशाला समारोह में मेरे माननीय सेठ लक्ष्मीदत्त या उनके कुमार श्रीचंद्र आसकेंगे।

न कुमार श्रीचन्द्र को ही पता था कि इस समारोह में अपने को पहूंचना है। प्रकृति के गुरुत्वाकर्षण से खींचे हुए ही कुमार दीपशिखा में केवल मनोरंजन के लिये पहूंचे थे। अपने दोस्त के साथ दीपशिखा की अपूर्व च्छटा को देखते हुए अपने पिता के अनन्य अनुरागी वरदत्त सेठ के घर में होनेवाले समारोह संगीत को अनजान अवस्था में देख सुन रहे थे। इतने में अचानक सेठ वरदत्त की दृष्टि श्रीचन्द्र कुमार पर जा पडी। उसने कुमार को पहचान लिया। भारी प्रसन्नता से बडे आदर के साथ स्वागत करते हुए उसने कहा—" अहा! सेठ लक्ष्मीदत्त के उदार कुमार श्रीचन्द्र के दर्शन पाकर मेरे नेत्र मेरा जन्म और मेरा यह घर आंगन पवित्र होगये हैं। कुमार आप कहां ठहरे हैं? क्या आप मुझे नहीं जानते जो इस प्रकार अजनवी के रूप में दूर २ खडे हैं। यह विशाल वैभव सब आप लोगों की कृपा का ही तो फल है फिर इस प्रकार परायेपन का भाव क्यों प्रकट किया जा रहा है। आइयें आज मेरे बच्चे के लेखशाला-प्रवेश संस्कार का समारोह चल रहा है। हे कुमार! इस प्रकार अचानक आपके पुण्य पदार्पण से मेरे घर में सोनें के सूर्य का उदय हुआ मैं मानता हूं।

कुमार ने वरदत्त को पहचान लिया। यों ही क्रीडा

करने के लिये घर से निकलना हुआ है और अतर्कित भावसे यहां आना हुआ है ऐसा कहते हुए कुमार को वरदत्तने बडे अनुनय विनय और आदर के साथ घर में लिया। स्नान-भोजन आदि से अपूर्व सत्कार किया।

गुणचंद्र इस प्रकार रुकने से बहुत प्रसन्न हुआ। कुमार की आज्ञा से वरदत्त की प्रेरणा से गुणचंद्र सुवेग रथ को इसी जगह ले आया।

दीपशिखा के व्यवहारियों को पता चला कि कुशस्थल के नगर सेठ—लक्ष्मीदत्त के चिरंजीवी श्रीचंद्र कुमार यहां आये हैं। सबने उन का सुंदर स्वागत किया। सब के बीचमें बैठा श्रीचंद्र शरद् ऋतु के पूर्ण चंद्र की तरह शोभा पाने लगा। वहां उपस्थित भाट चारणों ने कुमार को पहचान कर उन के दिव्य गुणों से भरे कीर्ति काव्य कहने शरु किये। उस समय कुमार और वहां का दृश्य बडा ही दर्शनीय हो रहा था।

उधर दीपशिखा के स्वामी दीपचन्द्र देव राजसभा में अपने मन्त्री सामंत सेठ साहुकारों के साथ बिराजमान थे। तिलकपुर के मंत्री 'धीर' भी बडे आदरणीय स्थान पर महाराजा के सामने बैठे थे। उन्हीं के साथ आया हुआ वीणारव नाम का मुख्य गायक दूसरे सोलह गयकों के

साथ तरह २ की कला-बाजियों से राजा को प्रसन्न कर रहा था। अंत में उसने अनेक भाषाओं और राग रागणियों से युक्त श्रोताओं के कानों में अमृत जैसा श्रीचंद्र का निर्मल चरित्र गाना शुरु किया।

सभी सभासद् उपर को गर्दन उठाये कान देकर मंत्र मुग्ध सुन रहे थे। राजा के पीछे की तरफ परदे की आड में बैठी हुई महारानी प्रदीपवती महाराजा की भतीजी राजा सुभगांग की रानी चन्द्रवती आदि रानियां भी बडे चाव से सुन रही थी।

इस बीच में कोविदा और चतुरा नाम की दसियों ने आकर कुमारी चन्द्रकला के संकल्पों को स्पष्ट किया। कुशस्थानपुर के श्रीचन्द्रकुमार के प्रति कुमारी का स्नेह हो चुका है। उद्यान में-मिन्दर में कुमार के देखे बाद कुमारी ने दृढ संकल्प कर लिया है कि इस जन्म में यदि पति होगा तो वह कुमार ही होगा। अतः आप लोग उचित प्रबंध करें।

इस बात को सुन कुमारी की माता चन्द्रवती ने कहा कि ऐसा कैसे हो सकता है। कुल-शील का पूरा पता लगे बिना अज्ञान अवस्था में कैसे यह संबंध हो सकता है ?। चलो चाचाजी के पास चलें और उन्हें इस समाचार से अवगत करें।

राजा दीपचन्द्र के पास पहूंच कर उनकी भतीजी रानी चन्द्रवती ने अपनी कन्या चन्द्रकला के सारे विचार कह सुनाये। सुनकर राजा कुछ हंसते हुए बोले-"विवाह संबंध-जीवन संबध कहा जाता है। बच्चों के बनाये मिट्टी के घर जैसा वह नहीं है जो जब चाहा बनाया, बिगाडा जा सके बिना कुल, शील, प्रभुत्व, विद्या, शरीर, धन आदि के विचार किये, विवाह की बात करनी भी हमें शोभा नहीं देती। एक अपरिचित मुसाफिर को कन्या दान करने में हमारा कोई यश न होगा। मेरे कंवर सहाब राजा सुभगांग देव क्या कहेंगे ? राजन्यों में हम कैसे मुंह दिखायेंगे ? ! बेटा चन्द्रवती ! क्षमा करो। चन्द्रकला का विवाह तो स्वयंवर से किसी राज-राजेश्वर के साथ ही करेंगे।

उधर चन्द्रकला जिनमंदिर में दर्शन पूजन विधि को करके अपनी माता के पास महल में पहूंची। रास्ते में हताशमनवाली चतुराने माता और मातामाह के द्वारा वर-विषय में जो अरुचि प्रकट की थी उसे राजकुमारी को सुना दी। सुनते ही चन्द्रकला के हाथ पैर शिथिल हो गये। सिर घूमने लगा। वह बेहोश होकर भूमी पर गिर पडी। पास में सेवा में खडी सखियों ने बहुत प्रकार के

शीतल उपचार कर के बडी कठिनता से उसे होश में लाई। सारे राज महल में भारी तहलका मच गया।

यह सारी घटना दौड़ कर प्रियंवदा ने राजकुमारी की माता से कही। वह भी बहुत जल्दी से पुत्री के प्रेम से आकस्मिक हुई घटना के स्थल पर आगई। पुत्री की वैसी दशा देखकर रानी कहने लगी "बेटी! तुम इतनी उतावली हो कर दुःखी क्यों होती हो? जरा धीरज धारण करो। तुम्हारे कल्याण में ही हम सब का कल्याण है। तुम स्वयं समझदार हो। हमें तुम्हारे पाणिग्रहण की चिंता है। हम तुम्हारी इच्छा को एक बडे भारी स्वयंवर बहुत शीघ्र ही पुर्ण करने वाले हैं।

राजकुमारी ने मां को बीच में ही रोकते हुए कहा- मां! सती कन्या एक वार जिसे मनसे वर लेती है, उसे छोड किसी दूसरे को पति रूपमें स्वीकार नहीं करती है। मुझे स्वयंवर की अब कोई इच्छा नहीं। अन्तिम रूप से मैं आप से सूचित कर देना चाहती हूं कि इस जन्म में कुशस्थल के श्रीचंद्र कुमार के साथ यदि मेरा व्याह न हुआ तो मैं आग में जल कर अपने प्राणों को दे दूंगी।

पुत्री के इस अटल निर्णय को सुन कर रानी चंद्रवती बडी चिन्तित हुई। उसने सेवकों के साथ राजा

दीपचन्द्र देव को कहलाया कि स्थिति यह है इसलिये आप श्रीचन्द्रकुमार की खोज करावें। चतुराने भी जाकर कुमारी के बेहोश होने आदि का सारा वृत्तान्त राजा से कह सुनाया।

यह सुन सभा–विसर्जन करके राजा दीपचन्द्र देव और रानी प्रदीवती वहां आये। वार २ पूछने पर हिमालय की तरह अचल रहने वाली कुमारी ने उन सब को वही उत्तर दिया जो पहले अपनी माता को दे चुकी थी।

इस अवस्था में राजाने सोचा इसके कल्याण के लिये ही हमारा स्वयंवर आदि का विचार था। जब कि यह चाहती है, और यदि चाहना के मुताबिक काम न हुआ तो यह मरना चाहती है। ऐसी अवस्था में हमारे आग्रह का भी न रहना श्रेयस्कर है, आखिरकार विवाह से जो फलाफल होना है वह इन्ही को तो होगा। हम लोग तो निमित्त मात्र हैं। इसमें भी प्रधानता-पूर्वकृत-कर्म संस्कारों की ही रहेगी न ?।

इस प्रकार सोचते २ राजाने श्रीचन्द्र–कुमार की बड़े जोरों से खोज करनी शरु करदी। थोडे ही समय में वरदत्त सेठ के घरमें होने की खबर भी मिल गई। वे शीघ्र ही वरदत्त सेठ के घर पहूंचे। वहां रूपमें कामदेव का

तिरस्कार करने वाले श्रीचन्द्र को देख कर राजा दीपचन्द्र-देव आश्चर्य-चकित हो गये।

राजा को अपने घरपर आये देख वरदत्त स्वागत के लिये शीघ्रता से उठ खडा हुआ। उपस्थित व्यवहारियों-के व श्रीचन्द्र के साथ उनके सन्मुख जाकर बड़े आदर-से उन्हें लिवा लाया। एक रत्नजटित स्वर्ण-सिंहासन पर राजा के बैठ जाने पर श्रीचन्द्रने राजा को प्रणाम किया। राजा दीपचन्द्रने भी बड़े प्रेम से कुमार को गोद में बिठा-या और किसी अज्ञात दौहित्र-सुख का अनुभव किया। ज्योंही वरदत्त ने कुमार का परिचय दिया, त्योंही वीणा-रव गायक ने कहा देव! ये वे ही श्रीचन्द्र कुमार हैं जिनकी कीर्ति-कथा हमने प्रबन्ध में गाई थी। यह कुमार याचकों के लिये कल्प-वृक्ष के जैसे हैं। हम सदा इनकी जय मनाते हैं।

इधर चन्द्रकला को लेकर प्रदीपवती और चन्द्रवती भी कुमार को देखने की उत्कंठा से वहां वरदत्त के घर ही आ पहूँची। शुभ-लक्षण और गुणों से संपन्न कुमार को देख कर सभी बोल उठे—

"अहो ऐसे गुणवाले इस कुमार को पति बनाने का निश्चय करके सचमुच चन्द्रकला ने ठीक ही किया है। चन्द्रकला चन्द्र के साथ ही तो रहा करती है।

सेठ वरदत्त और कुमार श्रीचन्द्रने राजा के सामने बहुमूल्य भेट रखी। राजा ने उसे स्वीकार कर प्रेम के साथ कुमार के लिये वापस कर दीया। कुमार ने भी उसे विनय के साथ मस्तक से लगा, उदार भाव से याचकों में वितीर्ण कर दी। ठीक ही तो है, किया हुआ दान मनुष्य को महत्ता प्रदान करता है।

वरदत्त ने कहा राजन्! आज मेरा अहोभाग्य है जो कुमार का व आपका शुभागमन मेरे गरीब घरमें अतकित भावसे हो गया। मेरे जीवन इतिहास में आज से बढ़कर कोई दिन नहीं होगा ऐसा मैं मानता हूं।

वरदत्त के आभार प्रदर्शन करके चुप हो जाने पर राजा दीपचन्द्रने कुमार को लच्य करके कहा—"कुमार! राजा सुभगांग की राज कुमारी मेरी दौहिती चन्द्रकला नैमित्ति कों के कथनानुसार विवाह की तैयारी के साथ यहां रह रही है। उद्यान में मंदिर में उसने आपके प्रति पूर्व पुण्य संस्कारों से प्रेरित हो पतिभाव धारण कर लिया है। वह अपने संकल्पों पर मेरु के समान दृढ भी है। अतः आप हमारी प्रार्थना से उसका पाणिग्रहण कर उस की इच्छाओं को पूरी करें और हमें कृतकृत्य बनावें।

राजा के वचन सुन कुमारने वडे धीर गंभीर वचनों से कहना शरु किया देव! बड़े लोगों को उत्तर देना एक-

प्रकार की धृष्टता है उसके लिये मुझे क्षमा करें। उत्तर न देना भी दुर्विनीतता का कारण न बन जाय ऐसा सोच कर कुछ कहता हूँ आप जरा गौर फरमावें।

मैं अपने पिता से केवल क्रीडा करने की आज्ञा लेकर ही घर से निकला हूँ। जाति से मैं एक वणिक पुत्र हूँ। वनिये के घर में राजकन्या को वनियानी वन कर रहना होता है, जो आपके कुल की शोभा का कारण न होगा। कहां वैश्य घर और कहां राजमहल की लीला? इसका परिणाम पत्थर के नीचे दबी हुई अंगुली की तरह दुःखदायी ही होगा। विना विचारे किये हुए कार्य के लिये हमेशा पश्चात्ताप करना पडता है अतः महरवानी कर इस प्रस्ताव को आप मेरे सामने उपस्थित ही न करें।

कुमार की इस निस्पृहता—भरी वाणी को सुन कर राजा रानी और राजकन्या का भाई वामांग सभी क्रमशः कहने लगे—कुमार! संपत्ती भाग्यकेअनुसार ही मिलती है। पिता अपने उसी रूप में रहता है और पुत्र राजा बन जाता है क्या इतिहास इस वात की साक्षी नहीं देता कि कई राजपुत्र मंत्रिपुत्र और श्रेष्ठिपुत्र भाग्य की परीक्षा के लिये पृथ्वी पर घूमते हुए पिता के विना भी राज्य धन और कन्याओं के स्वामी नहीं बने?

हे भाग्यशाली ! जाति क्या जन्म से ही होती है ? नहीं २ गुणों से भी जाति का निर्माण होता है। इसी लिये शास्त्रों में गोत्र कर्म को परिवर्तन शील माना है। आप के गुण क्षत्रियों से किसी तरह भी कम नहीं है। राधावेध की साधना से आपने अपने आपको सर्व श्रेष्ठ क्षत्रिय प्रसिद्ध किया है यह भूलने जैसी बात नहीं है। नैमित्तिकों ने जो संकेत किये थे वे सब आप में मौजूद हैं।

हे महानुभाव ! स्त्री हमेशा पति का अनुसरण करती है। ऐसा करने में ही उसकी खानदानी बखानी जाती है। इसके विपरीत आचरण से स्त्री उभय भ्रष्ट मानी जाती है। अतः सुसराल के व्यवहार को मानने में अपयश की कोई बात नजर नहीं आती न उससे हमें कोई दुःख ही होगा।

हे विवेकी ! पुण्योदय से ही स्त्री पुरुष सुखी होते हैं न कि बडे-छोटे घरमें जाने से ? अतः वैश्यघर और राजमहल में अधिक अंतर हमारी नजरों में नहीं आता।

हे चतुरशिरोमणि ! पद्मिनी चन्द्रकला ने आप को जो पति रूपमें चुना है यह अविचारी कार्य नहीं है। अविचारी कार्य संताप का कारण होता हे। सोच समझ कर किया हुआ काम सदा सुखदायक ही होता हैं।

अतः आप हमारी प्रार्थना पर गौर फरमावें और अपनी स्वीकृति प्रदान करावें।

राज-परिवार के अनुपम युक्ति-संगत आग्रह को देख कर कुमार ने विवाह के लिये मौन स्वीकृति दे दी। सर्वत्र आनन्द आनन्द का उल्लास पूर्ण वातावरण छा गया।



२०

पुण्यवान् पुरुष सदा निस्पृही होते हैं। संसार में निस्पृही--पुरुषों के पग पग में निधान हुआ करते हैं। पत्थर में हाथ डाला जाता है, और चिंतामणि रत्न की प्राप्ति होती है। इसीसे ज्ञानी लोग सदा फरमाते हैं कि हेभव्यात्मओं! स्वार्थ का त्याग कर के निस्वार्थ वृत्ति से धर्माचरण करते रहो। जिससे भावीका निर्माण वडे सुन्दर ढंग से होगा।

कहते हैं " आडे हाथ देने से, भोजनमें घी जादा पडता है--इसी प्रकार श्रीचन्द्र कुमारने राजा दीपचन्द्र

देव की पद्मिनी कन्या--चन्द्रकला से व्याह के लिये की हुई प्रार्थना को थोडासा किन्तु परन्तु कर के अपने लिये अधिक गौरव का स्थान प्राप्त कर लिया।

राजा रानी की और परिवार वर्ग की अनुमति से और श्रीचन्द्रकुमार की स्वीकृति से राजकन्या चन्द्रकलाने बडी प्रसन्नता से आगे बढ कर सुन्दर सुगंधी फूलों की वरमाला कुमार के गले में पहना दी। लज्जावनत होती हुई तिरछी नजर से कुमार की अलौकिक रूप—माधुरी को अनिमेष भाव से निहार कर मन ही मन अपने जन्म को सफल समझने लगी।

उस समय कुमार मनमें कुछ सोच समझ कर वहां से उठ खडा हुआ और शौचादि का बहाना बना कर सारथी समेत अट्टालिका से नीचे उतर आया। गुणचन्द्र ने रानियों से कह दिया कि अगर कुमार रथमें बैठ गया तो फिर गया समझियें हाथ नहीं आने का है। इस बात को जान कर वामांग कुमार और चतुरा आदि सखियां कुमार को घेर कर प्रेम-पूर्वक महल में वापस लिवा लाये।

कुमार ने एक पान का बीडा देकर चतुरा से कहाँ कि अपनी मलकनी को देकर इसके गुणों का वर्णन करा-ओ—तब कोकिलकण्ठी राजकुमारी ने अपने प्रियके पहिले प्रसाद को पाकर प्रसन्नता से कहना शरु किया।

ताम्बूलं कटु तिक्त मुष्ण-मधुरं क्षारं कषायान्वित,
वातघ्नं कफनाशनं कृमिहरं दुर्गन्ध—निर्नाशनम्।
वक्त्रस्याभरणं विशुद्धि करणं कामाग्नि संदीपनं,
स्वामिन्नेभि रिदं त्रयोदश गुणै युक्तं प्रसादीकृतम्॥

स्वामिन्! पान कड़वा–तीखा–गरम–मीठा–खारा कषैला–वादी नाशक–कफ नाशक–कीटाणु नाशक–दुर्गन्ध-हरने वाला–मुखका अलंकार विशुद्धि करने वाला कामाग्निको चेतानेवाला इन तेरह गुणों से युक्त होता है। इसका आपने ठीक ही प्रसाद दिया है।

कुमार ने कहा यह बाह्य पान के गुण हुए आभ्यंतर पान कैसा होता है?—तब कुमारी कहती है—

सन्नाग–पत्राणि मिथः प्रियं वचः
सुप्रेम–पूगानि सुदृष्टि–चूर्णकं।
संतोष कपूर सुगन्ध वर्तिका—
तवेदृशं बीटकमस्तु मे विभो!।

हे नाथ! जो परस्पर में प्रेम वचन हैं वे ही नागरवेल के पान हैं सुन्दर प्रेम ही जिसमें सुपारी है। सद्विवेक-दृष्टि ही जिसमें मसाला है। संतोष ही जिसमें कपूर है। आपके द्वारा इस प्रकार का पान बीड़ा मुझे मिलो।

कुमारी से चतुरा द्वारा पूछे जाने पर कुमार ने कहा—

सत्यं वचो-नागर-खण्ड-बीटकं
सम्यक्त्व-पूगं शुभ-तत्त्व-चूर्णकं ।
स्वाध्याय-कर्पूर--सुगन्ध--पूरितं
तदस्तु मुख्यं शिव-सौख्य कारकम् ॥

देवि चतुरे ! मेरे ख्याल में सत्य वचन ही नागर-पान का बीड़ा है। सचाई की उसमें सुपारी है। शुभ तत्त्व चिंतन का उसमें स्वादिष्ट मसाला है और जो स्वाध्याय कर्पूर से सुवासित है। वही मुख्य रूप से शिव-सुख को करने वाला अन्तरंग पान बीड़ा है।

इस प्रकार काव्य गोष्ठी चलती हो थी उसमें वामांग कुमार और चतुराने चन्द्रकला से कहा आप 'श्रीचन्द्र' इस नाम का वर्णन कीजियें-कुमारी ने उन लोगों के आग्रह से कहा—

लक्ष्मी-केलिसरोऽट्टहासनिचय. काष्टावधू--दर्पणः
श्यामावल्लिसुमं ख-सिन्धु-कुमुदं व्योमाब्धिफेनोद्गमः ।
तारागोकुल-शुक्ल-गौरति-गृहं छत्रं स्मर-क्ष्मापते—
श्चन्द्रः श्रीसकलश्चिरं विजयतां ज्योत्स्ना सुधा-वापिका ॥

लक्ष्मी का क्रीडा सरोवर, हास्य का समूह, दिशा रूपी स्त्री के लिये मुख देखने का दर्पण रात्री रूप लता का पुष्प गगनसिन्धु का कुमुद, आकाश रूप समुद्र का झाग, तारा रूपी गोशाला की कामधेनु सफेद गाय, रति का घर,

कामदेव रूपी राजा का सफेद छत्र, और चांदनी रूप अमृत भरी बावड़ी के जैसे श्री शोभावाली चन्द्रकला से संपन्न 'श्रीचन्द्र' देव जयवंते रहो।

इसके बाद सब सखियों ने कुमार से भी कहा—हे कुमार! कृपा कर आप भी 'चन्द्रकला' इस नाम का अर्थान्तर-से वर्णन कीजियें—बारंबार कहने पर श्रीचन्द्र ने कहा—

ॐ कारो-मदन द्विजस्य गगन-क्रौडेक-दंष्ट्रांकुर
स्तारा मौक्तिक शुक्ति रन्धतमसः स्तम्बेरमस्याङ्कुशः।
शृङ्गारागल-कुंचिका विरहिणी मानच्छिदे कर्त्तरी,
सन्ध्या-वार-वधू नखक्षतिरियं चान्द्रीकला राजते॥

संसार में चन्द्रमा की कला क्या है? तो कहते हैं-कामदेव रूप ब्राह्मण का ओंकार। आकाश रूप सूअर की दाढ का अंकूर। तारा रूप मोतियों की सीप। अंधेरा रूप हाथी का अंकूश। शृंगार रूप ताले की चाबी। विरहिणी के मान को काटने की कैंची। सन्ध्या रूप वेश्या के शरीर में जार पुरुष का किया हुआ नख-क्षत। इस प्रकार यह चन्द्रकला चमक रही है।

इस प्रकार हास-परिहास के बीच होती हुई काव्य-गोष्ठी को सुनकर सब लोग दंग रह गये। परस्पर लोग कहने लगे—विधाता ने बड़ी सुन्दर जोड़ी मिलाई है।

इन लोगों के दिव्य दर्शन में साथ देने के लिये ही मानो सूर्य देव का भी आकाश में आना हुआ है। इस प्रकार प्रातःकाल होने पर हमेशा के नियमानुसार सबकी आज्ञा से श्रीचन्द्रकुमार सामायिक-प्रतिक्रमण-देव-पूजा आदि कृत्यों में लग गया।

राजा रानी राजकुमार-कुमारी-सभी वरदत्त सेठ से सत्कारित सन्मानित होते हुए अपने राजमहल में आये। प्रातः कृत्यों से निवृत्त हो राजा ने ज्योतिषी से विवाह लग्न पूछा। पण्डित ने कहा देव! कल वैशाख--शुक्ला-पंचमी का दिन वैवाहिक कार्य के लिये सब रेखाओं से शुद्ध और शुभ है।

राजा दीपचन्द्र-देव ने कन्या के पिता राजा सुभगांग-। कहा कि इस समीपवर्ति लग्न में कुशस्थलेश्वर महा-राजाधिराज प्रतापसिंहजी कैसे आ सकेंगे? इस काम में उनकी उपस्थिति अत्यधिक वांछनीय है। इस पर ज्योतिषी ने कहा महाराज! यदि आप सबका भला चाहते हैं तो ननु नच किये विना कल के मुहूर्त में "शुभस्य शीघ्र"—के न्याय से विवाह कर दीजिये। ऐसी नैमित्तिक की सलाह से विवाह की तैयारियाँ होने लगी।

रानी प्रदीपवती ने विचार किया यह मेरी पुत्रीसूर्यवती के कुशस्थल पुर के नगर-निवासी सेठ का पुत्र है। इसलिये

यह उसी का पुत्र है ऐसा मानकर उसने श्री चन्द्र को ओर रहकर वर पक्ष की तरफसे विवाह के नेकचार करवाये और सप्त-खण्डी महल में विवाह की सारी सामग्री तैयार करवा दी।

श्रीचन्द्र के पास विवाह के उपयुक्त कुछ नहीं था। वस्त्राभूषणों से लेकर सारी आवश्यक वस्तुओं का प्रबंध रानी प्रदीपवती ने ही किया कुल स्त्रियां मंगल गीत गाने लगीं। मनोहर बाजे वजने लगे। मनोरंजन के लिये नाच—गान आदि कराये गये। कुमार हाथी पर सवार हो राजकीय सेना और लवाजमे के साथ धूमधाम से विवाह मण्ड़प के द्वार पर पहूंचे।

कुलाचार के अनुसार विवाह के सारे रीति—रिवाज़ पूर्ण किये गये। मातृका मण्डल के पास बैठाकर मंगल-गीत गाये जाने लगे। बाजे वजने लगे। पुण्याह पुण्याह का पाठ होने लगा। शांतिपाठ किया गया। वन्दीजन स्तुति पाठ करने लगे।

लग्नांश की उदय—वेला में ज्योतिषी ने वर वधू का पाणिग्रहण करा दिया। बादमें सुहाग और पारस्परिक प्रेम को स्थिर बनाये रखने का उपदेश रूप में दोनों को ध्रुव दर्शन कराया। इस प्रकार वहां श्रीचन्द्रकुमार की विवाह विधि विस्तार पूर्वक बड़े आनन्द से ठाठ बाट के साथ सम्पन्न हुई।

राजा दीपचन्द्रदेवने भी विवाह महोत्सव में अपनी ओर से कोई कोर कसर बाकी न रखी। करमोचनावसर में हाथी घोड़े सोना चांदी मणि रत्न आदि सभी गृहस्थ-सम्बन्धी राज योग्य आवश्यकीय वस्तुएं दहेज में प्रदान की। कुमारी की माता रानी चन्द्रवती ने श्रीधरणेन्द्र द्वारा मिले हुए दिव्य रत्नहार को और चन्द्रकला के भाई वामांग कुमार ने सिंहपुर से लाई हुई सारी सामग्री को बड़े आदर और स्नेह के साथ दहेज में दे दी। चतुरा कोविदा—प्रियंवदा आदि नामवाली बहत्तर दासियां मय वस्त्राभूषणों के दी गई।

राजा दीपचन्द्र ने कहा कुमार! इतने दिन कन्या पिहर में स्वेच्छा पूर्वक रही। कभी इसके मनको कोई बाधा नहीं पहूँचाई गई। अब आज से यह आपकी अर्धांगिनी बनी है। आप इसके हानि लाभ के कर्त्ताधर्ता हैं। हम आप जैसे योग्य जमाई को पाकर निश्चिंत होते हैं। इस प्रकार कुछ कह सुनकर एक दूसरे अपने कर्तव्य भार से मुक्त हुए।

दूसरे दिन प्रातःकाल में कुमार श्रीचंद्र अपनी नवोढा पत्नी चन्द्रकला के साथ राजकीय चिह्नों को धारण करके हाथी पर सवार हो बडी सज धज से शहर के

प्रमुख राजमार्गों से होकर सवारी के तौर पर मय--दहेज सामग्री की सजावट के साथ निकले ।

मार्ग में स्थान स्थान पर नाच गान होते जाते थे । गगनभेदी तोपों की गडगडाहट के बीच जोरों की जयध्वनियां हो रही थी । चन्द्रकला अपने भाग्य पर इठलाती हुई मन ही मन प्रसन्न होकर अपने को धन्य समझ रही थी । कुमार स्थान २ पर दान देता हुआ अपने विवाह की खुशी में सजाये हुए नगर की शोभा को देखता जाता था । क्रमशः सवारी निश्चित उतारे पर जा पहूंची । वहां विवाह की बाकी रही सारी विधि सम्पन्न की गई । अपनी तरफ से कुमार ने सारे नगर--निवासियों को भोजन कराया । इस प्रकार चारों ओर खुशी का साम्राज्य छा गया ।

इधर तिलकपुर से आये हुए धीरमंत्री ने विश्वस्त सूत्रों से निश्चय करके भारी प्रसन्नता से श्रीचन्द्रकुमार के पास आकर प्रार्थना की कि "हे कुमार ! तिलकपुर में राधावेध की साधना करके आप चुपचाप चले आये तबसे वहां आपके विवाह को प्रतीक्षा की जा रही है । कृपा कर अब आप को वहां चलना चाहिये ।"

कुमार ने उत्तर दिया—"मंत्रिजी ? आपके इस आमंत्रण का मैं आदर करता हूं । परंतु इस विषय में मेरे पिता

ही प्रमाण हैं। इसका जवाब मैं नहीं दे सकता हूँ। आपको इस संबंध में उन्ही से बातचीत करनी चाहिये।

कुमारकी इस बात से धीर मंत्री बडे प्रसन्न हुए। कुमारसे अति सन्मान और सत्कार को पाकर वे कुश स्थल में कुमार के पिता सेठ लच्मीदत्तजी से मिलने के लये कुमार की आज्ञा लेकर चलदिये।

कुमारने भी राजा दीपचन्द्र देव से अपने नगर की ओर जाने की आज्ञा मांगी। बडी मुश्किल से राजा को आज्ञा देनी पडी। आखिरकार कुमार राजा की दी हु सारी देहज–सामग्री को लेकर रवाना हुआ। केवल हाथि यों को उसने वहीं–दीप शिखा में ही रखा।

राजा, रानियें, राजवर्गी, और राज–परिवार के लोग मय-नगर-निवासियों के–कुमार को पहूँचा ने के लि नगर से कुछ दूरतक गये। कुमारने उन सब को प्रथ विश्राम पर ठहरा कर, अलग २ नमस्कार करके, उ सब से बिदा मांगी। कुमार के प्रेम और भक्ति से प्रस हुए उन सबने तरह २ के आशीर्वाद दिये। अपनी ओर से उचित शिष्टाचार करके मन में हर्ष और विषाद लिये 'जल्दी दर्शन दीजियेगा' कहते हुए दीपशिखा के नागरि क अपने नगर की ओर लौट गये।

रानी प्रदीपवती और माता चन्द्रवती ने भी कुलोचित शिक्षा देते हुए कहा—

अभ्युत्थानमुपागते गुरुपतौ तद्भाषणे नम्रता,
तत्पादार्पित दृष्टि रासन—विधि स्तस्योपचर्यास्वयम्,
सुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतो मुञ्चेच्च शय्यामपि,
प्रोच्चैः पुत्रि! निवेदिताः कुल वधू-सिद्धान्त-धर्मा अमी ॥

बेटी! गुरुजनों और पति के आने पर अपने आसन से उठ कर उनका स्वागत करना। उनके साथ संभाषण में नम्रता रखना। अपनी लज्जालु दृष्टि को उनके चरणों की ओर झुकाये रखना। आने पर उन्हें आसन देना। अधिक क्या? उनको खिलाकर खाना, सुलाकर सोना, जगने से पहिले जगना, यही धर्म कुलीन स्त्रियों के लिये शास्त्रों में बताये गये हैं।

इस प्रकार चन्द्रकला को उनकी सखियों को दास-दासियों को सबको यथायोग्य शिक्षा देकर आंखों में हर्ष और विषाद के आंसू भर, आशीर्वाद देती हुई दोनों राजा दीप-चन्द्र देव के साथ लौट आई। वरदत्त सेठ ने भी कुमार की आज्ञा से अपने घर की राह ली। उपस्थित याचकों को वस्त्र-आभूषण घोड़े आदिकों के दान से संतुष्ट करके कुमार ने विदा किया।

सब के चले जाने पर कुमारने अपने कुटुम्बियों के प्रथम वियोग से व्यथित चन्द्रकला को समझाबुझा कर शान्त किया। धीर मंत्री की सेना सहित धीरे धीरे चलनेवाली अपनी सेना को पीछे छोड दिया। देखरेख के लिये अपने प्यारे मित्र-गुणचन्द्र को नियुक्त कर दिया। खुद सारथी समेत बड़े वेग से रथ द्वारा रास्ता तय करके उसी रात्री में कुशस्थलपुर के बाहर के अपने श्रीपुर स्टेट में आपहुँचा। रथ वहीं छोड उसी समय घर गया और कुटुम्बियों से जा मिला।

कुमार को आया देख कर माता पिता बडे प्रसन्न हुए पूछने लगे कि—बेटा! पांच दिन तक तुम कहां रहे? किसीने बलात् रोके रखा था? या अपनी इच्छा से कहीं रुके थे?

कुमार ने कहा पिताजी! दीपशिखा के वरदत्त सेठ अचानक मिल गये थे। उनके आग्रह से उन के घर पर मुझे वहां होने वाले समारोह में सम्मिलित होना पड़ा। बडी मुश्किल से आज उन से विदा होकर आया हूं।

पिताने कहा बेटा! तुम्हारे उदार चरित्र और उज्ज्वल गुणों से हम ही नहीं महाराज प्रतापसिंह भी बड़े प्रसन्न हैं। प्रसन्नता को सार्थक करने के लिये उन्होंने

म्हारे लिये रत्नपुर नाम का एक बड़ा नगर प्रदान किया है। अब अपनी ओर से कृतज्ञता प्रकट करने के लिये क दिन उनसे अवश्य मिलो।

कुमारने कहा पिताजी ! आपकी आज्ञासे गुणियों का मादर करने वाले महाराज की सेवा में उपस्थित होकर वश्य मैं अपना कर्त्तव्य पालन करूंगा। इस प्रकार हते हुए कुमार के शरीर पर माता की नजर पड़ी। हाथ बंधे कंगनदोरडे को देख कर उसने पति से कहा, देखि- कुमार तो कहीं बनडा बन कर आया है। आश्चर्य क्ति हुए सेठने कुमार से कहा बेटा ! बताओ तो सही कि याबात है ? कुमारने कहा किसी पण्डित का दिया हुआ प्राप्य वस्तु को प्राप्त कराने वाला यह महा प्रभावशाली गन दोरडा है। सेठने कहा-कहीं कोई विवाह करके आये खते हो ? क्यों ठीक है न ? इस पर कुमार चुप हो या।

सेठ सेठानी खुश होते हुए कहते हैं बाबा नन्द के द गोविंद जानें। कुमार की लीला का कोई आर पार हीं है। इस प्रकार सभी प्रसन्नता पूर्वक समय बिताने लगे।



२१

बड़ा बड़ाई ना करे, बड़ा न बोले बोल।
हीरा मुख से ना कहे, लाख हमारा मोल॥

महापुरुषों की महत्ता इसी में है कि वे अपनी बड़ाई प्रशंसा खुद नहीं किया करते। बड़े आदमी न बोलते हुए ही पूजा के स्थान बन जाते हैं। हीरा मुंह से क बोलता है-कि हमारी कीमत लाख रुपये की है? हीरा त नहीं बोलता, पर जौहरी उसे मुकुटमणि बना ही देते हैं ठीक इसी प्रकार महापुरुषों की महिमा को उनके बोलने पर भी गुणी आदमी गाते ही रहते हैं।

कुशस्थलपुर में एक दिन श्रीचन्द्रकुमार अपने महल की छत पर खड़े हुए बाज़ार का दृश्य देख रहे थे। उनके पिता घर में किसी गृहस्थ सम्बन्धी कार्य में लगे हुए

थे। इतने में बढिया बाजों की आवाज उनको सुनाई दी।
बाजे इतने जोर से बज रहे थे कि उनकी आवाज सारे शहर
में भर गई थी। लोगों के झुंड के झुंड देखने के लिये
इकट्ठे हो रहे थे। चारों ओर से याचकों और पुरवासियों
के मुंह से प्रशंसात्मक वचन निकल रहे थे। कोई राज-
कन्या अपने राजकीय चिन्हों के साथ वधू वेश में सवारी
के साथ पालखी में विराजमान थी। उसे देखकर लोग कहने
लगे यह कौन है? ये कहां जायेंगी?। सवारी के प्रबंधक
रूपमें श्रीचन्द्रकुमार का दोस्त गुणचन्द्र कुमार भी साथ
चल रहा था। उन्हें लोग पूछना चाहते थे--इतने में वह
सवारी लक्ष्मीदत्त सेठ के विशाल भवन के सामने आकर
रुक गई।

सेठ बाजों की आवाज से कुतूहल प्रेरित हो--क्या
बात है? कहते हुए हड़बड़ा कर घर से बाहर निकले।
अपने घर को ही लक्ष्य बनाये हुए सैनिकों को देखकर
सेठ कुछ डर से गये। सेठ की उस स्थिति को जानता
हुआ गुणचन्द्र पास में आकर नमस्कार पूर्वक कहने लगा।

पिताजी! सिंहपुर के राजा सुभगांग की राजकुमारी
राजा दीपचन्द्र देवकी दौहित्री चन्द्रकला नाम की यह
आपकी पुत्रवधू है। अभी थोड़े दिन पहिले ही तो कुमार

श्रीचन्द्र ने दीपशिखामें इस कन्या का पाणिग्रहण कि
था। क्या आपको पता नहीं है ?

सेठ सेठानी आश्चर्य चकित हुए विस्फारित ने
से अपनी पुत्रवधू को देख रहे थे कि--चन्द्रकला बड़े
आदर से सास--ससुर के पैरों पड़ी। चिरंजीवी हो
पुत्रवती हो, सौभाग्यवती हो इत्यादि बहुत २ आशीर्वा
दिये। आरती--और मंगलाचार करके पुत्रवधू को घर
प्रवेश कराया। दहेज की सामग्री यथास्थान रख दी गई
कन्यापक्ष के आदमियों को यथोचित उतारे दे दिये गये
वधाइयां बांटी गईं।

अपने २ स्थान में सबके चले जाने पर सेठ ने कहा-
बेटा ! ब्याह करके आये और उसकी चर्चा भी नहीं की
हमारे मनकी उमंग तो मनमें ही रही। अरे ! पता लगत
तो नगर प्रवेश का ठाठ तो मैं करता ही। अस्तु, जो
हुआ सो अच्छा ही हुआ। ऐसा कह सेठने चन्द्रकला के
लिये और उसके साथ की दासियों के लिये रहने योग्य एक
सुन्दर महल दे दिया। कुमार ने भी बड़ी उदारता से
अपनी मधुर-वाणी से चन्द्रकला का स्वागत किया।

सेठ लक्ष्मीदत्त ने पुत्र-विवाह के उपलक्ष्य में बड़े २
सेठ-साहुकार-कौटुम्बिक-स्नेही-नागरिक सभी लोगों को

कई दिन तक जीमाये। कोकिल-कंठी सुहागिन-स्त्रियों ने मंगल गीत गाये। खूब नाच गान हुए। तरह २ के आमोद प्रमोद हुए। याचकों को संतुष्ट किया गया।

दहेज की सामग्री को देखकर लोग बहुत संतुष्ट हुए। कोई श्रीचन्द्र के गुण और रूप की प्रशंसा करने लगे तो कोई उसके रथ की बड़ाई करने लगे। किसी ने पद्मिनी के रूप की महिमा गाई तो किसी ने सेठ सेठानी का पुण्य सराहा। किसी ने दीपशिखा को धन्य-कहा तो किसी ने कुशस्थलपुर को धन्यवाद दिया। उत्सव बड़े ठाठ से मनाया जा रहा था।

इसी बीच में जय आदि राजकुमारों ने डाह से जलते हुए कुमार को संकट में डाल ने की बात सोची। उन्हें पता चला कि तिलकपुर से धीर मंत्री के साथ वीणारव नाम का गवैया आया हुआ है। उन्होंने उसे अपने पास बुलाया और कहा कि यदि श्रीचन्द्र प्रसन्न होकर कुछ मांग-ने के लिये कहे तो उसके रथ का घोड़ा मांगलेना। इस के बदले में हम तुमको भारी इनाम देंगे। लालच बुरी बला होती है। उसीसे प्रेरित हो वीणारव ने भी मंजूर करलिया। जैसी होनी होती है वैसी ही बुद्धि भी हो जाती है।

वीणारव ने सेठ के मण्डप में जाकर बड़ी सजावट से राधावेध का वर्णन किया। जिसमें राजाओं का और राजकुमारों का आना, उनका नाम–ठाम–वंश वर्णन होना। राधावेध के लिये वारी वारी से उनका उठना, असफल होना, गिरना पड़ना, कांपना, लज्जित होना, लोगों द्वारा तिरस्कार होना, उस समय श्रीचन्द्र का अचानक आना, राधावेध को सिद्ध करना, रथ पर चढ कर निस्पृहता से चले आना, कन्या का विलाप, राजाओं की विदायगी, कुमार को लाने के लिये धीर मंत्री का आना इत्यादि बड़े रोचक ढंग से बयान किया। खुश हुए सेठ ने और दूसरे लोगों ने उसे बहुमूल्य चीजें–धन इनाम में दिया। श्रीचन्द्रकुमार ने उससे कहा–जो इच्छा हो सो मांग लो–तब वीणारव ने–आपके सुवेग-रथ के घोड़ों की जोड़ी में से एक घोड़ा दीजिये–मांगा।

कुमार ने कहा अरे! मांगकर भी तेने क्या मांगा? कोई दारिद्र्यनाशक वस्तु तो मांगनी थी। खैर, अपने मित्र गुणचन्द्र को भेजकर सुवेगरथ मंगाया और वीणारव से कहा गायक! एक घोड़े से तुम्हारा काम नहीं बनेगा। लो यह रथ और यह घोड़ों की जोड़ी। और भी धन माल उसे इनाम में दिया। चारों ओर से वाह! वाह!! की जयध्वनि होने लगी।

बीणारव गायक ने श्रीचन्द्र की तारीफ में कई अद्भुत श्लोक पढे ।

आस्ये पद्मधिया गभीरहृदये वारांनिधेः शंकया
नाभौ पद्मनदभ्रमात्क्रम-कर-द्वन्द्वे ऽरुणाब्जेहया ।
फुल्लेन्दीवर-वाञ्छया नयनयो दन्तेषुवज्राकर-
भ्रान्त्या कल्पतरुभ्रमेण वपुषि श्रीचन्द्र ! ते श्रीरभूत् ॥

अर्थात्-हेश्रीचन्द्र ! आपके मुख में कमल मानकर, गंभीर हृदय में समुद्र की शंका से, नाभि में पद्मह्रद की भ्रांति से, चरणों में और हाथों में लाल कमल की भावना से, नयनों में नील कमल की चाहना से, दांतों में वज्राकर की भ्रान्ति से, और शरीर में कल्पवृक्ष के भ्रम से लक्ष्मी रह रही है ।

क्षारो वारिनिधिः कलंक-कलुषश्चन्द्रो रविस्तीव्ररुक्,
जीमूतश्चपलाश्रयोऽर्थि-पदत्तादृश्यः सुवर्णाचलः
काष्टं कल्पतरुः दृषत्सुरमणिः स्वर्धामधेनुः पशुः
श्रीचन्द्रास्ति सुधा द्विजिव्हविधुरा तत्केन साम्यं तव ॥

अर्थात्-हे श्रीचन्द्र ! अगर तुम्हारी समता समुद्र से करें तो वह खारा है । चन्द्रमा से करें तो वह कलंकी है । सूर्य से करें तो वह असह्य ताप वाला है । बादल से करें तो वह जलाने वाली चपल बीजली का आश्रय है । मेरु

से करें तो वह याचकों के अगोचर है। कल्पवृक्ष से करें तो वह काष्ठरूप है। चिन्तामणि से करें तो वह पत्थर मात्र है। कामधेनु से करें तो वह केवल पशु ही है, और अगर अमृत से करें तो वह शेषनाग आदि सांपों से घिरा हुआ है अतः हे कुमार आप उपमा के अभाव में अनुपम हैं।

उस समय वहां दूसरे भी कई कवि उपस्थित थे। उन्होंने भी श्रीचन्द्र की प्रशंसा में बड़े सुन्दर २ श्लोकों की रचना सुनाई। कुमार ने उनका भी यथायोग्य धन और वस्त्राभूषणों से सत्कार सन्मान किया। इस प्रकार अन्यान्य भाट चारण आदि याचकों को कुमार ने इच्छा से अधिक दान देकर सन्तुष्ट करके विदा किया।

वहां उस समय उस उत्सव में आये सभी लोग कुमार द्वारा सन्मानित और सत्कृत होकर कुमार की उदारता से चकित ... चारों ओर कुमार के गुणों की और भाग्य की प्रशंसा करने लगे। लोग कहने लगे राजा और राजकुमार ... धन दे सकते हैं जितना कि इस श्रेष्ठि-कुमार ने दान दिया है। इस प्रकार सुन्दर वस्त्रालंकारों से सुसज्जित स्त्री-पुरुष प्रसन्न हो अपने २ उतारे पर गये।

रथ के हाथ से निकल जाने पर सेठ लक्ष्मीदत्त को बेहद दुःख हुआ। साथियों ने भी नमक मिर्च लगाकर

सेठ को उत्तेजित किया। सेठ ने कुमार से एकान्त में कहा—ओ मेरे प्यारे बेटे! तुमने जो कुछ दानादि कार्य किये, ठीक किये। पर पिता होने के नाते कुछ कहना चाहता हूं। बेटा! अपन बनिये हैं। राजाओं से आगे बढ़कर दान नहीं करना चाहिये। तुम स्वयं भी जानते ही हो, धीरमंत्री से भी तुमने सुना ही है, कि वे जयकुमार आदि राजकुमार तुमसे द्वेष रखते हैं। वे छिद्र देखते हैं। मौका पाते ही तुम्हें हानि पहूँचाना चाहते हैं। अगर सावधानी न रही तो वे प्राण लेने से भी नहीं चूकेंगे। बेटा! तनिक तो सोचो, जिन घोड़ों की कृपा से तुमने इतनी पृथ्वी देखी और बड़े २ असम्भव कार्य भी किये हैं, उन घोड़ों का विना सोचे समझे योंही किसी को क्या दान कर देना चाहिये था? पुत्र! कहना मानो, घोड़ों समेत रथ का मूल्य देकर वापस लेलो।

अपने पिता के वचनों का उत्तर देते हुए श्रीचन्द्र ने कहा—"पिताजी! मनुष्य को कभी अपने आपको किसी से भी हीन नहीं समझना चाहिए। मैं बक्काल बनिया नहीं बनना चाहता हूँ। पहले शाह फिर बादशाह की कहावत को मैं चरितार्थ करना चाहता हूं। माना कि वे राजकुमार मेरे से द्वेष करते हैं, पर मनुष्य को हमेशा तदबीर करते हुए भी अपने तक़दीर पर भरोसा रखना

चाहिये। किसी की भी ताक़त नहीं, जो सीधी राह पर चलते हुए हमारा कोई बाल भी बांका कर सके। पिता-जी! आपकी अंतिम बात रथ को वापस लेने के लिये है-क्षमा कीजियें। आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा कर्त्तव्य होते हुए भी मैं पालन नहीं कर सकुंगा। क्योंकि "दान को वापस लेना"-मैंने कहीं पढ़ा नहीं कभी सीखा भी नहीं। भाग्य से मिली वस्तुयें फिर भी भाग्य से ही आमिलेंगी। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं।

पुत्र के प्रत्युत्तर को पाकर सेठ हतप्रभ होकर चूमता हुआ बोला-वत्स! छोटे मुँह बड़ी बात नहीं करनी चाहिये! ये घोड़े, ऐसा रथ अन्यत्र अप्राप्य है। इनका दान मुझे ठीक नहीं मालूम देता। अतः इनका मूल्य देकर ले लेना ही ठीक होगा।

पिता की बात सुनकर कुमार चुप होगया, और अपने महल में चला गया। एकान्त में सोचने लगा-अहो परतन्त्रता में कितना दुःख है। इसी पराधीनता से आदमी कि कर्तव्य मूढ होकर कर्तव्य से भ्रष्ट हो जाता है। अतः अब मुझे यहां नहीं रहना चाहिये। अगर मैं यहां रहूँगा तो स्वाधीनता से मुझे घुमने-फिरने, लेने-देने और प्रत्येक काम में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पडेगा। अब

मेरा यहां क्षणभर के लिये भी ठहरना अनुचित है। मैं तो साहसी हूँ। साहस से क्या सिद्ध नहीं होता? कहा भी है—

को विदेशः सुविद्यानां, किं दूरं व्यवसायिनाम्।
कोऽतिभारः समर्थानां, कः परः प्रिय-वादिनाम्॥

अर्थात्-विद्वानों को कोई विदेश नहीं, व्यवसाय करने वालों को कोई स्थान दूर नहीं, समर्थ पुरुषों के लिये कोई भार, भार नहीं और प्रिय बोलने वालों के लिये कोई पराया नहीं हुआ करता है।

साहस के साथ की हुई विदेश यात्रा से अनेकों लाभ होते हैं कहा भी है—

दीसइ विविहच्छरियं, जाणिज्जई सुयणदुज्जणविसेसः।
अप्पाणं च कलिज्जइ, हिंडिज्जइ तेण पुहवीए॥

अर्थात्-अनेक प्रकार के आश्चर्य देखने को मिलते हैं। सज्जन दुर्जनों की विशेषतायें भी जानने को मिलती हैं। अधिक क्या? आदमी को अपनी ताकत का भी अंदाज लग जाता है। इसीलिये पृथ्वी में विदेश यात्रा के लिये चलना चाहिये।

कुमार सोचते हैं आज रात को ही चुपके से मुझे यहां से चल देना चाहिये। मुझे थोडा बहुत विचार-नवपरिणीता चन्द्रकला का है। यह मेरे विना जल हीन मीन की तरह छटपटाती हुई प्राणों को कैसे धारण कर सकेगी। इसने मेरे लिये अपने माता पिता को और राज्य-सुखों को छोड़ कर, दर्शनमात्र से ही मुझे अपना लिया है। यह मुझ में अत्यन्त अनुरागवाली है। इसने मेरे लिये राज-कुल के रीति-रिवाजों और नियमों का परित्याग करके वणिक-कुल के रीति-रिवाजों एवं नियमों को विना किसी हिचकिचाहट के अपनाये हैं। इस हालत में इस प्यार की प्रतिमा को 'धोबी का कुत्ता घर का न घाट का' जैसी हालत में छोड़ जाना भी क्या ठीक होगा ? अगर मैं ऐसा करता हूं तो संसार में इससे बढकर दूसरा क्या अन्याय, और विश्वासघात हो सकता है ?। दुनियां मेरे ऐसे कर्त्तव्यों पर थूकेगी, और मुझे घृणा की दृष्टि से देखेगी।

तो क्या मैं ऐसा साहस न करूं ? नहीं ऐसा कदापि नहीं हो सकता। मैंने अपने विचारों से पीछे हटना कभी सीखा ही नहीं। मै उन पुरुषों में से नहीं हूँ, जिनके मनो-रथ अधूरे ही रहजाते हैं अतः मैं यहां से जाउंगा तो जरूर उसमें कोई संदेह नहीं। मैं पुरुष हूँ, पुरुषार्थ मेरा धर्म है। अगर मेरे विचारों और स्वतंत्रता के मार्ग में

कोई रोड़े आयेंगे तो मैं उन सब को चीरता-फाडता फांद-ता-लांघता चला जाउंगा। मै अपने विचारों से तनिक भी टस से मस नहीं होउंगा।

मुझे न तो किसीका भय है, और न किसी की चिन्ता है। यदि थोडी बहुत चिन्ता है तो चन्द्रकला की है। अतः इसे अपने दिल की बात कह कर के, ठीक ढंग से समझा बुझा कर, प्रसन्न करके ही जाउंगा।



२२

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
मनोयोगतें होत है, नीच ऊंच परतीत॥

जीवन में मन—मजबूत आदमी ऊंचे उठते हैं। मन की विचार धारा ही हमारे आचारों को ठीक और बेठीक बनाती है। की हुई प्रतिज्ञा को निभाने में मन ही तो कारण होता है। अगर मन शिथिल हो जाय, तो मानव महामानव नहीं बन सकता। शिथिल मन वाले की स्थिति घास फूससे भी गई बीती होती है।

श्री चन्द्रकुमार अपने मन की तरंगों का तोल जोख कर रहा था। मजबूती से अपने जीवन में मनोयोग को लगा रहा था। अपनी जीवन—संगिनी चन्द्रकला को भी

अपने मनो- विचारों के अनुकूल बनने की वह सोच रहा था। ऐसे प्रसंग मे वहां उसका अभिन्न-मित्र गुणचन्द्र भी पहूँच जाता है। दोनों आपस में कोई बात छिपाते नहीं थे। जो बात श्रीचन्द्रकुमार को दूसरे आदमी नहीं कह सकते थे, वह बात गुणचन्द्र के द्वारा कुमार के पास पहूंच जाती थी।

आज भी ऐसी ही एक घटना को लेकर कुमार के पास गुणचन्द्र पहूँचा है। अपने विनीत-विचारों को बड़ी गंभीरता से वह कुमार के सामने रखता है—

माननीय कुमार! पिताजी के उस समय के वचनों को सुन कर गायक वीणारव ने मेरे द्वारा आपसे प्रार्थना कर वाई है, कि मैंने जयकुमार आदि राज-कुमारों की सिखावट से ही रथ और घोड़ों की मांगनी की थी। मैं राज-कुमारों के पास नही जाउंगा। आप कृपा करके दान किया हुआ रथ मुझ से लेलें, और उसके बदले में यथायोग्य सुवर्ण प्रदान कर दें। आप को रथ दान का बडा भारी फल तो प्राप्त हो ही चुका है। गायक वीणारव उस रथ को और घोड़ों को वापस आपही को बेचना चाहता है। आप सारे संकोचों को छोड़ कर इस बात को मान लें। वह कहता है, हमतो आपके याचक हैं, और रहेंगे। आपने जितना दान दिया है, उतना और कौन

देगा ? अतः आप कृपा करके एवजाना देकर इस रत्न को वापस ग्रहण कर लें।

यह सुन कुमारने मित्र-गुणचन्द्र से कहा, "मित्र! जाओ, उस गायक से कह दो, कि जो कुछ तुम को दिया गया है, वह तुम्हारा ही है। दिया हुआ दान कभी वापस नहीं लिया जाता। विचार शील पुरुषों के मुंह से निकले हुए वचन हाथी के दांतों की तरह वापस अन्दर नहीं जाते। जो कह दिया, सो कह दिया। वह तो अमिट रेख बन ही जाती है। इसके हजारों उदाहरण भारतीय इतिहास में भरे पडे हैं—

सिंह-गमन सुपुरुष-वचन—केल फले इकबार।
तिरिया-तेल हमीर-हट—चढे न दूजीवार॥

और भी—

सकृज्जल्पन्ति राजानः,सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः।
सकृत्कन्याः प्रदीयन्ते, त्रीण्येतानि सकृत् सकृत्॥

अर्थात्—राजाओं के वचन, उत्तम पण्डितों के वचन जो निकल गये वो निकलगये, वार २ नहीं बदलते, और कन्या भी एक वार ही व्याही जाती है वार वार नहीं। अतः उस वीणारव गायक से कह दो, कि अगर तुम्हारी

और कुछ लेने की इच्छा हो तो मांग लो, और लेकर चले जाओ। रथ वापस नहीं लिया जा सकता।

कुमार की इस दृढ भावना को जानकर गुणचन्द्रने वीणारव को वहां से बिदा किया। वह वापस कुमार के पास आया। कुमारने भावी वियोग की सूचना बडे दुःखित हृदय से देते हुए कहा, "मित्र गुणचन्द्र! मेरे और पिताजी के विचारों में अंतर है। स्वभाव के न मिलने से हर बात में खींचातानी बनी रहती है। इस हेतु से मैं अपनी उन्नति और उत्कर्ष में बाधा पहूंचाने वाले पिता के पास नहीं रह सकता। अपना स्वाधीन जीवन बीताने की भावना से मैं यहां से अन्यत्र जाना चाहता हूं।

एकाएक कुमार की बात को सुन घबडाया हुआ गुणचन्द्र कहने लगा—कुमार! क्या कहते हो? ऐसा करना ठीक नहीं होगा। आपको किस चीज का अभाव है? धन धान्य ऐश्वर्य और सम्पत्ति सभी तो आपके पास मौजूद हैं। आप अपनी इच्छानुसार उपभोग कर सकते हैं। आप को ऐसे विचार मनमें नहीं लाने चाहियें।

इस प्रकार मित्रों की बात हो ही रही थी कि धनंजय नाम का सारथी भागता, हांफता वहां आपहूंचा, और कुमार से कहने लगा, स्वामिन! आपकी आज्ञा से

वीणारव परिवार के साथ रथ पर बैठ कर अपने घर की ओर रवाना होने लगा, तो वे दोनों उत्तम घोडे हठात् उसे श्रीपुर की ओर ले गये। प्रयत्न करने पर भी वे उसके घर की ओर न चले।

कुमार घोडों की स्वामी भक्ति को समझ गया। वह कुछ घुड सवारों को साथ ले कर श्रीपुर जा पहूंचा। अपने स्वामी को देखते ही घोडे हिनहिंना उठे। अपनी मूक वाणी में स्वामि के प्रति स्नेह सम्मान प्रदर्शिति करने लगे। कुमार की आंखें भी इस पशु-प्रेम से छल-छला गई।

बाद में कुमार ने घोडों की पीठपर बड़े प्यार से हाथ फेरते पुचकारते हुए कहा प्यारे बाज-बहादुरों! तुम्हारे गुण अवर्णनीय हैं। तुमने मुझे अपार सुख दिया है। मैं तुम्हें अपने से जूदा करना नहीं चाहता था, परन्तु क्या किया जाय, समय ही ऐसा उपस्थित हो गया, कि मुझे अपने वचन की रक्षा के लिये तुम्हें इस गायक के हाथ सौंपना पडा है। अतः अपने स्वामी की वचन-रक्षा के लिये इसके साथ तुम खुशीसे जाओ। तुम बडे स्वामीभक्त हो। अधिक क्या कहूं।

यह सुनते ही घोडों ने अपने स्वामी के प्रति कृतज्ञता जताते हुए वीणारव को लेकर उसके गम्य प्रदेशकी

ओर मुड़े। वीणारव भी कुमार को आशीर्वाद देता हुआ अपने घर की ओर चला गया।

विदेश-गमन के अपने दृढ़-विचारों को कार्यान्वित करने के लिये कुमारने मित्र-गुणचन्द्र को सभी अधिकारियों का स्वामी, और धनंजय को प्रधान सेनाधिपति बना दिया। इसी तरह नगर-रक्षक, दुर्गरक्षक, प्रासाद-रक्षक आदि २ पदों पर योग्य २ अधिकारियों की नियुक्ति करके अपने २ कामों को सुचारु रूपसे संचालित करने की आज्ञा दे दी। महाराज प्रतापसिंहसे प्राप्त श्रीपुर नगर को कुमार ने दूसरी अमरावती बनादिया।

बाद में कुमार ने राजसी वेश-भूषा और राजसी ठाठ बाठ के साथ राजा की तरह अपने भवन में प्रवेश किया इधर तिलक पुरकी राज कुमारी के साथ कुमार के व्याह का आमंत्रण लेकर आने वाले प्रधान श्रीधीर मन्त्री गुणचन्द्र के साथ सेठ लक्ष्मीदत्त के पास पहूंचे और सेठ को कुमारके विवाह का निमन्त्रण दिया।

सेठ लक्ष्मीदत्त ने मंत्री से कहा—'महोदय! आप दो दिन और प्रतीक्षा करें। एक दो दिन में कुमार श्रीचन्द्र महाराजा से मिलने को जायगा तब आप भी साथ चले जाना, और विवाह के लिये निवेदन कर देना। महाराजा की आज्ञा मिलते ही हम कुमार को तिलकपुर भेज देंगे।

हमारी पुत्र-वधू चन्द्रकला महारानी सूर्यवती की भानजी हैं अतः यह भी उनसे मिलेंगी।

धीर मंत्री ने भी सेठ के विचारों को पसंद किया, और महाराजा से मिलने की प्रतीक्षा करता हुआ अपने उतारे पर पहुंच गया। मित्र-गुणचन्द्र ने कुमार श्री-चन्द्र को इन-सारी बातों से सूचित कर दिया। कुमार भी मित्र के साथ कुछ गुप्त-मन्त्रणा करके वहां से उठा और भोजनशाला में जा पहूँचा। वहां सेठानी से "माता जी! मुझे भूख लगी है लड्डु दीजियें" कह कर भोजन करने बैठ गया।

वात्सल्यमयी माताने बड़ी-प्रसन्नता से उसे थालमें बहुत लड्डु परोसे। उसने अपनी पत्नियों उनकी सखियों आदि सभी को लड्डु बांटे और खुदने भी खाये। इस प्रकार अपने सारे कुटुम्ब के साथ-वैकालिक-दुपहरी करके वह कुमार श्रीचन्द्र अपने महल में आया। अपनी रीयासत कणकोट्टपुर के मंत्रियों के साथ लिखा पढी के काम में भी गुणचन्द्र को नियुक्त किया दूसरे भी जिस २ को जिस २ काम पर नियुक्त करना था, किया। इस प्रकार विदेश जाने से पहिले सारी तैयारी जो करनी थी, कर ली। महापुरुषों की महत्ता उनके विचारों की दृढता और योग्य कार्य-सरणी को अवलम्बित हुआ करती है।

२३

सूर्य अपने प्रकाश को समेटता हुआ पश्चिम की ओर जा पहूंचा। व्यापारी अपने ग्राहकों को निपटाते ए दुकान से घर की ओर चलने की तैयारी करने लगे। ुमास्ते नौकरी बजाकर अपने बाल-बच्चों से मिलने ी उत्कंठा से प्रसन्नता के साथ अपने स्वामियों की दृष्टि ा ओझल होने लगे। धार्मिक लोग सूर्य-नारायण के अस्त होने के दुःख से रात्री भोजन को पाप रूप मानकर दिन रहते रहते भोजन-विधि से और जल-पान से निवृत्त ोने लगे। संध्या की उपासना के लिये ब्राह्मण अपने ायत्री मंत्र जाप के साथ संध्योपासना करने लगे मन्दिरों ां भगवान की आरती उतारने की तैयारी में बच्चे अपने प्रिय घण्टा-घड़ियालों को बजाने की धुन में मन्दिरों में

पहुँचने लगे। संध्या के शंख फूंके जाने लगे। पक्षी दिन भर चुगा करके अपने घौंसलों को और नन्हे २ बच्चों को चुगाने और प्यार करने लगे। गाय-भैंसों के टोले जंगलों से चर कर अपने मधुर दूध से अपने पालकों के पात्र भर कर जुगाली करने में लग गये। आकाश ताम्र-वर्णी-लाल सूर्ख हो गया। बादले पहाड़-हाथी-घोड़ा आदि रूपों में परिणत होते और बिखरते हुए संसार की असारता के पाठ पढा रहे थे अर्थात् पूर्णतया संध्या-वेला हो चुकी थी।

कुमार श्रीचन्द्र अपने विदेश-गमन के दृढ विचारों को कार्य रूपमें परिणत करने से पहिले, अपनी प्राण प्यारी चन्द्रकला के महल में उसकी आज्ञा पाने के लिये पहुंच गया।

हर्ष की अधिकता से उत्कण्ठित चित्त वाली चन्द्रमुखी चन्द्रकलाने अपने प्राणनाथ की पधरावणी में अपने चिरकाल के मनोगत संकल्पों की सिद्धि का साक्षात्कार किया। खूब घुल घुलकर मीठी प्यार भरी बातें की। आपस में उनका मनोमेल हुआ। वाणी में वे एक-रस हुए। काया से भी उनने अद्वैत का आनन्द लिया। चन्द्र को पाकर कला पूर्ण प्रसन्न हो रही थी तभी कुमार ने अपने मनोगत भाव उसे कहने शुरु किये।

प्रिये ! आज पिताजी ने मुझे वीणारव को रथ-दान करते हुए टोका। इस थोड़े से दान से भी वे रुष्ट होते हैं, तो बताओ ! मैं कैसे अपनी इच्छानुसार दान कर सकता हूँ। पिताजी ने आज से पहिले कभी कुछ न कहा, और मैंने भी उनकी आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं किया। परन्तु आजकी बात से मेरा दिल टूट गया। दान किये घोड़ों को मूल्य देकर वापस लेने का पिताजी का आग्रह मुझे ठीक नहीं मालूम दिया।

अयि चतुरे ! मैं मानता हूँ कि-माता पिता और गुरु की शिक्षा अमृत से भी अधिक मूल्यवान् होती है"-फिर भी उसे मैं मान नहीं रहा हूँ। अतः मैं पुण्य हीन हूं, क्योंकि आज मेरा मन भी हठी हो रहा है। देखो ! पिता की आज्ञा से राम वनवासी हुए। पिता को सुख पहुंचाने के लिये भीष्म ने आजन्म ब्रह्मचारी रहना स्वीकार किया। पिता की आज्ञा से परशुराम ने अपनी ही माता का सिर काट लिया। अब तुम्हीं बताओ पिता की आज्ञा का उल्लंघन करने वाले मुझ जैसे कृतघ्न की क्या सभ्य संसार में हँसी नहीं होगी ? कहा है—

तात मात गुरु स्वामी सिख
सिर धर करहिं सुभाय।

लभो लाभ तिन जनम को
ता बिन जनम गमाय ॥

ऐसा होने पर भी मैंने जो कुछ भला या बुरा किया है, वह धर्म संकट में फंस कर किया है। मेरे सामने दो ही मार्ग थे एक पिता की आज्ञा का पालन, दूसरा अपने कहे वचन की रक्षा। इनमें से मुझे एक चुनना था। मुझे वचन–रक्षा का मार्ग ही अभीष्ट और मनस्तुष्टि वाला लगा। अतः मैंने पिता की आज्ञा का पालन नहीं किया है।

चन्द्रकला ने मन ही मन में अपने स्वामी की उदारता, गुरुजनों की भक्ति, वचन–रक्षा आदि की प्रशंसा करते हुए कहा "स्वामिन्! दान-पुण्यादि कार्यों में आपकी जैसी बुद्धि है वह प्रशंसनीय है। इतने बड़े कुटुम्ब में सबकी बुद्धि एकसी नहीं होती कोई कुछ और कोई कुछ करना चाहते हैं। आप किसी बात की चिन्ता न करें। आपका सब तरह से कल्याण होगा। मैं मानती हूं भविष्य में आप एक बड़े राजाधिराज होंगे।

यह सुन उस दीर्घदर्शी कुमार ने प्रेम-ग्रन्थि के साथ शकुन-ग्रन्थि भी बांध ली, और बोला–प्रिये! मैं जानता हूं तुम्हारी सरस्वती सफल होगी। पर अभी मैं

ां स्वतंत्रता को खोकर अपनी उन्नति कैसे कर सकता
? । मैं आदरणीय गुरु-जनों का अनादर करके यहां
ना उचित नहीं समझता । अतः मैं विदेश जाना चाहता
। मेरे ये सारे ऐश्वर्य और सुख भी न मालूम माता
ता या स्त्री-किसके भाग्य से प्राप्त हैं, इसका भी पता
हीं है । अतः भाग्य-परीक्षा के लिये भी विदेश जाना
रे लिये उचित है । मैं कुछ दिनों में पृथ्वी के कौतुकों
को देखकर यहां शीघ्र लौट आऊँगा ।

श्रीचन्द्रकुमार के इन वचनों को सुनते ही चन्द्रकला छिन्न-मूला लता की तरह धडाम से पृथ्वी पर गिर पड़ी । उसका सारा शरीर पानी पानी हो गया । उसका अंतःकरण कोई अतर्कित दुःख से फटने लगा । भारी दुःख भार से वह रो पड़ी । विलाप करती हुई वह कहने लगी, देव ! आप यह क्या कह रहे हैं ? आपके चले जाने पर मेरे वियोग-दुःख का क्या पार होगा ? लोग मुझे विष कन्या कहेंगे । पति के सासु के और श्वसुर के दुःख का कारण बतायेंगे । ओ प्राणनाथ ! आप यहीं रहें । आपको किस बात की कमी है ? आपके हाथी, घोड़े, सेना और धन का कोई पार नहीं है । आपके बड़े भाग्य की परीक्षा कई बार हो चुकी है । उसमें कोई सन्देह बाकी नहीं है ।

इस प्रकार रोती—बिलखती चन्द्रकला को आश्वासन देते हुए कुमार ने कहना प्रारम्भ किया :—

कल्याणि ! तुम मेरे मन को जानने वाली, और बड़ी धीरज वाली होकर भी आज अपना धीरज खो रही हो, यह क्या ? देवि ! रोओ मत। तुम-वीर क्षत्रियानी हो। संसार के दुःखों को जानती हुई भी अनजान कैसे बन रही हो ? तुम्हारा कहना सब सच है, किन्तु जो कुछ सुसराल वगैरह से मिला है वह मुझे रुचिकर नहीं हो सकता। मेरी महत्ता तो मेरी भुजाओं से उपार्जित धन से एवं उसके दान से ही हो सकती है। तुम पर मेरा बड़ा भारी स्नेह है, इसीलिये मैं माता पिता और कुटुम्बियों को न पूछ कर केवल तुम्हें ही पूछने-आया हूँ। अतः तुम रोना छोड़कर धीर मन से मुझे अनुमति प्रदान करो। जिससे मैं अपना मन चाहा काम-विदेश-गमन कर सकूं।

चन्द्रकला कहती है प्राणाधार ! आपकी विलक्षण बुद्धि और पुरुषार्थ के सामने मेरा अनुत्तर हो जाना कोई विशेष बात नहीं है लेकिन आप मेरी इस तुच्छ प्रार्थना को भी स्वीकार करें कि यदि आप किसी प्रकार भी नहीं रुक सकते हैं तो इस अभागिन एवं अकिंचन नारी को भी साथ लेते जावें। सुख दुःख में मैं आपकी सहगामिनी

तथा मेरा स्त्री धर्म भी मुझे बार बार प्रेरित कर कहता है कि—मैं छाया की तरह सदा आपके साथ साथ बनी हूँ। सीता जैसी धीर और महान् नारी भी पतिवियोग के समय क्या कहकर रामको उसे साथ ले जाने के लिए प्रेरित करती हुई कहती हैं कि :—

जब लगि नाथ, नेह अरु नाते,
पिय बिन तिय हिं तरणि ते ताते।
भोग रोग सम, भूषण भारू,
नरक यातना सरिस संसारू ॥

हे स्वामिन्! जबतक आप हैं तबतक कुटुम्बियों से प्रेम और—रिश्ता नाता है। पति के बिना स्त्री को वे सब सूर्य से भी बढकर तपाने वाले हो जाते हैं, भोग रोग के समान तथा गहने भारभूत हो जाते हैं, और यह सारा संसार नरक के कष्टों को तरह बड़ा दुखःद बन जाता है। अतः स्त्री संसार में माता पिता आदि के वियोग के दुःख को सहन कर सकती है परन्तु पति के वियोग को क्षणभर भी नहीं सह सकती। नाथ! मै आपको ही पूछती हूं कि क्या सीता राम के साथ वन में नहीं गई? क्या नल के साथ दमयन्ती वन वन भटकती नहीं फिरी? क्या द्रौपदी ने पाण्डवों के

साथ वन में रहकर असह्य कष्ट न सहे ? क्या राजपूत रमणियां पतिवियोग में जिन्दा जलकर नहीं मरी ? आप शास्त्रज्ञ होते हुए भी सती माहात्म्य को क्यों भुला रहे हैं ? आप महान् हैं, अतः किसी भी समय तथा किसी भी स्थान पर, आपको दुःख बाधित नहीं कर सकते। पर मुझ तुच्छ नारी को आपके बिना स्वर्ग में भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता। मैं आपके साथ पथ-बाधा बनकर न रहूँगी तथा आपकी सेवा करती रहूंगी। अतः हे प्राणाधार ! मुझे साथ चलने की आज्ञा दीजियें।

यह सुन करुणार्द्र हृदय कुमार बोला पद्मिनी ! तुम्हारा कथन अनुचित नहीं पर मार्ग की कठिनाइयाँ तुम्हारे कोमल शरीर से कैसे सही जायगी। सूर्य की प्रचण्ड किरणों से संतप्त पृथ्वी पर तुम चलने में कैसे समर्थ हो सकोगी। कहीं मार्ग में बसेरा मिलेगा कहीं नहीं, मार्ग में पद पद पर तुम्हें दुःख होगा, और तुम्हें दुःखी देखकर मुझे दुःख होना अवश्यम्भावी है अतः जितना उपकार तुम घर पर रह कर मेरा कर सकती हो उतना साथ रहकर नहीं ! तुम्हारे साथ रहते हुए मेरे उद्देश्य की सिद्धि में भी कई बाधाएँ उपस्थित हो सकतीं हैं। क्या तुम्हें मालुम नहीं कि राम के साथ वन में लक्ष्मण

को जाते देखकर उनकी सती—स्त्री उर्मिला ने भी साथ चलने का मनोभाव प्रकट किया था ? तब लक्ष्मण ने कहा था, कि उसके साथ रहने से उनके आराध्य देव राम की उपासना और सेवारूपी उद्देश्य में बाधा पहुँचेगी। अतः उसका साथ चलना ठीक नहीं। उर्मिला ने अपने पति लक्ष्मण की उद्देश्य सिद्धि में विघ्न बनना उचित नहीं समझा और अपना धर्म विचार कर साथ जाने का इरादा छोड़ दिया। अतः तुम भी मेरी आज्ञा को अपना धर्म मान कर साथ चलने का इरादा त्याग दो, और यहीं रहो। यदि तुम्हारा मन यहाँ न लगे तो अपने मायके अथवा ननिहाल इत्यादि अपने इच्छित स्थानों पर रहती हुई तुम देव पूजादि धार्मिक कृत्यों में रत रह-कर मेरे कठिन मार्ग को सुगम बना सकती हो। क्योंकि तुम्हारे धर्म और शील के प्रभाव से मेरे सारे अनिष्ट नाश हो जायँगे तथा मैं सुख और शान्ति का अनुभव करूंगा।

इतना कहकर कुमार ने उसके आंसू पोंछे तथा यथे-प्सित वस्तुएं प्रदान कर हित की बातें समझाकर तथा दास दासियों सखी सहेलियों व मित्र की उनको भलामन देकर जाने को तैयार हुआ।

पति को विदेश यात्रा के लिए दृढ-संकल्प देख पति का हित चाहने वाली पद्मिनी चन्द्रकला ने गद् गद् स्वर में कहाः—

मागा इत्यपमंगलं व्रज इति स्नेहेन हीनंवच-
स्तिष्ठेति प्रभुता यथा—रुचि कुरुष्वैपायुदासीनता।
स्पर्थेऽन्वेमि तवेत्यसद्ग्रह-वचो नेमीति वाक्तुच्छता
प्रस्थानोन्मुख ! ते प्रयाण-समये वक्तु कथं वेद्म्यहम॥

यदि मैं ऐसा कहूँ कि मत जाओ तो यह अमंगल होगा। अगर कहूँ कि जाओ तो मेरा वचन बडा ही स्नेह हीन होगा। अगर कहूँ कि ठहरो तो ऐसा कहना अपनी प्रभुता प्रकट करना है। यदि ऐसा कहूं कि आपकी इच्छा के मुताबिक करो तो इसमें उदासीनता मालुम होती है। यदि साथ चलने का कहूं तो यह मेरा कदाग्रह होगा। अगर साथ न चलने का कहूं तो मेरी वाणी की तुच्छता प्रकट होगी। अतः हे स्वामिन् आपके प्रस्थान के समय में मैं कुछ भी नहीं बोल सकती। परन्तु फिर भी मैंने किसी समय अपने गुरु के मुखारविंद से नवकार मंत्र के बड़े भारी महत्व को सुना है, अतः आप इसे धारण कर लीजिए। यह आपको शिरस्त्राण, मुखपर कवच, आयुध और पदत्राण का काम देगा। सदैव यह आपकी आभ्यन्तर और बाह्य रक्षा करेगा। युद्ध में संकट

में और मार्ग में नित्यप्रति स्मरण करने पर यह नवकार-मंत्र आपका सच्चा सहायक होगा। चौर, शत्रु, डाकू, सर्प, व्यन्तर और वैताल आदि के भय से आपकी रक्षा करेगा और सब प्रकार की सुख सम्पत्तियाँ प्रदान करेगा।

तव वर्त्मनि वर्ततां शिवं, पुनरस्तु त्वरितं समागमः।
अपि साधय साधयेप्सितं, स्मरणीयाः समये वय वयः॥

प्राणनाथ! आपका मार्ग कल्याणकारी हो। आपका कल्याण हो पुनरागमन अति शीघ्र हो। मार्ग में आपके अभीष्ट सिद्ध होते रहें। कभी कभी मुझे भी अपना स्वजन जान याद करते रहें।

इस प्रकार मंगल कामना करती हुई चन्द्रकला के द्वारा बोले गये प्रिय तथा सुमधुर वचनों का कुमार ने स्वागत किया। कुछ समय तक प्रस्थान-काल में किया जाने वाला प्रेमपूर्ण वार्तालाप किया। चन्द्रकला के द्वारा शुभकामना से शकुन के लिए दिया गया फल स्वीकार कर कुमार उठ खड़ा हुआ। नित्यप्रति की ही पोशाक पहने हुए तथा थोड़ासा पथ-साधन लेकर, सती साध्वी प्रियतमा को आश्वासन देकर और अन्तिम विदाई लेकर कुमार घर से निकल पड़ा।



२४

रात्रि का द्वितीय प्रहर था। निस्तब्ध निशा के अन्धकार में नगर की बड़ी बड़ी सड़कें भी जनशून्य हो रहीं थीं। दिन की सी धूमधाम बाजारों में नहीं थी, और न ही उमड़ता हुआ जनसमूह कहीं दिखाई पड़ रहा था। कहीं कोई इक्का दुक्का मानव तेजी से निज गृह की ओर लपकता हुआ दिखाई दे जाता था। बाजारों तथा गलियों का जगमगाता तेज प्रकाश भी मंद हो गया था, केवल चौराहे ही तेज प्रकाश युक्त थे। सब अपने अपने घरों में आराम कर रहे थे। घर के बाहर की दुनिया का किसे ध्यान था। सब अपने अपने राग में मस्त थे। ठीक इसी समय हमारा तेजस्वी कुमार श्रीचन्द्र सुगमता पूर्वक चला जा रहा था। मुख पर शान्ति विराज रही थी। किसी भी

प्रकार का खेदजनक चिह्न दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। अपनी धुन में मस्त कुमार मस्ती से बढ़ा जा रहा था, आसानी से वह थोड़ी ही देर में नगर से बाहर आ पहुँचा।

नगर के बाहर निर्जन में एकाकी कुमार के साथी केवल पूर्वोपार्जित पुण्य-कर्म ही थे। कुमार शकुन शास्त्र का ज्ञाता था तथा, उसमें विश्वास भी रखता था, अतः कुछ देर ठहर कर अनिश्चत की ओर बढने से पहले उसने ध्यानपूर्वक पक्षियों की बोली सुनना प्रारम्भ किया। जिस तरफ शुभ शकुन युक्त पक्षी बोल रहा था, कुमार ने उसी तरफ प्रयाण किया।

चलते चलते रात्रि बीत गई आसमान में अरुणोदय की लाली छा गई। चिड़ियाँ सुमधुर स्वर में गा गाकर प्राभातिक स्वागत करने लगीं। सुगन्धि-शीतल-धीर समीर चलने लगा। रात्रि में बन्द हुए कुसुम खिलने लगे, और भ्रमर समूह अपने को मुक्त पाकर गुञ्जार करता हुआ उड़ने लगा। मानो बन्धन से मुक्ति पा जाने के कारण हर्षातिरेक से नाचता हुआ अपने मुक्तिदाता सूर्य का यशोगान कर रहा हो। चारों तरफ छिटकी हुई हरियाली आंखों को तृप्त कर रही थी। पक्षियों की सुमधुर बोली कानों की तृप्ति का साधन बन रही थी। सुगन्धित शीतल

शरीर तथा नासिका की तृप्ति का कारण समीर चल रहा था। भगवद्भजन से जिह्वा तृप्ति पा रही थी। समस्त इन्द्रियों की लालसाओं की पूर्ति करने वाले इस मनोहर प्रातःकाल की वेला में मन प्रफुल्लित हो उठा। तबीयत हरी हो गई। राह के श्रम को दूर करने के लिए कुमार ने भी एक लघुपुष्करिणी के सुहावने तट पर सघन वृक्ष की छाया में अपना आसन जमाया। उसी स्थान पर एक कनफटा योगी पहले से ही विद्यमान था। योगी महाशय से इधर उधर की बातचीत के बाद कुमार ने कुछ धन देकर उसका साधु-वेश खरीद लिया। अपने कीमती वस्त्राभूषणों को वहीं किसी गुप्त स्थान पर छिपा कर कुमार ने वह साधु-वेश धारण किया और देखते देखते ही एक राजकुमार से कार्पटिक—बाबाजी के जैसा बन गया। कुछ समय वहीं पर विश्राम कर कुमार ने फिर उत्तर दिशा की तरफ प्रस्थान किया।

विचित्र वस्तुओं से भरे इस संसार क्षेत्र में एकाकी-कुमार अपने आप में सन्तोष अनुभव करता हुआ चला जा रहा था। मार्ग में कई नगर, ग्राम, नदी, तालाब, बाग–बगीचे, पहाड़, गुफायें, मनुष्य, स्त्री, पशु पक्षी, आदि अनेक साधारण असाधारण आश्चर्यकारी दृश्य

दृष्टि-गोचर हुए। जहां इच्छा होती वहीं ठहर जाता था। जब इच्छा होती चल देता था।

मार्ग में जन जन के मुख से, कुमार श्रीचन्द्र को अपने ही चरित्र-गान सुनाई पड़े। कहीं राधावेध के प्रबन्ध-गीत, तो कहीं नृप नन्दिनी तिलकमञ्जरी के उलहने के पद। कहीं सुवेग—रथ और घोड़ों की अद्‌भुत दान लीला, तो कहीं पद्‌मिनी चन्द्रकला के विवाहले। इस प्रकार बागों में झूले पर झूलती लीलावती-ललनाओं के कोकिल-कंठों से मीठे स्वर में गाये जाते यशो-गान और अनुपम जीवन घटनाएं सुनता कुमार आगे बढता जाता था।

इधर प्रातःकाल होते ही धीर-मंत्री राज-सभा में जा पहुँचा। उसने महाराज प्रतापसिंह के सामने बड़े विनीत और राजकीय ढंग से कुमार श्रीचन्द्र के विवाह का प्रस्ताव रखा। ठीक उसी समय राजा दीपचन्द्र देव के सेनापति ने आकर पद्‌मिनी चन्द्रकला के विवाह की सारी बातें महाराजा से निवेदन की। प्रसन्न-मनवाले महाराजा ने महारानी सूर्यवती को इन सुखद-समाचारों से अवगत कराया। महारानी ने इन समाचारों से भारी हर्ष प्रकट किया। अपनी बहन चन्द्रवती की पुत्री चन्द्रकला से मिलने के लिये महाराज से आज्ञा लेकर महारानी बड़ी

सज धज के साथ लक्ष्मीदत्त सेठ के निवास-स्थान पर आ पहुँची।

जब चन्द्रकला ने सुना कि मासीजी मिलने के लिये आ रही हैं, तो बड़ी तेजी से वह भी स्वागत में सामने आई और बड़े प्रेम से महारानी मासी सूर्यवतीजी को प्रणाम किया। महारानी ने भी उसे हृदय से लगा लिया और माथे पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिये, कि बेटा! चिरंजीवी रहो। परस्पर कुशल प्रश्न के बाद पद्मिनी चन्द्रकला ने महारानी को अपना महल और दहेज की वस्तुओं को दिखाया। कुटुम्ब सम्बन्धी बातें भी खूब हुई। सेठ को पूछवा कर महारानी चन्द्रकला को अपने राज-महल में ले आई।

महाराजा चन्द्रकला के विवाह में घटी घटनाओं को सुनकर अचरज में डूब गये। कुमार को बुलाने के लिये महाराजा ने अपने खास आदमी भेजे। सेठ लक्ष्मीदत्त ने कुमार के निवास-स्थान में पता लगाया पर कहीं भी कुमार की खोज़ खबर न मिली। सेठ बड़ा चिन्तित हुआ। छाती पीट कर बेहोश सा कहने लगा अरे! मेरा लाडला-बेटा घर से निकल गया है। कहां गया? उसे ढूंढने के लिये नगर का कोना कोना छान डाला। कुमार के मित्र, सेवक, एवं सिपाहियों को इधर उधर दौड़ाया। सब

व्यर्थ । सावन भादों में दूज के चांद के जैसे कुमार का कहीं पता न लगा । रंग में भंग हो गया । सभी दुःखी हो गये । गुणचन्द्र पागल सा बेचैन हो गया । जल बिना मछली के जैसे छट पटाने लगा ।

सेठ लक्ष्मीदत्त अपने मन में पश्चात्ताप करने लगे । आंखों में आंसू भर भरकर कहने लगे अरे ! मैं बड़ा अभागा हूं । मैंने व्यर्थ ही बेटे को दुःखी किया । चूभती हुई बात कह दी । हे बेटा ! तू मुझे माफ कर दे, जहां कहीं हो वहां से चला आ । अरे ! मैंने वीणारव से उसके दान किये रथ घोड़े मूल्य देकर वापस लेने के लिये जोर दिया, यह अच्छा नहीं किया । मेरे इसी कार्य से वह रुष्ट होकर कहीं चला गया । अब मैं क्या करू ? कहां जाऊं ? मेरा बेटा मुझे कहां मिलेगा ? हायरे ! मेरा लोभ । इस प्रकार से० ने विलाप और प्रलाप किये ।

पुत्र वियोग से दुःखी हुई सेठानी भी अपनी आंखों से घोर २ जितने आंसू गिराती हुई विलाप करती हुई कहती है "हाय आज दिन तक मेरे जिस बेटेने मुंह से कभी कुछ नहीं मांगा था, उसीने कल मेरे से लड्डु मांगे, और अपने कुटुम्बियों में बांट कर स्वयं भी कुछ खाये । उस समय इस बात को मैं न समझ पाई कि मेरा लाल मेरी आंखों का तारा, हृदय का हार, श्रीचन्द्रकुमार मुझ

से विदाइ लेकर कहीं जा रहा है" । अरे बेटा! मुझे छोड़ के कहां गया रे!! इस तरह से सेठानी ने भी बेहद दुःख किया ।

जिस प्रकार पानी में पडा हुआ तैल, दुष्ट को कही हुई गुप्त बात, एवं पात्र में दिया हुआ दान अपने आप फैल जाता है, उसी तरह कुमार के एकाएक कहीं गुम हो जाने की बात भी सारे नगर में फैल गई । राजकुल में भी उसकी चर्चा हुई । महारानी और महाराजाने भी सुना । सर्वत्र व्याकुलता छा गई । सेठ लक्ष्मीदत्तने अपने आदमियों को भेज कर पुत्र वधु पद्मिनी चन्द्रकलाको राजकुल से बुलवाया । महारानी की आज्ञा लेकर वह अपने सुसराल में आगई । उससे भी पूछताछ हुई । गुणचन्द्र ने कुछ संकेत पा लिया । पर उसने उस संकेत को हितैषी होने के नाते गुप्त ही रखा ।

इधर महाराज प्रतापसिंहने श्रीचन्द्रकुमार की खोज में सभी ओर अप सिपाही भेजे । उन्होंने देश का कोना २ छान लिया, मगर वे कुमार को कहीं भी न पा सके । तीन दिन तक सारी नगरी में शोक सा छा गया । न तो बाजार ही खुले, और न कोई व्यवसाय ही हुआ । सारे आमोद प्रमोद बंद हो गये । सब के चेहरे उदास और चिन्तित दिखाई देते थे ।

सेठ के घर की तो क्या बतायें ? सारे घर में शोक का साम्राज्य था। सब चित्र लिखित से बैठे थे। आहों और सिसकियों के सिवाय कहीं से कोई आहट तक नहीं सुनाई देती थी। न खाने का पता था, न पीने का। सभी कुमार के वियोग सागर में डुबकियां लगा रहे थे। स्थल पे पड़ी मछली के जैसे सब तड़फ रहे थे। इसी अवस्था में रोते विलखते और शोच करते उनको तीन दिन बीत गये।

चौथे दिन कुशस्थलपुर नगर में धर्मघोष नाम के कोई ज्ञानी गुरु पधारे। वनपालक ने महाराजा को बधाई दी। महाराजा और महारानी अपने परिवार के साथ गुरु-वंदना के लिये पहुँचे। लक्ष्मीदत्त लक्ष्मीवती पद्मिनी चन्द्रकला आदि और भी कई धर्म प्रेमी नागरिक गुरु-दर्शन-वन्दन के लिये गये। विनय-विधि से सबने श्रीगुरु महाराज को वंदन किया मुनिराज ने सबको बड़े उदात्त भाव से धर्मलाभ दिया। सभी गुरु दर्शन से आत्मा को कृत-कृत्य मानते हुए गुरु वचनामृत का पान करने की उत्कण्ठा से यथास्थान बैठ गये। गुरु ने आत्मवाद और कर्मवाद की धर्मकथा कही।

य एव कर्माणि करोति लोके,
भुङ्क्ते स एवेह च तत्फलानि।

कर्मैक हेतु भव—भाव—भावः
कर्मक्षयादेव भवेद्धि मोक्षः ॥

अर्थात्-जो कर्मों को करता है वही उन कर्मफलों को भोगता है। भव-संसार में होने वाले भावों का कर्म ही एक मात्र हेतु है जो भाग्यशाली कर्मों का क्षय कर देता है उसीका मोक्ष हो जाता है।

क्या राजा क्या रंक संसार में सभी अपने कर्मों से सुख दुःख भोगते हैं। अतः अयभव्यात्माओं ! आत्मा का ख्याल करके कर्मों पर काबु प्राप्त करो। कर्म को धर्मरूप में परिणत करने वाले धर्मात्मा धन्य होते हैं।

सद्गुरु देव के उपदेश को सुनकर महारानी सूर्यवती ने हाथ जोड़कर बड़े नम्र—शब्दों में गुरु से पूछा—भगवन् ! जयकुमार के भय से सद्य उत्पन्न मेरे पुत्र—रत्न को बगीचे में फूलों के ढेर में छिपा दिया था। बादमें ढूंढने पर भी वह नहीं मिला, उसका मुझे बड़ा दुःख है। आप ज्ञानी हैं अतः कृपा कर बताइयें कि उसका क्या हुआ ?।

रानी की प्रार्थना पर उपयोग लगाकर दयालु-ज्ञानी-गुरु ने सबके सामने कहना शरु किया—महाभागे ! ये सब पूर्वकृत कर्मों के ही खेल हैं। तुम्हारा पुत्र बड़ा भागशाली है। तेजस्वियों में शिरोमणि है। तुम्हारो

गोत्र-देवता ने ही उसका और तुम्हारा परम हित देख कर जिस रोज कुमार का जन्म हुआ था, उसी रात्री में सेठ लक्ष्मीदत्त को स्वप्न में आदेश दिया कि–'तुमको राजा के उद्यान से प्रातःकाल में फूलों के ढेर में सुरक्षित एक नव–जात शिशु मिलेगा, उसे ले आओ।' सेठ ने वैसा ही किया। सेठ के लडका न था, अतः उसी को अपना लडका मान कर जन्मोत्सव मनाया।

उसी बालक के पुण्य प्रताप से सेठ लखपति का करोड़पति बन गया। सेठानी लक्ष्मीवती ने भी बडे हर्ष से अपने पुत्र के अभाव में उसी को "मेरे गूढ गर्भ था" की–बात प्रचारित करके अपने पुत्र की तरह ही लालन पालन किया। तुम्हारे द्वारा श्रीचन्द्र नामवाली अंगुठी जो कुमार के पास रखी थी उसीके आधार पर उन्होंने भी उसी सुन्दर 'श्रीचन्द्र' नाम को पसंद किया। कुटुम्बियों के सामने समारोह के साथ उसका श्रीचन्द्रकुमार नाम रख दिया।

महाराज ! एक समय आपने उसे गोदी में लेकर क्या पुत्र-सुख का अनुभव नहीं किया था ? क्या आपकी स्नेहभरी दृष्टि उसी पुत्र स्नेह के कारण श्रीचन्द्र के मुख-पर नहीं गिरी थी ?। महाराज लक्ष्मीदत्त सेठ के घर बडा होने वाला अद्भुत चरित्रों वाला कुमार श्रीचन्द्र

आपका ही तो चिरंजीवी है ? उसका चरित्र सारे देश में प्रसिद्ध है। इस विषय में सेठ लक्ष्मीदत्त और उनकी धर्मपत्नी साक्षी हैं। दान देने के सम्बन्ध में सेठ से कुछ मन मुटाव हो जाने के कारण ही वह इस समय अपने भाग्य के भरोसे विदेश-यात्रा में गया हुआ है। घबराइयें नहीं वह इसी वर्ष राजाधिराज होकर आप लोगों को आ मिलेगा। इसमें कोई संदेह नहीं।

इस प्रकार ज्ञानी-गुरु के वचनामृत से परमानन्द को पाये हुए महाराजा और महारानी बहुत ही प्रसन्न हुए। सेठ सेठानी ने भी बड़े विनीत भाव से श्रीगुरुदेवकी बात को स्वीकार की इस पर महाराजा और महारानी ने उन दोनों कोखूब सराहा। उनके साथ पहिले प्रेम तो था ही अब और भी ज्यादा बढ गया। गुरु महाराज के फरमाने से नैमित्तिक के वचन को सत्य-सिद्ध माना।

उस समय वहां उपस्थित बन्दी जनों ने विद्वानों ने और कवियों ने श्रीचन्द्र का खूब ही यशो—वर्णन किया।

नरसिंह—कुलादित्य—प्रतापसिंह भूप—भूः।
जीयात् सूर्यवती सूनुः-श्रीचन्द्रो जगतीतले ॥

अर्थात्—नरसिंह के कुल में सूर्य के समान प्रतापी महाराजा प्रतापसिंह से उत्पन्न होने वाले श्री सूर्यवती के पुत्र श्रीचन्द्र कुमार इस पृथ्वी पर चिरंजोवी रहो।

लोगों के मन की बडी भारी भ्रान्ति के मिट जाने से लोगों में एक अनुपम उल्लास की लहर दौड़ गई। गुरुदेव को नमस्कार कर सब लोग अपने घरों को लौट गये। महाराज--प्रतापसिंह ने अपने पुत्र की खबर पाकर नगर में भारी उत्सव मनाया। महारानी सूर्यवती ने जिस गंध-हस्ती को अपने पुत्र के लिये छांट कर रखा था उसे यह श्रीचन्द्र का पट्ट---हाथी है ऐसा निश्चित कर दिया। पद्मिनी चन्द्रकला कभी महाराज के यहां, तो कभी सेठ के यहां, तो कभी श्रीपुर में रात दिन धार्मिक कृत्यों को करती हुई पति-विरह के दुःखमय समय को विताने लगी। कहा भी है—

धर्मोऽयं धन वल्लभेषु धनदः कामार्थिनां कामदः,
सौभाग्यार्थिषु तत्प्रदः किमपर पुत्रार्थिनां पुत्रदः।
राज्यार्थिष्वपि राज्यदः किमथवा नाना विकल्पैः कृतैः,
तत्किं यन्न करोति किन्तु कुरुते स्वर्गापवर्गावपि ॥

अर्थात्—धर्म धनार्थियों को धन, कामाभिलाषियों को काम सौभाग्य चाहने वाले को सौभाग्य, पुत्र की कामना करने वालों को पुत्र देने वाला होता है। इसी तरह से राज्य चाहने वालों को राज्य भी देता है। अथवा तरह २ के संकल्प विकल्पों से क्या ? धर्म क्या नहीं कर सकता है ? सब कुछ कर सकता है यावत् स्वर्ग और अपवर्ग—मोक्ष दोनों का भी देनेवाला होता है ।

२५

जननी जणे तो भक्त जण कां दाता कां शूर।
नहीं तो रहिजे बांजणी मती गमावे नूर॥

हे मां! अगर संतान पैदा करनी है तो भक्त संतान पैदा करना, चाहे तो दानवीर सन्तान पैदा करना, चाहे वीर सन्तान पैदा करना। जैसी तैसी सन्तान पैदा कर के नूर गमाने से तो अधिक अच्छा हो कि तू बांझ बनी रहे।

रोकर रोटी मांगने वाली संतान के मां-बाप संसार में इज्जत नहीं पाते। भक्तों को दानवीरों की, और शूर वीरों की संसार में महिमा गाई जाती है, और उन्हीं के पूर्वजों के नाम भी स्वर्णाक्षरों से इतिहास में कथाओं में और गीतों में गाये जाते हैं। श्रीचन्द्रकुमार भी अपने

चरित्र से भक्तों को दान वीरोंकी और शूर वीरों की कोटि में नाम लिखाने वाला था। वह बैठकखाई या पेटु नहीं था तेजीको ताजखे के समान सेठ लक्ष्मीदत्त की बातों ने उसकी तेजी में चार चांद लगा दिये।

पद्मिनी चन्द्रकला की आज्ञा पाकर घर से निकले बाद वह स्वेच्छा से स्वतन्त्रता पूर्वक पृथ्वी में पर्यटन कर रहा था। कभी कोसों तक पैदल ही चलता जाता था तो कभी सवारी द्वारा। कभी दिन में, चलता था तो कभी रातमें वह शेर की भांति निर्भयता पूर्वक विचरता था। पंच परमेष्ठी महामंत्र के जाप से, योगी से प्राप्त औषधि द्वारा और अपने प्राचीन पुण्यों के प्रभाव से वह सुरक्षित था।

भोजन में उसकी यह विशेषता थी कि एक सोना मोहर देकर वह किसी बनिये की दुकान पर भोजन करता था। भोजन के मूल्य से अगर अधिक पैसे निकलते थे तो वह लेता नहीं था। अकेला भोजन नहीं करता था। उसका नित्य नियम था कि पांच सात मनुष्यों को जिमा कर ही वह जीमता था। कहीं किसी दीन हीन दुःखी को वह देखता तो गुप्त रूप से उसकी भरसक मदद करता था।

एक दिन चलते-चलते रात होगई। आसपास किसी बस्ती का आसार न देख कुमार ने उसी जंगल में रात बिताने की ठानी। वह एक वृक्ष पर चढ गया। चारों तरफ छिटकी हुई चांदनी को देखने लगा। वह टकटकी लगाए शारदीय शशी की शोभा को निहार रहा था कि सहसा उसके मुंह से निकल पड़ा—

तारागण-प्रचुर-भूषणमुद्वहन्ती
मेघावरोध परिमुक्त-शशाङ्क-वक्त्रा।
ज्योत्स्ना दुकूलममलं रजनी दधाना॥
वृद्धिं प्रयात्यनुदिनं प्रमदेव बाला॥

अर्थात्—नक्षत्र रूपी अनेक आभूषणों को पहने हुई, बादलों के हटजाने से चन्द्रमा रूपी मुख को स्पष्टतया प्रकट करती हुई, चांदनी रूप दुपट्टा धारण की हुई यह रात्रि रूप बाला, प्रमदा की तरह दिन ब दिन बढ रही है।

उस समय अचानक उसका ध्यान पृथ्वी पर चलती हुई कोई छायामात्र मनुष्य की तरफ आकर्षित हुआ। उसने मन में सोचा कि यहां साधारण तया मनुष्य नहीं आ सकते हैं! हो न हो यह कोइ सिद्ध पुरुष ही है। हैं! यह बोझा लाद कर कहां जारहा है इसे जरूर ज्ञात करना चाहिए। अतः कुमार ने उसके पीछे २ चलना शुरू कर

दिया, पर गुप्त-गुप्त जिससे उस कुछ भी मालुम न पडे।

कुछ दूर आगे वढने पर वह छाया सघन वृक्षों में लोप होगई। बस कुमार वहीं ठहर गया। जब सुबह हुआ और उजाला चारों तरफ फैल गया तब उसके पद चिह्नों को देखता हुआ कुमार उन्हीं के सहारे आगे वढने लगा। चलते चलते वह एक वडे पहाड़ की गुफा पर पहुँचा। उसका मुहँ एक वहुत वडे शिलाखंड से ढँका हुआ था। कुमार ने उस पदपंक्ति को गुफा के भीतर जाते हुए तो देखा पर बाहर वापस निकले हुए चिह्न दिखाई नहीं पड़े। अतः बुद्धिमान् कुमार ने उस पुरुष के भीतर होने का अनुमान किया। उस स्थान से नजदीक ही एक बावड़ी के तट पर लगे हुए एक पेड़ की खोखल में जाकर कुमार बैठ गया। वहीं पर उसने कुछ फलाहार कर, जल-पान करके अपनी जठराग्नि को शान्त किया।

कुमार दिन भर उस गुफा की ओर ध्यान लगाए उस पेड की खोखल में बैठा रहा। फिर भी कोई मनुष्य उसमें से निकलता हुआ नजर नहीं आया। तीसरे पहर में एक मनुष्य शिला-खण्ड को हटा कर गुफा में से निकला और बावडी पर आया। वहां पर उसने अपने हाथ मुंह धोकर जल पिया, और हाथ में लाए हुए वर्तन को पानी

से भर कर पुनः गुफा में प्रविष्ट होगया। थोड़ी देर बाद वह फिर गुफा से निकला, तथा गुफा के मुंह को शिला-खण्ड से बंद करके बावडी पर आया। घुमैले वस्त्र पहने मुंह से पान चबाता हुआ, अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित वह नवयुवक बहुत ही सुन्दर प्रतीत हो रहा था। उसने बावडी के पानी से खूब कुल्ले किये और एक गुटिका को मुंह में रखा। गुटिका के प्रभाव से वह पहले की तरह अदृश्य होगया और नगर की ओर चला।

कुमार इन सब बातों को बडी ही सावधानी से देख रहा था। उस सिद्ध पुरुष के वहां से चले जाने पर कुमार बाहर निकला और उसने धूप में उसकी छाया को नगर की ओर जाते देखा। थोडी देर बाद जब कुमार को उसके बहुत दूर निकल जाने का विश्वास हो गया, तो वह शीघ्र ही उस पर्वत कन्दरा के पास आया और बड़ी मुश्किल से उस शिलाखण्ड को दूर किया। एवं उस गुफा में प्रविष्ट हुआ।

वह साहसी बड़ी निर्भयता से उसमें आगे बढता जारहा था। थोड़ी दूर चलने के बाद उसे एक सुन्दर और विशाल भवन दिखाई पड़ा। वह तुरन्त उसमें घुस गया। वहां का वैभव तथा धनको देख कर वह चकितसा रह गया। कुछ आगे बढने पर मकान के मध्य भाग में एक रत्न

जटित पलंग पर बैठी हुई एक प्रौढ युवती उसे दिखाई पडी। उसने उस युवा स्त्री को बडी हमदर्दी के साथ पूछा:- हे बहिन! तुम कौन हो? और यहां अकेली कैसे रहती हो?

कुमार के प्रश्न को सुनते ही उसकी आंखों में पानी भर आया और वह गद् गद् स्वर में बोली-हे भाई! सुनो, नायक-नामके नगर में बहुत से ब्राह्मण-व्यापारी रहते हैं। वहां राजा भी ब्राह्मण तथा अधिकारी वर्ग भी ब्राह्मण हैं। वह गांव ही ब्राह्मणों का है। वहां के मन्त्री रविदत्त ब्राह्मण की मैं विवाहिता स्त्री हूँ। मेरा नाम शिवमती है। मेरे यहां आने की कथा मैं तुम्हें सुनाती हूं सो आप ध्यान देकर सुनियें।

हमारा नायक नगर धन धान्य से परिपूर्ण है। बडे २ धनाढ्य अपने निवास से उसे अलंकृत कर रहे हैं। ऊंची२ अट्टालिकाए और चौडे चौडे एक पंक्ति में बने हुए बाजार उसकी शोभा को बढा रहे हैं। वह नगर व्यापार का बडा भारी केन्द्र है, और वहां के निवासी सभी प्रकार से बडे सुखी हैं। परन्तु इन दिनों वहां पर बडी ही अराजकता फैली हुई है। चोरीयों का जोर वहां पर दिन प्रति दिन बढता ही जा रहा है। इस कारण लोग वहां बडे ही दुखी हो रहे हैं। एक दिन सबने मिलकर राजा से प्रार्थना की कि या तो

आप हमारे जान मालकी रत्ता किजिएँ या हमें नाहीं कह दीजिएँ जिससे हम आपके भरोसे न रह कर अपने बड़े स्वामी कुशस्थल के महाराज से अपनी रत्ता की प्रार्थना करें।

प्रजा का उपालम्भ सुन कर राजा बहुत डरा। बड़े सत्कार के साथ उसने प्रजा–जनों को उनकी रत्ताका आश्वासन दिया। उसी वख्त राजाने सिपाहियों को भेज कर नगर रत्तक को बुलाया और खूब फटकारा।

नगर रत्तक ने निवेदन किया "स्वामीन्! वह कोई सिद्ध–चोर है। अतः नगर के रत्तकों को दिखाई नहीं देता है, फिर भी मैं आज से उसे पकडने का भरसक प्रयत्न करूंगा।

इतना कह कर वह नगर रत्तक चला आया और प्रजा-जन भी आश्वासन मिलजाने पर सन्तुष्ट होकर अपने अपने घर चले गये। रात्रि में नगर रत्तक ने बड़ी साव-धानी के साथ पहरा दिया, और अपने सेवकों को कड़े पहरे पर लगा दिया, पर वह चौर उसे कहीं पर भी नहीं मिला।

चोर को नगर रत्तक की प्रतिज्ञा किसी तरह मालूम पड़गई तथा उसने उसी के घर में चोरी की और चलता

बना। इसी तरह उस के बाद जिसने भी उसे गिर-फ्तार करने का बीड़ा उठाया उसकी दशा उस नगर-रक्षक के समान हुई। अन्त में मेरे पति रविदत्त ने अपने घर को खाली करके अपना माल असबाब दूसरों के घर में गुप्त रीति से रख कर फिर उस चोर को पकड़ने की प्रतिज्ञा की। मेरे पति ने तमाम रात उस चोर को खोजा मगर वह उनके हाथ नहीं आया। जब चोर को इस बात का पता लगा कि मेरे पति ने उसे पकडने का बीड़ा उठाया है तो वह रात्रि में मेरे घर आया परन्तु किसी प्रकार का माल असबाब तो उसके हाथ न लगा। तो वह क्रोधित हो कर मेरे पास आया और मेरे हाथ पैर बांधकर एवं मुंह में वस्त्र ठूँस कर मुझे यहां ले आया।

मुझे उसने अपना नाम रत्नाकर चोर बताया है। वह प्रतिदिन कभी साक्षात् तथा कभी अदृश्य होकर इस समय जाता है, और पौ फटने पर वापस लौट आता है। हे भाई! मुझे यहां आये तीन दिन हो गये हैं मैं बहुत ही दुखी हूँ। मुझे अपने पति तथा बच्चों का वियोग दिन रात सताता है। न जाने मेरे दूध मुंहे बच्चों का क्या हुआ होगा?।

हे बन्धो! आप कौन हैं? और यहां किस कारण से

आये हैं ? मुझे तो ऐसा भान होता है कि मेरा भाग्य ही आप को यहां खींच लाया है।

कुमार ने उसका हाल सुन कर कहा बहिन ! मैं तो कोई राह चलता कार्पटिक हूँ। धैर्य रक्खो । मैं तुम्हें अवश्य इस दुःख से छुड़ाने की कोशीश करूंगा।

यह सुन शिवमती ने कहा– बन्धो ! कृपा करके आप मुझे इस पापी के हाथ से छुडा कर मेरे निवास स्थान नायक-नगर में पहुँचा दें, तो ऐसा करने पर आपको गुप्ति और मुक्ति का फल प्राप्त होगा । मेरी प्राण रक्षा होगी तथा मेरे बच्चों से मेरा मिलाप हो जायगा और मैं और बच्चे आपको यावज्जीवन आशीर्वाद देते रहेंगे।

उसकी करुणा भरी कथा को सुनकर कुमार का हृदय पिघल गया। उसने उस ब्राह्मणी–शिवमती को अपने साथ लिया और गुफा के द्वार से बाहर निकल कर उस शिला से तथा एक दूसरे पत्थर से गुफा के मुंह को ढक दिया फिर वे दोनों वहां से नायकपुर की ओर चले । कुछ घंटों में ही वे दोनों नायकपुर पहुँच गये। नगर में पहुंच कर कुमार ने शिवमती को उसके घर लेजाकर उसके पति को सौंप दिया । उसके पति रविदत्त ने कुमार का बहुत आभार माना । उसके तमाम कुटुम्बियों ने कुमार का बड़ा आदर

सत्कार किया। शिवमती तरह तरह के वस्त्राभूषण लाकर कुमार को देने लगी, पर कुमार ने कुछ भी लेना स्वीकार नहीं किया अन्त में आग्रह पूर्वक शिवमती ने कुमार को स्मृति-चिन्ह के रूप में एक अंगूठी दी जिसे कुमार ने बड़े आदर के साथ स्वीकार की। इसके पश्चात् पुनः कुमार उस चोर के निवास स्थान के पासकी बावडी के पास लौट आया और बैठ गया।

पहलेवाले पेड के नीचे वह जाकर बैठा ही था, कि वह चोर भी इसी दरमियान कुमार के पास आकर बैठ गया। परिचय पूछने पर कुमार ने अपना नाम लक्ष्मी-चन्द्र तथा चोर ने अपना नाम रत्नाकर बतलाया।

यह चोर मुझे द्वार खोलने के लिए कहे इसी आशय से कुमार ने उससे पूछा कि हे मित्र! तुम इतने उदास क्यों दिखाई पड रहे हो। ज्यों ही वह कुछ जवाब देने वाला था कि पांच पथिक एक ओर से आ निकले, और वहीं उसी पेड के नीचे बैठ कर विश्राम करने लगे। कुमार की दृष्टि चोर की पगडी में बंधी हुई गुटिका पर पडी और उसे प्राप्त करने की नीयत से कुमार ने पांचों पथिकों के सामने उस चोर से कहा कि—मैं तुम्हारी और मेरी पगडी को एक शिला के नीचे दबा देता हूं। हम

दोनों में से जो कोई भी शिला के नीचे से निकाल लेगा वही दोनों का स्वामी होगा।

कुमार की पगडी में सोना बँधा हुआ देख कर चौर के मुंह में पानी भर आया और उसने फौरन उस शर्त को स्वीकार करली। कुमार ने एक बडी भारी शिला के नीचे दोनों की पगड़ियों को दबा कर रखदी। सर्व प्रथम उस चौरने पगड़ियों को निकालने की बहुत कौशीश की पर वह न निकाल सका। दूसरों ने भी पगड़ियों को निकालने को कोशीश की पर वे भी असफल रहे तथा चौर और वे हार कर बैठ गये।

उपस्थित मनुष्यों में से एक के पास से कुमार ने कुछ पके हुए आम खरीद कर सबको खाने के लिए बांट दिये। चौर मन में विचार कर रहा था कि यह मनुष्य बड़ा बलवान् मालुम पड़ता है यह मेरी गुफा का दरवाजा खोल सकता है क्योंकि कुमार ने जो दूसरा बड़ा पत्थर उसकी गुफा के मुंह पर लगा दिया था वह चोर से नहीं हिल सका और वह हार कर वहीं आकर कुमार के पास बैठ गया था। बेचारा अपने घर में घुस ने से भी वंचित हो गया था।

इतने में नायकपुर के रास्ते में से बाजों की आवाज सुनाई पड़ी। सब ने यही कहा कि निश्चय ही राजा

भृगु की सेना इधर आ रही है। वह चौर और वे पाचों पथिक वहां से नौ दो ग्यारह हो गये।

वहां पर एकान्त हो जाने के बाद कुमार ने उठकर उस शिला के नीचे से वे दोनों पगड़ियां निकाल ली। गुटिका लेकर कुमार ने अपने मुंह में रख ली और अदृश्य होकर पेड़ पर चढकर वैठ गया।

इतने में राजा भृगु की सेना वहां आ पहुँची खोजियों ने पैरों के निशान खोज ने शुरु किये। अन्त में खोज करने के वाद उन्होंने राजा से कहा—राजन्! यहां तक तो पदचिह्न मिलते हैं पर इस स्थान से आगे तो दिखाई नहीं पड़ते। राजा ने फौरन मंत्री को हुक्म दिया कि जल्दी से उस दुष्ट का पता लगाओ। वह यहीं कहीं छिपा हुआ मालूम पड़ता है।

जो आज्ञा कहकर मंत्री ने सिपाहियों को पता लगाने के लिए आदेश दिया। सिपाहियों ने आसपास के जंगल, पेड़, गुफाएँ, खोखल तथा नदी तालाव सब कुछ छान डाले पर उस चोर का कहीं पर भी पता न चला। अन्त में निराश होकर रात में वह सेना अपने नगर को वापस लौट गई।

कुमार श्रीचन्द्र भी उस पेड़ से नीचे उतर कर इच्छित दिशा की ओर रवाना हुआ। पूर्व जन्म में किये हुए पुण्य के प्रभाव से सारी सम्पतियां उसे प्राप्त थी। गुटिका के प्रभाव से मुश्किल से मुश्किल काम भी आसानी से पूर्ण होते थे। एक दिन विश्राम के लिये किसी मुसाफरखाने में वह ठहरा हुआ था। तब वहां बहुत से पथिक ठहरे हुए थे। कुमार उनके वर्त्तालाप को सुन रहा था कि-एक वैतालिक-चारण ने गाना शरु किया—

णयरे कुसत्थलम्मि-पुहवीस-पयावसिंह-कुलचन्दो।
सिरि सूरियवइ तणओ, सिरिचंदो जयउभुवणयले॥
राहावेह-विहीए, सयंवर वरिओ य तिलयमंजरीए।
सव्व-निव-गव्व-हरणो, वीरिक्को जयउ सिरिचन्दो॥
सिहउरवर नरेसर-सुहगंग-सु-इ पुव्व भवनेहा।
पउमिणि चन्दकलाए-परिणीओ जयउ सिरिचंदो॥

अर्थात्-कुशस्थल नगर के स्वामी महाराजा-प्रतापसिंह के कुल में चन्द्रमा के जैसे, महारानी श्री सूर्यवतीजी के पुत्र श्री चन्द्रकुमार की संसार में जय हो। राधावेध की साधना से तिलकपुर की राज कन्या तिलकमंजरी ने जिसे स्वयंवर मण्डप में वरमाला पहिना दी। ऐसे सब राजाओं के गर्व को हरण करने वाले सुभटशिरोमणि कुमार श्री चन्द्र की जय हो। सिंहपुर के स्वामी श्री शुभगांग राजा

की पद्मिनी कन्या श्रीमती चन्द्रकला ने पूर्व-भव के स्नेह से प्रेरित हो जिससे व्याह किया ऐसे श्री चन्द्रकुमार की जय हो।

इस गीति को सुन कर एक पथिक बोला अरे भाई ! तुमने तो अनर्थ कर डाला। वह श्रीचन्द्र कुमार तो सेठ का पुत्र है उसे राजपुत्र कैसे बता रहे हो। यह सुन वैतालिक ने कहा—भाई ! सुनो जब मैं कुशस्थल में था, तभी पद्मिनी चन्द्रकला विवाहित हो कर आई थीं। कुमार ने वीणारव को मुंहमांगा दान रथ और घोडों का दिया था। एक दिन तिलक पुर के मंत्री धीरने महाराजा प्रताप सिंह से तिलक मंजरी को व्याहने के लिये कुमार श्रीचन्द्र को भेजने के लिये निवेदन किया था। उसी रोज कुमार गुप्त रीति से कहीं चला गया है। खोज शरु है, मगर वह नहीं मिला है। एक दिन वहां एक ज्ञानी गुरु का आगमन हुआ था। राजा रानी, सेठ सेठानी आदि सभी दर्शन करने लिये गुरु के पास पहुंचे थे, गुरुजी ने धर्मोपदेश दिया था। महारानी सूर्यवती ने अपने पुत्र के लिये गुरु महाराज से पूछा था। ज्ञानी गुरु ने कुमार श्रीचन्द्र को उनको अपना अंगज पुत्र बताया था और सेठ सेठानी पालक माता-पिता ही हैं ऐसा फरमाया था। उन्ही ज्ञानी गुरु ने फरमाया है कि श्रीचन्द्र कुमार अभी

इन दिनों विदेश में विचर रहा है। वह एक ही वर्ष में राजाधिराज हो कर तुम्हें आ मिलेगा। कुस्थलपुर में यह बात सुन राजा रानी आदि सब बड़े प्रसन्न हुए तथा अपने अपने घर चले गये। मैंने भी वहां पर इन गाथाओं को उन्हें सुनाया, और जो कुछ भी धन मिला, उसे लेकर इस समय मैं अपने घर जा रहा हूं।

यह बात सुन कर कुमार को अत्यन्त हर्ष हुआ। कुमार ने उस वैतालिक को यथेष्ट दान देकर सन्तुष्ट किया, तथा अन्य उपस्थित मनुष्यों को मिष्टान्न भोजन कराया। इसके बाद वह उसी वेश से फिर आगे चला। कभी वह प्रकट रूप से चलता था, तो कभी अदृश्य हो कर।

एक दिन कुमार को चलते चलते शाम हो गई। एक भयावने जंगल के पास वह आ पहुँचा। वहां ठहरने का कोई स्थान न होने से वह एक बहुत बड़े पेड़ के नीचे ठहर गया। वह पेड़ तोतों का निवास स्थान था। शाम को सभी तोते अपना चुगा करके चारों ओर से वहां एकत्रित हो गये। वे आपस में बातें पूछने लगे। कौन कहां से आया है? और किसने क्या देखा है? इस प्रकार प्रश्न होने पर, एक बड़े तोते ने जो कि वहां तीन दिन से आया था—उसको

बने पूछा—बाबा ! तुम इतने दिन कहां थे ? क्या कोई आश्चर्य देखा ? उसने उत्तर दिया—बच्चों ! यहां से पूर्व की ओर महेन्द्रपुर नाम का एक सुन्दर नगर है। वहां का स्वामी त्रिलोचन नाम का राजा है, और उसके गुणसुन्दरी नाम की रानी है । सुलोचना नाम की जन्म से अन्धी उनके एक पुत्री है। वह इस समय युवावस्था को प्राप्त हो चुकी है। चौंसठ कलाओं में वह निपुण है। उसके हृदय-रूप नेत्र खुले हुए हैं । इसलिए वह अद्भुत काम भी कर लेती है। एवं कविताएं भी बनालेती है ।

एक दिन राजाने उसके वर की चिंता की। अन्धी को कौन परखे और इसकी आंखें कैसे ठीक हो ? मंत्री से इसका परामर्श किया। राजा ने अपने राज्य में ढिंढोरा पिटवाया कि जो कोई इसे दृष्टि प्रदान करेगा उसे मैं अपना आधा राज्य दूंगा। उसके साथ इस कन्या का विवाह कर दूंगा पांच मास व्यतीत हो गये, फिर भी दृष्टि प्रदान करने वाला अभीतक कोई नहीं मिला। यह सुन, छोटे बच्चों ने पूछा—बाबा ! क्या कहीं कोई ऐसी दवा है ? जो अन्धे को देखता कर दे।

बूढे तोते ने उत्तर दिया—बच्चों ? यह दवा किसी भयानक जंगल में ही मिल सकती है। यहां पर भी मिल

सकती है। लेकिन यह जड़ी बड़ी गोपनीय है। मैं यह बात तुम्हें नहीं बता सकता क्योंकि तुम अभी बच्चे हो। इसपर बच्चों ने बहुत ज्यादा आग्रह किया। आखिरकार मजबूर होकर बूढे को बताना ही पडा—प्यारे बच्चों! इसी पेड की जड़ में बडे भारी प्रभाव वाली दो लताएं हैं, उनमें से एक मृत संजीवनी है और दूसरी क्षत-संरोहिणी नाम की गुणसंपन्न औषधि है। पहली लता जो कि बड़े बड़े पत्तों वाली है वह शस्त्रों के घावों को फोरन मिटा सकती है। तोते की बात को सुन नीचे बैठा हुआ परोपकारी कुमार उठा और उन दोनों औषधियों को लेकर पूर्व दिशा की ओर चल पडा।

उस विस्तृत जंगल को पार करने में कुमार को तीन दिन लगे। चौथे दिन वह एक उजडे हुए प्रदेश में जा पहुँचा। वहां बाग–बगीचों, तालाबों, बावडियों, दुकानों और ऊंचे ऊंचे मकानों की पंक्तियां लग रही थी, मगर मनुष्य और पशुओं का वहां नामोनिशान नहीं था। चारों ओर ऊंचे परकोटे से घिरा हुआ वह प्रदेश, बाहर से और अन्दर से सब जगह सुनसान दिखाई देता था। आश्चर्य चकित होकर कुमार ज्यों ही उसमें प्रवेश करने लगा त्यों ही एक सारिका ने कुमार को अन्दर घुसने से मना किया। कुमार ने रोकने का कारण पूछा तो सारिका

बोली—हे भाई ! इस नगर में घुसने वालों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता है इसीलिए मैंने तुम्हें रोका है।

कुमार ने पूछा—मैंना ! इस नगर प्रदेश का क्या नाम है ? यह शून्य क्यों है ? प्राणों से हाथ क्यों धोना पड़ेगा ? क्या ये सब बातें बताओगी ?

सारिका ने कहा—क्यों नहीं ? सुनो—इस प्रदेश का नाम कुण्डलाचल है इस नगर का नाम कुण्डलपुर है। यहां अर्जुन नाम का राजा राज्य करता था। इसके पांच रानियां थीं जिनमें सुरसुन्दरी मुख्य थी। यहां लगभग महीनें में चार पांच चोरियां हो जाती थी। राजा और नगर रक्षक सभी उस चोर की खोज में लगे हुए थे। एक बार उस राजाने रात में चुराये हुए धन को लेकर भागते हुए उस चोर को देखा। राजा ने गुप्त-रूप से उसका पीछा किया मगर चोर को इस बात का पता चल गया और वह राजा को धोखा देकर नगर के बाहर एक मठ में जा घुसा। वहां सोये हुए एक सन्यासी के पास उसी के कपड़ों में चुराया हुआ धन रखकर वह चोर नौ दो ग्यारह होगया। राजा ढूंढता हुआ उसी मठ में जा पहुँचा। सन्यासी को चोर समझकर खूब फटकारते हुए वस्त्रों की तलाशी ली। उनमें से वह चोर का रखा हुआ

धन भी निकल पड़ा। इस कारण राजा ने निरपराध सन्यासी को ही चोर समझकर गिरफ्तार करलिया और उसे इतनी सज़ा दी कि वह मर गया।

इस प्रकार वह सन्यासी मर कर प्रेत-योनि में राक्षस होगया। उसने पूर्वजन्म को स्मरण करके राजा पर बड़ा क्रोध किया। क्रोध में आकर उसने राजा को मार डाला इसके बाद नगर के सभी मनुष्यों तथा पशुओं तक को सताने लगा। इससे तंग आकर नगर के मनुष्य और सब जीव जन्तु यहां से भाग गये, और यह सारा नगर उजड़ गया। राक्षस ने रानियों का कुछ नहीं बिगाड़ा। रानी गुणवती गर्भवती थी। राक्षस ने सोचा था कि अगर इस रानी के पुत्र होगा तो उसे मैं मार दूंगा। भाग्य से पुत्री ही उत्पन्न हुई और उसका नाम चन्द्रमुखी रखा गया। मालूम नहीं अब उसका क्या भविष्य है?

हे पुरुषोत्तम! नगर में जो कोई भी जाता है, राक्षस उसे क्रोध में आकर मार डालता है। इसीलिए मैं तुम्हें भी जाने से रोकती हूँ। यह सब सुनकर भी वीरवर कुमार श्रीचन्द्र ने नगर में प्रवेश कर ही लिया। वह शून्य बाजारों को देखता हुआ राजमहल के पास जा पहुँचा। उसने राजमहल की ओर दृष्टि डाली। झरोखों में बैठी हुई रानियों को देख-

कर वह राजसभा में आया। वहां पर घूमते हुए उसने कोमल बिछौने वाले एक सुन्दर पलंग को देखा। यही राक्षस की शय्या होगी, ऐसा समझकर अपनी थकावट को दूर करने के लिए, अपनी अंगरक्षा करके वह उस पर सो गया।

इधर वह राक्षस राजमार्ग में पुरुष के पदचिह्नों को देखकर बड़ा कुपित हुआ और शीघ्र ही वहां आ पहुँचा। अपनी शय्या पर सोये हुए कुमार को देखकर वह अत्यन्त विस्मित और क्रोधित होकर विचारने लगा— यह अत्यन्त तेजस्वी, शूरवीर, धैर्यवान् पुरुष कौन है? कहां से आया है? यह बड़ा ही निर्भय प्रतीत होता है, जो मेरी शय्या पर भी इस शान्ति और धीरता के साथ सो रहा है। क्या मैं इसे उठाकर समुद्र में डाल दूं? या इसे तलवार से काट दूं? अथवा गदा से चूर चूर कर डालूँ?

इस प्रकार विचार करते हुए उस राक्षस ने क्रोध में आकर कुमार को ललकारा—अरे! तूं कौन है? गीदड़ होकर शेर के स्थान पर कैसे सोता है? उठ! जल्दी से उठ!! दुष्ट! तुझे मेरा जरा भी डर नहीं है क्या?

राक्षस की इस तर्जना को सुनकर भी निर्भीक कुमार

उठा और बोला–अरे असुर ! तूने मुझे नींद से क्यों जगाया ? क्या कहना चाहता है ? और तू क्या करना चाहता है ? इन लाल लाल आंखों से तू किसे डराता है ? मैं तेरे घमंड को अभी चूरमूर कर दूँगा। इतने दुराचार और क्रूर कर्म करके भी अभी क्या तू तृप्त नहीं हुआ ? जो तू मेरी सुखनिद्रा का भंग कर रहा है एवं इन सती रानियों को तुने कैद कर रखा है। अगर तुझे यहां जिन्दा रहना है ? तो तू अभी भी कहीं चला जा। मैं तुझे मार ने में भी अपना गौरव नहीं समझता हूँ। अतः तू जा ! चला जा !!

इस प्रकार कुमार के वचन सुनकर राक्षस हक्का-बक्का हो गया। कुमार के पुण्य से हतप्रभ होकर, राक्षस शान्तवृत्ति से कहने लगा–हे साहसी ! मैं तुम्हारे बल और पराक्रम से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। अतः तुम मुझ-से कुछ मांगो।

यह सुन कुमार ने उसे कहा-असुर ! देखो तुमने मुझे नींद से जगा कर तकलीफ पहूँचाई है। अतः तुम मेरे पैर के तलुवों को अपने हाथों से मलो जिससे मुझे कुछ आराम मिले। कुमार की गंभीर मुखमुद्रा और निर्भीकता को देख कर कि–कर्त्तव्य–मुढ जैसे राक्षस ने ज्यों ही

कुमार के पैर छूने के लिए अपने हाथ बढाये त्यों ही कुमार ने उसका आदर करते हुए उसे बड़े सद्भाव के साथ अपने पास शय्या पर बिठा लिया। परस्पर क्षमा-याचना करके घुल मिलकर बातें करने लगे।

राक्षस ने कहा—कुमार ! आपके इस वीरोचित उदार व्यवहार से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। मैं आपकी क्या सेवा करूं ? कुमार ने कहा— देव ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो आप इस प्राणी-हिंसा के पाप को छोड़कर, जीवों पर दया किया करो। आपको भी परोपकारी होना चाहिए। इन रानियों की कैद तोड देना चाहिए। इस उजड़े नगर को फिर से बसा देना चाहिए।

राक्षस ने इन सब बातों को बड़े प्रेम से स्वीकार किया और कुमार को अपने धर्म--गुरु के समान मानता हुआ प्रसन्नता से कहने लगा—हे महापुरुष ! आप इस कुण्डलपुर के स्वामी होकर, इसका उद्धार कीजियें। आपके पुण्य--प्रताप से यह देश और नगर पुनः हराभरा, धन-जन से परिपूर्ण तथा समृद्धिशाली बन सकेगा, दूसरे से नहीं। अतः आप मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार कीजियें।

इसके बाद राक्षस कुमार को लेकर रानियों के पास गया और बोला-हे बहनों ! मेरे और आपके सौभाग्य से ही ये कोई पुण्यात्मा यहां आये हैं। मैंने यहां का राज्य इनको सौंप दिया है। मुझे आशा है, कि ये इस राज्य का उद्धार करने में अवश्य ही समर्थ होंगे। आज से आप लोग भी मेरी धर्म की बहनें और माताएं हो चुकी हैं। आप लोगों को मैंने जो कुछ अपशब्द कहे, एवं आपके साथ जो कुछ दुर्व्यवहार किया उसके लिए मैं क्षमा--प्रार्थी हूँ। इस बात को सुनकर रानियों को बड़ी भारी प्रसन्नता हुई। और कुमार को राजा रूपसे एवं राक्षस को अपना धर्म--बन्धु रूप से स्वीकार किया।

उस समय कुमार ने उन रानियों से आदर के साथ पूछा—माताऐं ! क्या आप लोगों के वंश में ऐसा पुरुष नहीं है, जो राज्य का उत्तराधिकारी बन सके। तब रानी गुणवती ने कहा—अरे परोपकारी कुमार ! हमारा वंश तो समाप्त ही हो चुका है, मैं चाहती हूँ कि मेरी चन्द्रमुखी नाम की इस कन्या के साथ विवाह सम्बन्ध जोड़कर आप ही हमारे इस राज्य के स्वामी हो जायँ ताकि हमारी सारी उलझनें दूर हो जायँ। यह प्रस्ताव उपस्थित हुआ देख कुमार ने कहा—माताए ! अज्ञात

कुलशील वाले मुझे, अपनी कन्या और राज्य जैसी महत्वपूर्ण वस्तुओं को प्रदान करने का साहस आप कैसे कर रहीं हैं ?

इस पर रानियों ने और उस राक्षस ने कहा—नरोत्तम ! तेजस्वी अपने तेज से ही पूजे जाते हैं। महापुरुषों के अलौकिक गुण कर्म ही उनके ऊंचे कुल एवं सत्यशील के परिचायक होते हैं। अतः हे कुमार निःशंकोच होकर हमारी इच्छाओं को पूर्ण कीजियें।

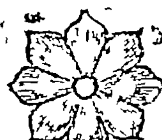
"अनिषिद्ध' स्वीकृतं" के न्याय से अपनी दैविक-शक्ति से धन, जन, सेना, हाथी, घोडे आदि सभी आवश्यक वस्तुओं को एकत्रित करके कुमार को कुण्डलपुर का राज्य दे दिया, और इसके बाद बड़ी धूमधाम से कुमारी चन्द्रमुखी का विवाह भी उसके साथ कर दिया।

राजा होजाने पर कुमार ने अपनी नाम-मुद्रा दिखला दी और अपना सम्पूर्ण परिचय दे दिया। कुमार को महाराज प्रतापसिंह का सुपुत्र जानकर सबको बड़ी खुशी हुई। रानियों ने उसे अपने जामाता के रूप में पाकर अपने को धन्य माना।

एक रोज राक्षस ने कुमार श्रीचन्द्र से कहा—राजन् ! इस नगर के भूतपूर्व राजा द्वारा पूर्वजन्म में मैं धोखे से

मारागया था। मेरी मृत्यु का कारण वज्रखर नाम का एक चौर था। मैंने उसका पता लगाकर उसको पहले ही मार दिया है। कुण्डलगिरि के मुख्य शिखर की गुफा में उसका गुप्त कोष रत्नसुवर्णादि से परिपूर्ण सुरक्षित पड़ा है। आप वहां चलकर उसे ग्रहण कीजिए।

राक्षस के कथनानुसार राजा श्रीचन्द्र ने वहाँ जाकर उस कोष को अपने अधिकार में कर लिया। वहाँ स्वर्ग से भी बढ़कर सुन्दर चन्द्रपुर नाम का एक विशाल नगर बसाया। उस नगर के मध्य में एक भव्य यक्ष-मंदिर बनवा कर उस में चौर की छाती पर खड़ी उस राक्षस की एक पाषाण प्रतिमा प्रतिष्ठित की तथा उस राक्षस को "नर-वाहन" यक्ष के नाम से प्रसिद्ध किया। बाद में कुमार कुण्डलपुर लौट-आया और राज्य की सुव्यवस्था करने में लग गया।



२६

ज़िन्दगी इन्शान की संग्राम है,
आदमी उठता रहे गिरता रहे ।
सर पकड़ कर वैठ जाना पाप है,
आदमी चलता रहे फिरता रहे ॥

संसार में जन्म लेकर कर्म तो निरन्तर करते ही रहना चाहिये । अकर्मण्य और प्रमादी हो कर पड़े रहना एक प्रकार का पाप है । कर्म करते समय यदि कर्म फलों का विचार होता रहे तो स्वभाव से ही बुरे कर्म हमारे द्वारा न होंगे । इसी बात को 'विपाक-विचय' नाम से धर्म-ध्यान कहा गया है । इस प्रकार के धर्म ध्यान से ऐहिक सुखों की प्राप्ति तो होती ही है पर मोक्ष की भी साधना सहज-भाव से हो जाती है । महापुरुष इसी लिये

कर्मठ होते हुए विवेक के साथ प्रत्येक कार्य का संपादन करते रहते हैं। सच्चे वीरों का रणभूमी में हृदय की दुर्बलता से कोई सम्बन्ध नहीं रहा करता। वे तो वीरता से कर्त्तव्य-मार्ग में अग्रसर होते ही जाते हैं।

चरित्र नायक श्रीचन्द्र-कुमार बैठनेवाले प्रमादी आदमी नहीं थे। कुण्डलपुर की राज्य--व्यवस्था ठीक करके अपनी सास, पत्नी, मन्त्री, सेनापति, और अधिकारियों को अपना २ अधिकार संभला कर, सबको ठीक ढंग से समझा बुझा कर, देश में अपनी आज्ञा-प्रचारित कर, पुनः कुण्डलपुरमें लौट आने की प्रतिज्ञा करके सायंकाल के समय अपने कार्पटिक-बाबाजी के-वेश को धारण कर वहां से चल दिये। चलते २ महेन्द्र पुर पहुँच गये। रात हो जाने के कारण नगर के बाहर ही किसी शून्य-देव-मंदिर में निर्भय रूप से सो गये।

आधी रात्री का समय था। लोहखुर नाम का एक चोर अवस्वापिनी आदि विद्याओं के योग से नगर में चोरी करके काफी धन की गठरी उठाकर वहां आया उसनें सोये हुए कुमार को देखा उन्हें उठाकर बोला-अरे बाबा! तू मेरा बोझा उठाकर मेरे साथ चल। मैं तुझे निहाल कर दूंगा। चोरकी अजीब बात को सुनकर,

कुतूहल-प्रिय कुमार ने उसकी बात मंजूर करली। उसके कथनानुसार उस बोझे को उठाकर उसके साथ २ चला। चलते २ दोनों एक पहाड़ की बड़ी भारी खोह के अन्दर घुसे, और थोडी ही दूर जाकर एक भोंयरे में उतर गये।

उस भूमि-गृह में दीपक जगमगा रहे थे। स्थान २ पर रत्न जटित पलंग, कुर्सियां, आराम-कुर्सियां और चौकियां पडी थी। जगह २ झूले पडे हुए थे। भिन्न २ प्रकार के खेलों के सामान तथा अनेक तरह के मनोरंजन के साधन वहाँ पर विद्यमान थे। ढेर-के ढेर-रत्न वहाँ पर पड़े हुए थे। मनमोहक वस्तुओं से स्थान सुसज्जित हो रहा था। जिसके आगे राजमहल की शोभा भी फीकी लग रही थी जिसे देख देख कर कुमार चकित हो रहा था। एक स्थान पर रुक कर चोर ने भार को नीचे उतारने का आदेश दिया। कुमार ने बोझा अपने सर से उतार कर रख दिया, और वहीं बैठ कर विश्राम करने लगा।

कुमार वहाँ आराम कर ही रहा था कि एक सुन्दर रमणी वहाँ आई और चौर को प्रणाम किया। यह देख कर कुमार बहुत ही विस्मित हुआ।

चोर ने कहा-" पुत्रि! तुम इस मेहमान का आदर सत्कार करो। यह सुनकर वह रमणी कुमार को

एक दूसरे कमरे में ले गई और बोली स्वामिन्! आइये आप स्नान कीजियें। भोजन कीजियें और इस बिछे हुए पलंग पर आराम लीजियें। अन्य स्त्रियोचित सेवा के लिये मैं आप की दासी तैयार हूं। आप हमारे यहां पधारे हैं। हमारा अहोभाग्य है। आप के दर्शन मात्र से मेरा मन आप के आधीन होगया है।

उस रमणी की इस प्रकार की मीठी और चिकनी चुपड़ी बातों को सुन कर कुमार को शक होगया कि यहां कुछ दाल में काला है। अतः मुझे बड़ी सावधानी से रहना चाहिये। थोड़ी ही देर में कुमार ने सब बातें विचार ली। क्या करना चाहिये इस का भी निर्धार कर लिया। एकान्त मौका पाकर कुमार ने उस रमणी को पास पड़ी एक रेशम की रस्सी से बांध दिया, और उस का चुट्टा पकड़ कर क्रोधका अभिनय करते हुए पूछा कि बता तू कौन है? यह आदमी कौन है? तुम्हारा क्या व्यवसाय है। सच सच बता दे। अन्यथा आज तेरा कुशल नहीं है।

कुमार की इस डांटडपट से भयभीत हुई उस रमणी ने कांपते २ कहना शरु किया अरे बाबा! यह आदमी लोहखुर नाम का चौर है। यह मेरा बाप है। मैं इस

की बेटी हूं। चोरी का हमारा धंधा है। हमारे यहां आये आदमी को मैं अपनी चतुराई से इस गड्ढे में ढकेल कर जान ले लेती हूं। यही मेरा नित्य का काम है।

उसी स्त्री के द्वारा सच सच बता देने पर कुमार ने उसे छोड़ दी। बाद वह चोर के पास पहूंचकर उसे ऐसा धमकाया कि चोर मारे डर के थर थर कांपने लगा। चोर की इस हालत को देख दयालु कुमार ने कहा देखो! अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है अगर तुम अपने जीवन का उद्धार चाहते हो तो इस चौर्य-कर्म को छोड़ दो और कहीं अन्यत्र जाकर बुरे कर्मों के त्याग से शनैः शनैः अच्छे कर्मों को करते हुए संसार में यश के भागी बनो।

कुमार के हितैषी उपदेश को सुन कर चोर को चौर्य वृत्ति से घृणा होगई और अपनी पुत्री को लेकर वह कहीं अन्यत्र चला गया। चोर के चले जाने पर कुमार ने उस खोह के मुख-द्वार पर एक बड़ा भारी शिला खण्ड रख दिया। उसमें जाने आने का रास्ता ही रोक दिया।

उस रात्री में कुमार श्रीचन्द्र किसी पेड़ के नीचे पहूंच कर सो गया। सुख से नींद ली। बड़े सवेरे उठ गया,

और प्रातः कालीन नित्य-कर्मों से निवृत्त हो श्री अरिहंत भगवान को नमस्कार करके अच्छे लग्न में श्रीमहेन्द्रपुर नगर में प्रविष्ट हो गया।

नगर–लीला देखते हुए कुमार किसी सेठ की दुकान पर जाकर खड़ा ही था कि एक ढिंढोरे की आवाज सुनाई दी। उसने सेठ से पूछा—"सेठजी! यह क्या मामला है?" तब सेठ ने कुमार को सारी कथा कह सुनाई, और कहा कि इस तरह ढिंढोरा पीटते २ लग भग छह महीने हो गये हैं।

इतने में ढिंढोरा पीटने वालों ने कहा "भाइयों! सुनो, जो कोई भी व्यक्ति हमारी राजकन्या के नेत्रों को स्वस्थ कर देगा तो राजाजी उसे अपना आधाराज्य देंगे, और उस राज-कन्या को विवाह देंगे"। यह सुनते ही कुमार ने शीघ्रता से उस पटह को छू लिया।

ढिंढोरा पीटने वालों ने जाकर राजा को इस बात की चना दी। राजाने बड़ी प्रसन्नता से उस कार्पटिकवेष-धारी कुमार को छत्र-चामर और हाथी आदि भेज कर बड़ी सजधज और मान मर्यादा साथ बुलाया। कुमार बड़े ठाठ से राज-सभा में पहूँचा। दरबार में पहूँच कर राजा को "विजयी भव—यशस्वी भव"—का आशीर्वाद

देया। बाद में राजा द्वारा दिये गये आसन पर बड़ी म्रता के साथ बैठ गया।

राजा द्वारा परिचय पूछे जाने पर कुमार ने कहा महाराज ! कुशस्थल का रहने वाला एक नेत्र-वैद्य हूँ। आज आप के दर्शन से मैं अपने आपको कृतार्थ मानता हूँ।

राजाने कहा-हे महाभाग ! आज तुम मेरे और कन्या के अहो भाग्य से दैव योग से इधर आ निकले हो अतः हमारे उस कार्य को पूरा करो। उसके बदले में जो कुछ देने का है, उसे ग्रहण करो।

राजा के ऐसा कहने पर कुमार ने कहा-राजन्। आप का फरमाना ठीक है। गुरु कृपासे मुझे मंत्र और औषधि आदि का अच्छा अभ्यास है। आप उस कन्या को दिखाइयें जिससे मैं उनका योग्य उपचार करू।

राजा के आदेश से कन्या को वहां लाइ गई। उसे देख कर कुमार ने बडा दुःख प्रगट किया कि अरे ! कितना सुन्दर रूप और कैसा बुरा यह अन्धापन है। उसने उस सभा में ही पानी के योग से कुछ जमीन को पवित्र बनाया। उस स्थान के चारों ओर कनात लगवादी आंखों की चिकित्सा करने की इच्छा से कुमार ने कन्या

को पर्दे के भीतर बिठा दी। स्नान आदि कर के उसने वहां सारी पूजा की सामग्री जमादी। उस कन्या की आंखों पर औषधि-रस का लेप कर दिया। कुछ समय तक पूजा धूप-दीप आदि कर के नवकार मंत्र का जाप आदि किया।

कुछ समय बीतने पर औषधि रस के प्रभाव से राजकुमारी की आंखें कमल के समान खिल गईं और उसने इंद्रकेसमान तेजस्वी कुमार को विधि पूर्वक देव-पूजा करते हुए देखा।

कुमार ने भी अरिहंत भगवान को नमस्कार करती हुई उस कुमारी से पूछा-"राज कुमारी! क्या तुझे अब ठीक दिखाई देता है? जरा मेरी अंगूठी पर लिखे हुए नाम अक्षरों को तो पढ लेना।

कुमार के ऐसा कहने पर उस राजकन्या ने अंगूठी पर लिखे हुए 'श्रीचन्द्रकुमार' इस नाम को पढ़ा। पढ़कर वह बहुत प्रसन्न हुई, और प्रशंसा करने लगी। हे नाथ! हे प्राणजीवन! पहले भी पिताने मुझे आपको दी थी और अब आज भी मैं आपको वरण कर रही हूँ। अंगूठी से आपके नाम का और आश्चर्यकारी गुणों से आपके कुल का मुझे पता लग गया है।

इसके अनन्तर वह कुमार अपने दिव्य वेष को छिपा कर फिर उन्ही गैरिक वस्त्रों को धारण करके एवं मुंह और बालों पर भस्म रमाये राजा के पास गया। सुलो-चना भी उसके पीछे पीछे वहां आई। यथार्थ नाम वाली सुलोचना को देखकर राजा ने प्रसन्न होकर उसको अपनी गोदी में उठा लिया।

यह देख सभी अचरज़ में डूब गये और राजा तो इतना प्रसन्न हुआ कि मानो उसने कोई खोई हुई निधि पाई हो। कन्या के स्वस्थ होने का उत्सव पुत्र जन्म के उत्सव से भी बढ़कर मनाया गया। बादमें राजा ने उस सुलोचना को अन्तःपुर में भेज दिया और उसको दृष्टि युक्त देखकर सभी रानियें प्रसन्न हुई।

इधर राजा ने उस कार्पटिक को अपने महल में बड़े आदर से ठहराया और रसोई आदि के लिये बहुत से नौकर रख छोड़े। तत्पश्चात् राजा ने राजसभा में मंत्रियों-के साथ विचार विमर्श किया कि यह अज्ञात-कुल-शील व्यक्ति है। इसको कन्या देनी है, सो क्या करना चाहिये? सलाह में कुल पूछने की ठहरी, और राजा की आज्ञा से एक मंत्री ने उसका कुल पूछ ही लिया।

कुमार ने हंसकर उत्तर दिया, "आपके विचार ठीक ही हैं कि आप पानी पीकर घर पूछते हो तो भी हे-

मंत्रिवर्य ! सुनो, कुशस्थलपुर में लक्ष्मीदत्त नाम का एक सेठ रहता है। मैं उसीका व्यसनी दुराग्रही और जुआरी पुत्र हूं। मैं पिता के छांने घर से धन चुराकर इधर उधर व्यय कर देता था। इससे पिता ने रुष्ट होकर मुझे घर से निकाल दिया। घर से निकाले जाने पर पर मेरा आचरण और चरित्र और भी ज्यादा भ्रष्ट होगया है। जुआ आदि दुर्व्यसनों में फंस जाने पर प्राणी को दुःख के सिवाय और मिल ही क्या सकता है ?

मैं इधर उधर दुःखी अवस्था में भटक ही रहा था कि मेरी अचानक एक सिद्ध पुरुष से भेंट हो गई, मैं उसकी सेवा में बहुत दिनों तक रहा। उसने मेरी सेवा से प्रसन्न होकर मुझे यह मंत्र दिया। मैं उस सिद्ध पुरुष को छोड़ कर इधर चला आया हूँ क्योंकि जुआ खेलने की उत्कट इच्छा ने मुझे वहां टिकने नहीं दिया। यह विल्कुल स्पष्ट है कि बिनाधन के 'जुआ' हो नहीं सकता अतः मैंने धन प्राप्ति की ही आशा से इस ढिंढोरे को स्पर्श किया था।

उसके मुख से इस प्रकार परिचय पाकर मंत्री ने राजा को उसका सारा परिचय कह सुनाया। सुनकर राजा मंत्रियों समेत बड़ा दुःखी हुआ। वह कहने लगा "मैं ऐसे जुआरी को अपनी ऐसी सुशील कन्या कैसे दे

सकता हूं ? अगर दे भी दूं तो देश-परदेश में मेरा क्या महत्व रहेगा ? यश के बदले में मुझे अपयश का भागी बनना पड़ेगा। दूसरी बात यह है, कि अगर मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार इसको कन्या नहीं देता हूँ, तो मेरा वचन भंग होता है, और वचन-भंग होना मुझ सरीखों-के लिये बड़े कलंक की बात है। अतः प्राणों की राज्य की और धन की वचन-रक्षा के समक्ष कोई कीमत नहीं है ?" इस प्रकार अपने मन में संकल्प-विकल्प करता हुआ राजा अन्तःपुर में जा पहुँचा। वहां पर खूब धूमधाम से नाच गान के साथ उत्सव मनाया जा रहा था। राजा के मुख को मलिन देख सुलोचना ने अपने पिता से पूछा, "पिताजी ! आज खुशी के अवसर पर आपके चेहरे पर श्यामता क्यों झलक रही है ?"

यह सुन राजा ने उसका वृत्तान्त रानी को आदि से अन्त तक कह सुनाया और बोला, "मेरे उदास होने का यही कारण है। इसी बीच में पुत्री बोल उठी "पिताजी ! यह आप व्यर्थ का सोच कर रहे हैं। वह पुरुष जिसके विषय में आप ऐसा वैसा कह रहे हैं, वह वैसा नहीं है। वह बड़ा ही विचित्र, गुणशाली और शूरवीर है। जो कुछ मंत्रियों को कहा गया है, वह तो केवल उनकी वाणी-का वैचित्र्य है।" इसके बाद उस राजकुमारी ने जो जो

बातें परदे के भीतर देखी थीं, उन सबको अपने पिता से कह सुनाई।

इसके पश्चात् सुलोचना ने पिता से कहा, "पिताजी! यही श्रीचन्द्र मेरा पति होगा।

अंगूठी से मुझे इनका नाम ज्ञात हुआ है, अपने पिता का नाम और निवास स्थान इनने अपने मुँह से साफ साफ बतला दिया है। अब इसके आगे आप क्या जानना चाहते हैं?

पुत्री के इस प्रकार के आश्वासन भरे वचनों को सुनकर राजा के जीमें जी आया, और उसने प्रसन्न होकर ज्योतिषी से लग्न निकलवाया। इसके बाद उसने श्रीचन्द्र को लिवालाने के लिये मंत्रियों को भेजा।

मंत्रियों ने शीघ्र ही लौटकर राजा से निवेदन किया कि महाराज! न मालूम श्रीचन्द्र कहां चला गया। उसे इधर उधर बहुत देखा भाला मगर वह कहीं दिखाई न दिया।

यह सुन राजा बहुत व्याकुल हुआ, और उसने अपने सिपाहियों को उसे खोजने के लिये भेजा। उन्होंने राजमहल, नगर और बाहरी उद्यान आदि सभी ढूंढ मारे,

परन्तु उसका कहीं पता न चला। जब यह बात सुलोचना को मालूम हुई तो वह लड़खड़ा कर भूमि पर गिर पड़ी, और बेहोश हो गई। माता-पिता और दास दासियां द्वारा तरह तरह के उपचार किये जाने पर उसे कुछ होश हुआ। वह रो रोकर पृथ्वी पर नीर विहीन मीन की तरह छटपटा ने लगी। वह अपने अर्तनाद से दूसरों को भी रुलाने लगी। सारी रात्री उसकी इसी प्रकार बीती। उसने उसके वियोग में खाना--पीना और बोलना सभी छोड़ दिया। यह देख सभी ने उसका अनुसरण किया राज-परिवार की ऐसी अवस्था देख मंत्री किं-कर्तव्य-मूढ हो गये।

राजा ने पुरवासियों को बुलाकर पूछा कि, क्या कोई यहां पर कुशस्थल से आया हुआ व्यक्ति है ?

यह सुनकर उपस्थित जनता में से बहुतेरे व्यक्तियों ने एक साथ उत्तर दिया, "राजन् कुशस्थल के यहां पर अनेकों व्यक्ति हैं। कहियें आप किसे पूछते हैं ?"

राजा द्वारा उसके नाम और निवास स्थान आदि के बतलाने पर एक सेठ ने कहा, "महाराज ! कुशस्थल में लक्ष्मीदत्त का पुत्र जो श्रीचन्द्र है, वह मेरे स्वामी का जमाई है। जैसा अंगूठी का निशान आप बताते हैं

वैसी अंगूठी उसीके हाथ में शोभायमान है। कुशस्थल-निवासी धन नामक सेठ का मैं व्यापारी-सेवक हूँ। वह कुमार धन नामक सेठ की धनवती नामक पुत्री का पति है।

उस व्यापारी-सेवक द्वारा वतलाये हुए चिह्नों से कुमारी ने यह निश्चय करलिया कि वही मेरा पति श्रीचन्द्र है।

इसके पश्चात् राजा ने राजकुमारी को समझा बुझा कर भोजन करवाया और कहा कि पुत्री! अब किसी प्रकार का शोक मत करो तुम्हारे पति का पता लग गया है। हम शीघ्र ही राजाधिराज प्रतापसिंह के पास हमारे नगर के माननीय व्यापारियों और सुयोग्य मंत्रियों को भेज रहे हैं, जो जाकर इस विषय में उनसे प्रार्थना करके श्रीचन्द्र को यहां विवाह के लिये राजा के आदेश से लौटा लावेंगे। तुम किसी प्रकार से दुःखी मत हो।

इधर मंत्रियों के नाम धाम आदि पूछ कर चले जाने के बाद कुमार शौचादि कार्य से निपट ने का बहाना कर वहां से चल दिया। कुछ दूर आगे जाकर उसने अपने कार्पटिक वेष को किसी दूसरे को दे दिया, और स्वयं ब्रह्मचारी का वेष बनाकर क्रम से उस देश का त्याग करके एक बड़े भारी जंगल में जा पहुँचा।

२७

जल जीवन-रस रूप है, जल बिन नीरस जान।
नीरस जन संसार में, मानों मृतक-समान ॥

मानव जीवन एक जलका बुदबुदा मात्र है। जल को पण्डितों ने जीवन भी कहा है, रस भी कहा हे। रसमय जीवन ही जीवन है, अगर रस न रहा तो, जीवन जीवन नहीं रहता। जिसके जीवन में जीवन नहीं है तो उसका जिन्दा रहना भी भूमि को भारी करने के सिवाय कुछ नहीं है। इसी लिये ज्ञानी पुरुष जीवन में रसधारा को बहाते रहते हैं। कुमार श्रीचन्द्र पूर्ण रसिक-जीवनवाला था। पूर्व जन्म की पुण्य तपश्चर्या से वर्तमान जीवन में वह अलौकिक रसकी धारा बहाता हुआ, अपना और दूसरों का समय आनंद से बीताता था।

महेन्द्रपुर की राजकुमारी की आंखें खोल कर, उस में रस पैदा करके श्रीचन्द्र ने आगे का रास्ता लिया। चलते हुए किसी एक जंगल में वह पहूँच गया। पुण्य-वान्-पुरुषों के लिये जंगल में भी मंगल हो जाता है, पुण्य-लीला करता हुआ कुमार श्रीचन्द्र जंगल में एक सुन्दर सरोवर देखता है।

सरोवर में मोती के समान निर्मल-पानी पर कमल खिल रहे थे। चकवे, सारस, और हंस उसमें कूज रहे थे। किनारे पर हरे भरे वृक्षों के उन्नत शिखरों पर मयूरों के नाच हो रहे थे। इस दृश्य को देखकर कुमार की इच्छा हुई कि इन पक्षियों के बीच जाकर इस सरोवर मे जलक्रीडा करे। उसने कपडे उतारे, और स्वयं पानी में उतर गया। वह जल क्रीडा में इतना लीन होगया कि उन जलचर पक्षियों के बीच अपना अस्तित्व भी भूल गया। उसने खूब ही तैराकी की और खूब ही गोते लगाए, तथा खूब छक कर नहाया। जब जलक्रीडा से उसका जी भर गया, तो वह बाहर निकला, कपडे पहने, और सरोवर की शोभा को निरखता हुआ उसके किनारे किनारे चला।

चलते चलते उसे एक उद्यान सा दिखाई पड़ा। वहां पर उसने एक ओर तो आश्रम, दूसरी ओर हाथी-

घोड़े, और तीसरी तरफ कई मनुष्यों को और चित्र विचित्र वेषधारिणी स्त्रियों को देखकर, विचार किया—न तो ये कार्पटिक मालुम पडते हैं। न कोई योगी और न ही तपस्वी। तो फिर ये कौन हैं ? उफ् ! इस सकल्प—विकल्प से क्या फायदा ? इसका पता वहां जाकर ही क्यों न लगा लू ?.

इतना सोचने के पश्चात् वह उसी उद्यान के समान आश्रवन में जा घुसा। वहां पर उसने एक अद्भुत कान्तिमान् तापस कुमार को देखा, जो कि चन्द्रमा के समान कान्तिवाला, वल्कल के वस्त्र पहने हुए, पैरों में मोरपंख की चट्टी पहने हुए, पेड की शाखा में बंधेहुए झूले पर झूल रहा था। वह तापस कुमार सोने के आभरणों से अलंकृत था। उसके अङ्ग भी कोमल प्रतीत होते थे। उसके पास ही किसी तापस कुमारी को भी इधर उधर आते जाते देख कुमार वडा ही विस्मित हुआ।

कुमार कुछ आगे वढा तो उस तापस कुमार की दृष्टि कुमार पर पडी। कुमार के रूप से आकर्षित होकर उसने पास खडी हुई बालिका से कहा—सखि ! यह आगन्तुक हमारा अतिथि है अतः फल-फूलों से इनका सत्कार करो।

आज्ञा पाते ही उस सखी ने आदर पूर्वक कहा—हे ब्रह्मचारी! आओ। इस पेड की सघन छाया में विश्राम करो। आपको आगे कहां जाना है? कृपा करके हमारा आतिथ्य ग्रहण करो।

यह सुनकर कुमार राजादनी खिरनी–रायण के वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गया। सखी ने खूब फल-फूल कुमार को लाकर दिये और कुमार ने बड़ी प्रसन्नता से उन स्वादिष्ट फलों को खाया।

कुमार उनको उनका परिचय पूछने ही वाला था कि एक अन्य रमणी वहां पर गाती हुई आई :—

चन्दकला रायसुआ, सा सव्व कलाणभायणं जयइ।
सिरिचंद वरो जीए, सयमेव परिक्खिऊण कओ॥

यह सुनकर कुमार को बडा अचंभा हुआ और वह विचार करने लगा—कहां तो चन्द्रकला है और कहां ये रहते हैं?। कहां तो वह स्थान, और कहां इतनी दूर यह स्थान? इन सब बातों को ये कैसे जानती हैं।

इस प्रकार वह विचार कर ही रहा था, कि एक बुढिया निर्मल वस्त्र धारण किए हुए वहां आ पहुँची। वह अपनी पोशाक से विधवा जान पडती थी। उसने

आकर उस नरवेशधारी तपस्वी कुमार को नारी की पोशाक प्रदान की।

छाया में सुखपूर्वक बैठे हुए उस वटु कुमार को देखकर उस बुढिया ने पूछा—भाई! तुम कहां से आये हो? मैं कुशस्थलपुर से आरहा हूँ। वटु ने उत्तर दिया। यह बात सुनकर सब बडी प्रसन्न हुई, और उन्होंने यह बात जाकर सबको कह दी जिससे वे सभी वहां आकर कुमार को घेर कर बैठ गई और पूछने लगी—

हे भाई! यह तो बताओ कि क्या वहां चंद्रकला आई है। उसका विवाह किसके साथ हुआ है? बटुक ने उत्तर दिया:—आप इस बात को सत्य समझें कि लक्ष्मीदत्त सेठ का पुत्र चन्द्रकला को व्याहकर कुशस्थलपुर में लाया है।

इस प्रकार उत्तर पाकर सबने अपनी स्वामिनी से कहा—हे स्वामिनी! सुनो। यह बात कभी मिथ्या नहीं हो सकती।

यह देख कर कुमार ने निश्चय कर लिया कि यही स्त्री इन सब में प्रधान है अतः उसने उसे नमस्कार कर विनय पूर्वक पूछा—हे माताजी! आपका यहां कैसे आग-

मन हुआ। तापस वेषधारिणी ये दोनों कौन हैं ? और ये अवशिष्ट बालाएं भी कौन हैं ? मैं सब बातों को जानने के लिए उत्सुक हूँ।

उस वृद्धा ने जवाब दिया—हे पुत्र ! सुनो तुम्हारे पूछे अनुसार विस्तार पूर्वक तुम्हें हमारे यहां आने की राम कहानी सुनाती हूं। ध्यान पूर्वक सुनो:—

वसन्तपुर में वीरसेन नाम का राजा राज्य करता था। उसके वीरमती और वीरप्रभा नामकी दो रानीयां थीं। उनमें से प्रथम मैं मंगु—नरेश की कन्या वीरमती हूं। मेरे माता पिता के दो कन्याएं हुई। उनमें जयश्री बडी, तथा मैं छोटी हूँ। पिताजी मुझे विजयवती कहकर पुकारते थे।

मेरी बडी बहिन जयश्री का विवाह महाराज प्रताप-सिंह के साथ हुआ। उसके जय कुमार-आदि चार पुत्र हुए। वसन्तपुर के राजा का प्रधान मंत्री सदामति मेरा चाचा है।

इधर वसन्तपुर नरेश की दूसरी रानी वीरप्रभा के नरवर्मा नामका एक पुत्र हुआ। वह बडा ही बलवान् नीतिज्ञ और शस्त्रास्त्र विद्या में निपुण है।

कुछ समय पश्चात् मेरे भी चन्द्र की कान्ति के समान एक कन्या हुई जिसका नाम बडे प्यार से मैंने चन्द्रलेखा रखा, यह जो तुम्हारे सामने स्थित है, यह वही मेरी कन्या चन्द्रलेखा है, और-दूसरी ये सब इसकी समवयस्क सखियां हैं।

चन्द्रलेखा के बाद मेरे एक पुत्र भी हुआ जिसका नाम वीरवर्मा रखा, जो इस समय पांच वर्ष का है और यह हमारे साथ है।

एक समय राजा ने अपनी आत्मा को कालज्वर से ग्रसित देख कर अपने उत्तराधिकारी वीरवर्मा राजकुमार को अपने विश्वास पात्र मंत्री सदामति को सौंप कर कहा कि–मेरा राज्य इसी होनहार राजकुमार को देना अन्य को नहीं। यही मेरा अन्तिम आदेश है। यह कहकर राजा स्वर्ग सिधार गये।

राजा की मृत्युके पश्चात् बलगर्वित नरवर्मा ने अन्याय से हमारा राज्य छीन लिया। हम सब को वहां से निकाल दिया। तब हम सब मेरे पिता के नगर की तरफ रवाना हुए। मार्ग में एक बहुत बडा नगर आया। नगर के बाहर हम लोग ठहरे थे। वहां पर हमने सुना कि यहां पर एक बडा शकुनज्ञ आया हुआ है यह सुन मन्त्री

सदामति नगर में गये, और मानपूर्वक उसे बुलाकर मेरे पास लाये।

मैंने चन्द्रलेखा को उसकी गोद में बिठाकर उसे पूछा हे भाई ! जरा यह तो बताओ कि इस कन्या का पति कौन होगा, तथा वह कब और-कहां प्राप्त होगा ? ।

कुछ देर विचार कर के उसने कहा—बहिन ! सुनो। महाराज प्रतापसिंह का पुत्र चन्द्रकला नामकी राजकुमारी के साथ विवाह करलेने के पश्चात् इसका पति बनेगा। इस बात में किसी तरह का सन्देह मत करो। आप सब लोग खदिर वन में चले जाओ। आपको वह व्यक्ति वहीं मिलेगा। वहां पर राजादनी-वृक्ष के नीचे आकर बैठते ही वह वृक्ष दूध बरसाने लगेगा। इससे आप लोग चन्द्रलेखा के भावी पति को सहज में ही पहचान पावेंगे।

उसके द्वारा दिए श्लोक पत्र को और उसके वचनों को स्वीकार, करके तथा यथायोग्य उसका सत्कार करके हम लोग अपने परिकर के साथ इस खदिर वन में चले आये हैं। यहां आकर हमने दो मनुष्यों को योगी का वेश पहनाकर कन्या के वर की खोज में कुशस्थलपुर भेजा था। वे वहां जाकर यहां पर वापस लौट आये हैं। उन्हों-

ने वास्तविक बात का पता लगा लिया है, और तुम्हारे वचन भी उस बात से मेल खाते हैं।

"सेठ का पुत्र श्रीचन्द्रही उस चन्द्रकला का पति बना है न कि निमित्तिये के कथनानुसार महाराज प्रताप-सिंह का पुत्र श्रीचन्द्र।

यह मेरी पुत्री चन्द्रलेखा यहां पर अपनी स्वेच्छा से कभी अपने वेष में और कभी पुरुष वेष में, नाना प्रकार के खेल खेलती हुई अपनी प्यारी सखियों के साथ क्रीडा करती है। अनेकों प्रकार के नृत्य करती है, और फूलों-के आभरणों से अपने को सजाती है। यह हमारी स्थिति है।

इस प्रकार की बातें सुनने पर कुमार ने सोचा कि-यहां पर ज्यादा देर तक ठहरना उचित नहीं। अतः वह रवाना होने के लिए ज्योंही उठा त्यों ही अचानक राजादनी (खिरणी-रायण के) वृक्ष ने उस पर बहुत सा दूध बरसाया। वह दृश्य ऐसा मालुम होता था मानो बहुत दिनों से बिछुड़े हुए पुत्र को गोदी में पाकर माता, अपने हर्ष के आंसुओं से उसे नहला रही हो। या दूध पिला रही हो।

यह घटना देखकर सभी साश्चर्य प्रसन्न हुए और एक साथ बोल उठे-जिस वर की खोज में हम इतने दिनों-

से परेशान थे वह वर आज अपने आप अतर्कित भाव से ही मिल गया ! मिल गया !! मिल गया !!!

यह बात सुनते ही चन्द्रलेखा ने अपना सर लज्जा झुका लिया, और माता की आज्ञा पाकर शीघ्र ही कुमार के गले में वरमाला डाल दी। उस समय पत्तों ने हिल कर, कलियों ने मुस्करा कर, और पेड़ों ने फल-फूलों की वर्षा करके कुमार का स्वागत किया। कन्या-पक्ष वालों ने भी नाना प्रकार से कुमार का खूब आदर सत्कार किया।

उनके द्वारा आग्रह पूर्वक पूछने पर कुमार ने अपना ठीक ठीक परिचय दे दिया तथा मुद्रा को दिखाकर अपना ठीक नाम प्रकट किया। उनके वचनों को सादर मानते हुए कुमार ने राजकुमारी चन्द्रलेखा के साथ पाणिग्रहण करलिया। कर-मोचन के अवसर पर उसे विष को दूर करने वाली कई मणियां तथा अन्य बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएं प्राप्त हुई। तत्पश्चात् वीरमती ने अपने पंचवर्षीय पुत्र को कुमार की गोदी में बिठाकर कहा—हे उदारता और वीरता में अद्वितीय महापुरुष ! इस वीरवर्मा को आप जैसा बना देंगे, वैसा ही यह बन जायगा। अतः आप इसे अपने साथ रखकर मेरी इतनी बात मानने की कृपा करें।

कुमार ने उत्तर में कहा—माता जी ! आप अधीर न
एँ, सब अच्छा ही होगा।

इस प्रकार अपनी सास को आश्वासन देकर कुमार
मंत्री की ओर दृष्टि घुमाई और बोला—"मंत्रिवर्य !
प इन सबको साथ लेकर कुण्डलपुर चले जाइए।
जिये यह पत्र वहां के मन्त्रियों को दे दीजियेगा वहां
आप लोगों को किसी प्रकार की तकलीफ नहीं
गी। वहां आप सुख पूर्वक रहिएगा। इस समय मैं
आगे जाऊंगा नहीं तो मैं भी आपके साथ ही चलता।
प किसी भी प्रकार की चिन्ता न करें। कुछ समय
श्चात् आपका और मेरा मिलाप वहां हो जायगा।" इस
कार सबको सान्त्वना देकर, तथा उन सब से विदा माँग
र कुमार अपने पूर्ववेश को धारण कर वहाँ से रवाना
आ और एक दूसरे देश में जा पहुँचा।

इधर वीरमती अपनी पुत्री और मंत्री आदि परिवार
साथ उस खदिर वन से चन्द्रपुर की ओर चल पड़ी।
लते चलते महेन्द्रपुर में जा पहूंचे। जब यह बात
हां के राजा को मालुम हुई तो उसने वीरमती को
एवं उनके परिवार को अपने यहां आदर के साथ निमं-
त्रित किया। परस्पर एक दूसरे ने परिचय प्राप्त किया।

राजा आदि सब प्रसन्न हुए। महेन्द्रपुर की रानी औ
वीरमती आपस में धर्म की बहनें बन गईं। उसी रो
कुशस्थल से कुण्डलपुर होता हुआ कोई बंदीजन व
आया। उसने कुमार श्रीचन्द्र के लोकोत्तर चरित्र क
गान किया। सुलोचना और चन्द्रलेखा बहुत प्रसन्न हु
मानो प्यासे पपीहे को स्वाति की बूंदें मिल गईं हों
उन्होंने उस बंदी को भारी पारितोषिक देकर आदर
विदा किया।

कुछ दिन ठहरकर सुलोचना और उसकी माता
कुण्डलपुर के लिए वीरमती ने आज्ञा ली और अप
परिवार के साथ कुछ ही दिनों में कुण्डलपुर जा पहुँची



२८

जस जीवन अपजस मरन, सुनो सयाना लोय।
ज्ञानीजन संसार में, दाखें मारग दोय॥

जो मनुष्य यश को रखते हुए जीते हैं उनका जीना जीना है। अपयश के होजाने पर जीना जीना न रहकर मरना हो जाता है। अपने जीवन के बहुमूल्य समय को जो मनुष्य परोपकार में बिताते हैं उन पुरुषों का नाम इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठों पर सुवर्णाक्षरों से लिखा जाता है। यशस्वी पुरुष मरकर के भी अमर हो जाते हैं। ऐसे अमर पुरुषों के जीवन संदेश जनता को अमरता का पाठ पढाते हैं।

हमारा चरित-नायक यशस्वी कुमार श्रीचन्द्र अपने भाग्य की परीक्षा के लिए अपने जीवन से जगत को

आलोकित करता हुआ एक दिन, किसी नगर की बाहरी भूमि को रथों, घोडों, तम्बुओं, सुन्दर वेपधारण किए हुए मनुष्यों और फौजी पोशाक पहने हुए सिपाहियों से व्याप्त देखकर किसी एक पुरुप से पूछा सखे ! यहाँ क्या हो रह है ? उसने उत्तर देते हुए कहा—ब्रह्मचारी ! सुनो यह काम्पिल्य नगर है। यहां के अधिपति महाराज जितशत्रु हैं। उनके प्रीतिमती नाम की महारानी है। उनका कनकरथ नामका कुमार यहाँ पर अपने दोस्तों के साथ राधावेध की नकल करेगा उसी के लिए यह सारा समारोह है।

प्रसिद्ध गायनाचार्य वीणारव ने एक दिन राजसभा में राधावेध की साधना करने वाले किसी श्रीचन्द्र नाम के एक लोकोत्तर पुरुप का चरित्र सुनाया था। जिस प्रकार तिलकपुर में राधावेध सम्पन्न हुआ था, उसी का अनुकरण करते हुए यहाँ नाटक खेला जा रहा है।

आइयें, देखियें यह मण्डप है। ये राजाओं के शिविर हैं। ये राजकुमार हैं। यह स्तम्भ है। यह राधा है। यह तेल का कड़ाह है। नारीवेपधारी यह पुरुप तिलक-मंजरी है। पालकियों में चढी हुई ये राज-कुमारियां हैं। सामने धनुष-बाण रखा है। देखिए !

ध्यान से देखियें, राधावेध साधने के लिए बड़ी २ उमंगों को लेकर राजकुमार स्तम्भ के पास आते हैं। असफल होकर, निराशा और अपमान को अपने हृदय में लेकर ये लौट जाते हैं। देखियें, यह श्रीचन्द्र का वेष बनाकर कुमार कनकरथ आया है। देखियें इसने श्रीचन्द्र की तरह बाण चला दिया है। बाण लगा या नहीं तब भी उस कृत्रिम तिलक-मंजरी ने उसके गले में वर माला डाल दी है। अहा हा हा! कितना सुन्दर नाटक है। ये भाट चारण—"सूरो सिरि चंदो जयउ" कहकर आशीर्वाद के साथ प्रशंसा के गीत गाते हैं। इस प्रकार नाटक-दिखानेवाले पुरुष को कुमार ने प्रसन्न होकर बहुतसा पारितोषिक प्रदान किया।

नाटक देखकर मन ही मन कुमार प्रसन्नता का अनुभव करता हुआ खडा था। उस समय पास में खडी हुई राजकुमारी कनकवती समुद्र के प्रति नदी के समान प्रेम से नाटकीय कुमार श्रीचन्द्र के प्रति उमड़ रही थी। उसने पास खडी अपनी धामाता के सामने लज्जा और संकोच को छोडकर यह बात प्रकट कर दी। अहा! कितना सुन्दर स्वरूप है। महामहिम इस उदार शूरवीर, धीर और गंभीर पुरुष को मैने मेरा जीवन—साथी मान लिया है। आज से यही मेरे पति हैं। वहां खडी मंत्री की कन्या प्रेमवती, सार्थपति की कन्या धनश्री ने और नगर-

सेठ की पुत्री हेमश्री ने भी राजकुमारी कनकवती की बात के साथ उसी प्रकार अपने मनोगत भावों को भी व्यक्त किया और कहा कि—जिस महापुरुष की छाया भी ऐसी मनोहर है तो साक्षात् स्वरूप का तो कहना ही क्या ?

धाय माता ने उन सखियों के विचारों की प्रसंशा की और कहा कि—मैं राजाजी से प्रेरणा करके अपने मंत्रियों को कुशस्थल भेजकर, विवाह के लिए कुमार श्रीचन्द्र को आमंत्रित करवा दूंगी। कुमार ने इन सारे विचारों को सुनकर अपने मन में विचार किया-यदि मैं यहां कुछ देर और ठहरा तो मुझे यहां कोई न कोई अवश्य पहचान लेगा, इसलिए अब यहां से चल देना चाहिए। यह सोचकर वह वहां से आगे को चला। बहुत सा मार्ग तय करने पर उसे दूर से एक और नगरी दिखाई दी। विश्राम की इच्छा से उसने पास ही के एक यक्ष-मंदिर में प्रवेश किया। वहां पहले से ही सिर पर हाथ धरे कोई चिंतातुर व्यक्ति बैठा था। उसे देखकर कुमार ने पूछा "भाई तुम कौन हो इस नगरी का क्या नाम है ? और तुम इतने चिन्तातुर क्यों दिखाई देते हो"।

उसने एक लम्बी सांस लेकर कहा—पथिक ! यह कान्ति नाम की नगरी है। महाराज नरसिंह देव इसके

शासक हैं। सब कलाओं में निपुण, रूपवती, विदुषी प्रियंगुमंजरी नाम की उनके एक पुत्री है। अब आप चिंता का कारण भी सुनलो—

यहां से नैऋत्य कोण में हेमपुर नाम का नगर है। वहां मकरध्वज नामक का राजा राज्य करता है। उसके मदनपाल नाम का एक पुत्र है। वह युवावस्था में एक दिन अपने गवाक्ष में बैठा चौराहे की छटा को निहार रहा था। इतने में उसने एक योगिनी को जाते हुए देखा। उसने उसे अपने पास बुलाकर पूछा माई! कहां से आई हो? और कहां जाती हो कोई आश्चर्य की घटना हो तो सुनाओ।

योगिनीने कहा—मैं कांतिनगरी से आती हूँ। कुशस्थलपुर की तरफ जा रही हूँ। मैं एक अपूर्व दृश्य तुम्हें दिखाती हूं। इसे तुम देखो—ऐसा कह कर उसने किसी स्त्री का नेत्र हारी चित्र दिखलाया।

राजकुमार मदनपाल ने उस चित्र को एकटक देखते हुए योगिनी से उसका परिचय पूछा कि बताओ—यह किसका अद्भुत चित्र है? योगिनी ने कहा कान्तिपुरी के राजा नरसिंह देव की राजकुमारी प्रियंगुमंजरी का यह चित्र है। यह गुणंधर कलाचार्य से श्रीचन्द्र कुमार

की तारीफ सुनकर उस पर आसक्त हो गई है । उसीके आदेश से श्रीचन्द्र का चित्र लाने को कुशस्थलपुर जा रही हूँ ।

मदनपाल ने प्रियंगुमंजरी के चित्र को लेने के लिये भारी कोशीश की, परंतु वह सफल न हो सका, और योगिनी चली गई । मदनपाल कामज्वर से पीडित होकर दुर्बला होने लगा । मित्रों ने उसके पिता से असली हालत कह दी । उनने कान्ति-नरेश से उनकी कन्या की मांगनी की, किन्तु राजा नरसिंह ने उस मांगनी को ठुकरा दी । इस बात को जानकर मदनपाल अत्यधिक पीड़ित हुआ ।

पथिक ! वही मैं मदनपाल हूँ । पुष्प द्वारा आकृष्ट भौंरे की तरह उस अनिंद्य सुन्दरी के रूप से खींचा हुआ मैं यहां आया हूँ ।

यहां आकर मैं राज-माली के मकान में ठहरा । मालिन हमेशा राजकुमारी के पास जाती थी । उसके साथ मैंने प्रियंगुमंजरी के पास संदेशा भेजा कि-हेमपुर का राजकुमार तुम्हारे चित्र को देखकर तुम्हारे मोहपाश में बंधा हुआ यहां आया है । कृपा करके दर्शन दे दो ।

मालिन ने जाकर मेरा संदेशा राजकुमारी से कह सुनाया। मेरे प्रति अनुराग बढाने के लिये कोई उपाय उसने बाकी नहीं छोड़ा। खूब प्रलोभन दिया मगर वह टस से मस न हुई मालिन ने जब उसे यह कहा कि दुनियां में ऐसा चतुर आदमी खोजने पर भी नहीं मिलेगा तब उसने मुस्कराकर बोलने के लिये अपने होंठ खोले।

उसने कहा, "मालिन ! अगर तुझे उसकी दक्षता का इतना गर्व है तो ले देख, मैं अभी उसकी चतुराई का पता लगा लेती हूँ।"

यह कह कर उसने पुष्प-राशि में से लाल कनेर के एक पुष्प को उठालिया, और उसे दोनों कानों में धारण कर उसे देखे बिना ही दूर फैंक दिया। इसके बाद उसने एक कमल उठाया और फिर उसे देखकर अपनी छाती से लगा लिया। फिर उसने मालिन से कहा, "हे मुग्धे ! तू उसके पास जा और मैंने जो कुछ अभी तेरे सामने किया है उसका उत्तर ला। इसके बाद और कुछ पता लगावेंगे।"

मालिन ने घर आकर सारी बातें मुझे कह दी। परन्तु मैं राजकुमारी के भावों को न समझ सका और न उसका उत्तर ही दे सका। क्या करूँ ? कहां जाऊं ?

इस प्रकार उसकी चिन्ता में डूबा, इस यक्षमंदिर में आ बैठा हूँ। क्योंकि मैंने किसी से यह सुन रक्खा है कि राजकुमारी सदैव यहां आया करती है। परन्तु हतभागी होने के कारण मेरा उससे यहां भी मिलाप नहीं होता कारण कि जब वह यहां पर दर्शनार्थ आती है तब उसके साथ की प्रतिहारिणियें मुझे ठोक पीटकर मन्दिर से बाहिर निकाल देती हैं। हे भाई! यह मैं अपना दुखड़ा किसके आगे रोऊँ? तुम मुझे बड़े दयालु और परोपकारी मालूम देते हो, अतः कृपा कर मुझे कोई उपाय बताओ।

मदनपाल की यह बात सुन कर कुमार को बड़ी दया आई और उसने अपने मनमें विचार किया, अवश्य गुरु गुणंधराचार्य का पहले कभी इधर आना हुआ है। अहो! राजकुमारी की चतुराई का क्या कहना? इसने अपने भाव पुष्पों द्वारा प्रगट किये हैं। लाल-पुष्प के समान मैंने तुमको अपने में रक्त स्वयं कानों द्वारा सुना है मगर मैं तुम्हारी ओर न तो देखती हूँ और न तुम्हें स्थान ही देती हूँ। दूसरा जो कमल पुष्प उठाया उसका भी भाव यह है कि कमल के समान शुभ्र और सुगन्धित किसी व्यक्ति को जो स्वयं मुझ से विरक्त है परन्तु जिसे मैं प्राणपण से चाहती हूँ और जिसके गुण मैंने कानों से सुने हैं उसे मैंने अपने हृदय में स्थान दे दिया है। कनेर

के लाल पुष्प जैसे तुम मदनपाल हो, और कमल पुष्प जैसे वह कुमार श्रीचन्द्र हैं। उसने उपरोक्त भाव ऐसे प्रगट किये थे परन्तु अपने को बुद्धिमान् समझने वाला व्यक्ति इतना भी न समझ सका खैर। अब इसे ऐसी सलाह देनी चाहिये जिससे इसके मन को संतोष हो।

फिर कुमार ने उस मदनपाल से कहा, "भाई अब क्या करोगे ? क्या तुम्हारी कभी चार आंखे हुई हैं ?" उसने उत्तर दिया, "पथिक! न तो मैंने उसे कभी देखा न उसने मुझे कभी देखा है। मित्र! तुम्ही बताओ यह मेरी मनोवाञ्छा कब पूर्ण होगी! तुम परोपकारी हो अतः मुझे कोई मार्ग दिखलाओ।

इतने में शंख की ध्वनि सुनाई दी। वे दोनों वहां से उठ कर उपवन में चले गये और मन्दिर की ओर दृष्टि गड़ा कर किसी पेड़ की आड़ में खड़े हो गये। इतने में सखियां समेत राजकुमारी गाजे-बाजे के साथ आई और मन्दिर में प्रविष्ट हुई। वहां पर खूब नृत्य और गान होने लगा। मृदंग, बांसुरियें और वीणाएँ बजने लगी। मन्दिर कुछ ही क्षण में गान-गृहसा प्रतीत होने लगा।

इसी बीच में धूलिधूसर वस्त्र पहिने किसी स्त्री ने शीघ्र ही मन्दिर में प्रवेश किया। उसके प्रवेश करते ही

नाच गान सब बन्द होगया। कुछ ही समय के बाद वहां से हायरे! की आवाज़ के साथ रोने की आवाज सुनाई दी। रोती हुई एक सखी शीघ्रता से मन्दिर के बाहर निकल कर उस उपवन में आई।

उसे देख कुमारने पूछा? हे सुभ्रु! यह आश्चर्य कारी रंग में भंग कैसे हुआ? कृपा कर कहो। मुझे अभी समय नहीं है। सखीने उत्तर दिया। इतने में दूसरी सखी आ-पहुँची और उसने पहली सखी से कहा, "बहन जल्दी जाओ और शीघ्र ही केले के पत्ते ले आओ। राजकुमारी बेहोश पड़ी है।" यह सुन वह शीघ्र ही गई और केले के पत्ते लाकर उसने उसे दे दिये।

बाद में उसने प्रश्नकर्त्ता से कहा, "भद्र! सुनो इस हमारी स्वामिनी ने अपनी सखी को योगिनी के वेष में कुशस्थल भेजा था। कारण कि यह कई दिनों से श्रीचन्द्र पर आसक्त है। इसने अपना प्रेम प्रकट करने के लिये अपना चित्र तैयार करवा कर श्रीचन्द्र के पास भेजा था परन्तु वह दैवयोग से वहां न मिला। यह अभी अभी जो मलिन वेशधारिणी स्त्री मन्दिर में प्रविष्ट हुई है वही कुशस्थल से लौटी है। इसने जो जो हुआ वह सब अभी इसी मन्दिर में राजकुमारी को कह सुनाया है।

उसके निराशा भरे वचनों को सुनकर कुमारी मूर्छित होगई है और उसी को होशमें लाने के लिये यह सारी दौड़धूप हो रही है। उसी के सोच में यह सारा रोना चिल्लाना हो रहा है। यही बात रंग में भंग का कारण हुई है। न जाने अब क्या होगा ? ऐसा कह कर वह अपनी सखी के साथ चली गई।

उन सब के वहाँ से चले जाने के बाद राजकुमारी के साथ विवाह न करने की इच्छावाले कुमार श्रीचन्द्र ने मदन पाल से कहा, "भाई! तुम व्यर्थ ही राज्यसुख और वैभव को छोड़ कर इधर उधर भटक रहे हो। यदि इसके बिना तुम्हें सरता ही न हो तो मेरी सलाह सुनो।"

संसार में धन ही एक ऐसी वस्तु है जिससे सारे मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं बिना इसके सब निष्फल है। यह सुन कर मदनपाल ने कहा, अगर धन हो तो यह उपाय किस रीति से सफल हो सकता है ?

श्रीचन्द्र कुमार उसको लेकर वहां से दूर चला गया। वहां जाकर उसने कहा कि जो बात राजकुमारी की सखी ने कही है उसीके आधार पर हमें यह सारा जाल फैलाना होगा। तुम कुमार श्रीचन्द्र बनो और मैं तुम्हारा सेवक। फिर नगर में चलें और किराये से मकान लेकर

रहें। वहां पर तुम याचकों को विशेषकर के गुप्तदान देना। इससे तुम्हारी प्रसिद्धि अपने आपही हो जायगी। इसके बाद मैं तुम्हारी सहायता के लिये ऐसे ऐसे कार्य करूंगा जिससे राजा को यह बात मालूम हो जायगी कि श्रीचन्द्र चुपके से अपने नगर से यहां आया है। इसके आगे तुम्हारे भाग्य ही प्रमाण हैं, क्योंकि, सबसे बढ़कर भाग्य ही एक ऐसी शक्ति है जो मनुष्य को इस जीवन-संग्राम में सफल और निष्फल बनाती है।

यह सुनकर मदन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उन दोनों ने जैसा विचारा वैसा ही किया। मदन मकान के ऊपरी भाग में बैठा रहता था, और कुमार द्वार पर द्वारपाल के के रूप में बैठा उचित कार्यवाही किया करता था।

श्रीचन्द्र के दान की वाहवाही सारे शहर में फैल चुकी थी। छोटे-बड़े, धनी-निर्धन, सबल-निर्बल सभी की जबान पर उसीका नाम था। शनैः शनैः उसकी यशोराशि शारदीय चन्द्रिका के तरह राजा को भव्य सुधालिप्त राज्य प्रासाद में भी फैल गई। राजा भी अपने नगर में श्रीचन्द्र का आगमन सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपने मंत्रियों को उसके पास भेजकर आने जाने का मार्ग खोल दिया।

कुमार ने मदन को यही उपदेश दिया कि तुम योगी की भांती मौनी बने रहो। बस यही तुम्हारा काम है। अवशिष्ट सभी काम मेरे सिपुर्द हैं। सारे काम द्वार-पाल रूपी कुमार ने अपने उपर लेकर अपने चातुर्य से, सारे नगर को राजा, राजकन्या और मंत्रियों वगैरह सभी को खुश कर दिया।

राजा उसके आचरणों से इतना प्रसन्न हुआ कि वह स्वयं जाकर उसे अपनी कन्या के साथ विवाह करने की प्रार्थना करने लगा परन्तु कुमार रूपधारी मदन उपर से आनाकानी करता रहा। अन्त में बड़े कष्ट से राजा ने उसे अपनी कन्या से विवाह करने के लिये राजी किया।

द्वारपाल ने मंत्रियों से कहा कि अब आप विवाह करने में देर न करो-शीघ्र ही इस काम को पूर्ण करो। राजा ने दूसरे दिन ही गोधूलिक लग्न नियत कर दिया और दो जगहों पर विवाह की सामग्री इकट्ठी करली। श्रीचन्द्र के विवाह के उपलक्ष में पुरवासियों ने प्रसन्न हो कर शीघ्र ही नगरी को अनेकों प्रकार से सजाकर अमर-पुरीसा बना दिया।

मदन खुशी के मारे फूला न समाता था पौफट ने से पहले ही वह उठ कर अपने नित्य के धार्मिक कृत्यों

से निवृत्त हो चुका था। वह अपने हृदय में कई प्रकार की आशाएं और उमंगें लिये अपने महल के झरोखे में बैठा चौराहे और पनघट की शोभा को निहार रहा था। इसी बीच में कुछ पनिहारियों की बातचीत की भनक उसके कानों में पड़ी।

एक सखी ने दूसरी से कहा, सखि! क्यों भागी जारही हो? दूसरी ने उत्तर दिया, क्या तुम्हें यह मालूम नहीं है, कि आज हमारी राजकुमारी का विवाह-दिन है। कुमार श्रीचन्द्र और कुमारी प्रियंगुमंजरी दोनों ने आचार्य गुणंधर से सब प्रकार की शिक्षा पाई है। अतः विवाह के पहले उन दोनों में पद्मिनी आदि स्त्रियों के भेद और लक्षणों के विषय में बातचीत होगी, और इसके पश्चात् उनका पाणिग्रहण होगा। कारण की श्रीचन्द्र उस विषय को भली प्रकार जानता है। अतः आज बड़ाभारी कौतुक होगा। इसीलिये आज जल्दी है। काम काज से निवृत्त होकर फिर राजमहल में जाऊंगी।

मदन इस वार्तालाप को सुनकर बड़ा चिन्तित हुआ और उसने श्रीचन्द्र से यह सारी बात कही, और यह भी कहा कि मित्र! बताओ अब क्या किया जाय?"

श्रीचन्द्र ने उत्तर दिया, "मित्र! मैं स्त्रियों के चारों भेदों को थोड़ा बहुत जानता हूँ अतः तुम शीघ्र

ही उसे लिख कर हृदयंगम कर लो जिससे तुम्हारा यह काम भी पूर्ण हो जायगा ।" मदनपाल ने उत्तर दिया, "मित्र ! अब पढ़ने लिखने का समय नहीं रहा । इधर तो लग्न वेला निकटातिनिकट आरही है और अब इतने संकीर्ण समय में कोई भी बात किस तरह याद की जा सकती है । कहा भी है—

"सदीप्ते भवने तु कूप-खननं, प्रत्युद्यम. कीदृश. ।"
"आग लगे खोदे कुआ, कैसे आग वुझाय ।।"

यद्यपि तुम मुझ से उम्र में छोटे हो लेकिन रूप में समान ही हो, और वस्त्राभूषणों के धारण करने पर और भी अधिक सौन्दर्य को प्राप्त हो जाओगे । अतः मेरी तुमसे यही प्रार्थना है कि तुम मेरा वेष ग्रहण कर लो और तुम्हारा वेष मुझे दे दो और मेरी जगह पर तुम विवाह करके विवाहित राजकन्या को मुझे सौंपदो ।" कुमार ने उत्तर दिया "यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो मुझे यह बात भी स्वीकार है ।"

फिर क्या था ? मदन पालने उसका द्वार पाल का वेष धारण कर लिया, मगर श्रीचन्द्र ने उसके वस्त्र न पहने । उसने तो अपने ही वस्त्र और आभूषणों से अपने को सजाया ।

इधर वहां पर आकर के राज-स्त्रियों ने वैवाहिक विधि के अनुसार उसके घर पर मांगलिक कृत्य किये। इसके बाद वह सुवर्ण और रत्नों के आभूषणों को धारण करके अपने कुण्डलों और नाममुद्रा से शोभायमान हाथी पर सवार हुआ। सिर पर सफेद छत्र लगाया गया। चंवर ढुलने लगे। सुवर्ण और रजत दण्ड लिये छड़ीदार और चौपदार आगे आगे चलने लगे। वन्दीजन स्तुति करते हुए चल रहे थे। बाजे बज रहे थे। नगर के लोग और सैनिकों की पंक्तियां आगे आगे चल रही थी। बड़े महोत्सव के साथ वह नगर में होकर राजमहल में पहुँचा। वहां पर तारक भट्ट ने उसे पहचान लिया और उसकी प्रशंसा में बोल उठा,—

> तइया विवाह समए, धनवइ पमुहाण अट्ठकन्नाणं।
> सिरिचन्दो भिद्धिघरे, जो दिट्ठो सो इमो जयउ॥

यह सुनकर राजा वगैरह ने उसे खूब दान दिया और कुमार को गोदी में लेकर राजा सिंहासन पर बैठ गया। कुमार के रूप, नाम-मुद्रा और कुण्डलों को बारबार देखते हुए राजा ने राजकुमारी को दूसरे सिंहासन पर बिठाकर कोई शास्त्रीय चर्चा छेड़ने की आज्ञा प्रदान की। पाठक उस चर्चा को अगले प्रकरण में ध्यान से सुनें।

———

२६

काव्य-शास्त्र-विनोदेन, कालो गच्छति धीमताम् ।
व्यसनेन च मूर्खाणां, निद्रया कलहेन च ॥

अर्थात्—पण्डित स्त्री—पुरुषों का समय काव्यों की एवं शास्त्रों की चर्चा के विनोद में हसी खुशी से बीतता है, तो मूर्खों का समय जूआ, तास, भांग आदि के व्यसन में, नींद में, या लड़ाई झगड़े में ही बीतता है ।

भोजन के बाद का समय था । सूर्य की गति अपूर्व हो रही थी । घाम से बचने के लिये मकानों में खसखस की टाटियों पर गंगा-गुलाबजल के छिड़काव हो रहे थे । उनसे मीठी तर खुशबू के साथ ठंडी हवा की लहरें निकल २ कर दिल और दिमाग को तर कर रही थीं । कोई अंगड़ाइयां लेते घरों में सोते पड़े थे । कोई पराई

निन्दा वार्ता में लगे हुए गप–सप लगा रहे थे। कोई अपने ही भविष्य की चिन्ता में लीन हो रहे थे। कोई तास, चौपड़, सतरंज के खेलों के साथ जूए के दांव धर कर लक्ष्मी को इधर से उधर कर रहे थे। कोई बीड़ी, भांग आदि के व्यसनों से विपत्तियों का अनुभव करते हुए भी उन्हीं में मजा लूंट रहे थे दुकानदार गाहकों के आने की राह देखते २ समय बीता रहे थे। कई धार्मिक जन सामायिक में, स्वाध्याय में, एवं भगवान के नाम जाप में तन्मय हो रहे थे। कड़े धूप के कारण बाहर निकलने को जी नहीं चाहता था। गृह- स्त्रियां भोजन से निपट कर सीने-पिरोने, नहाने-धोने, एवं सोने-पोने के कामों में लगी हुई अपनी सुघड़ता को दिखा रही थीं।

ऐसे दुपहरी के समय में कांतिपुरी के राजा नरसिंह को राज-सभा में हेमपुर के राजकुमार—बनावटी श्रीचन्द्र- के बदले में चरितनायक कुमार श्रीचन्द्र राजकुमारी प्रियंगुमंजरी के साथ लग्न के दिन अपने प्रौढ पाण्डित्य का प्रदर्शन करा रहे थे। इस अपूर्व प्रसंग को देखने सुनने के लिये राजा ने नागरिक स्त्री–पुरुषों को भी आमंत्रित किये थे। राज-सभा खचाखच भरी हुई थी। सबकी आंखें और कान राजकुमार के रूप और ज्ञान को नंबर दे रहे थे।

पिता की आज्ञा से राजकुमारी प्रियंगुमंजरी ने सभा को साक्षी बनाते हुए कुमार से स्त्रियों के भेद और लक्षण पूछे।

उत्तर में कुमार श्रीचन्द्र ने कहाः—"अयि पण्डिते! राजकन्ये! पद्मिनी, हस्तिनी, चित्रिणी और शंखिनी ऐसे स्त्रियों के चार भेद होते है। एक २ भेद के चार २ उपभेद भी होते हैं। ऐसे कुल सोलह भेद शास्त्रों में बताये गये हैं।

इनके लक्षण गंध से, अंगोपांगों से गति से, दांतों से, नेत्रों से, आदि २ प्रकारों से जाने जाते हैं। उसका स्वरूप संक्षेप में इस प्रकार है—

पहला भेद पद्मिनी का होता है—उसके शरीर से कमल की सी सुगंधी निकलती है, सारा शरीर सुन्दर होता है, उसमें भी मुख की शोभा विशेष होती है। वह हंस की तरह चलती है। उसके मोगरे की कलियों के जैसे सुन्दर सुडौल स्वच्छ दांत होते हैं। माथे में चिकने सलोने श्याम-सुन्दर लम्बे २ बाल होते हैं। मोटे २ उसके नेत्र और स्तन होते हैं। पद्मिनी की नींद आहार, कामवासना, पसीना क्रोध आदि अल्प होते हैं।

दूसरा भेद हस्तिनी का होता है उसके शरीर में हाथी के मद जैसी गंध होती है। हथिनी के जैसी उसकी

फूलती है और रानी बनती है। जो स्त्री हरिणी के समान दृष्टिवाली, कोमल अंगवाली, हरिणी के समान गर्दन और उदर वाली तथा हंसी के समान चाल वाली होती है वह अवश्य रानी होती है। जिस स्त्री के घुंघराले बाल और गोल मुंह तथा दक्षिण की ओर भौंरी वाली नाभि होती है वह बडी ही प्रेम पात्र होती है। जिसकी उंग- लियें बड़ी बड़ी और लम्बे लम्बे केश होते हैं वह भी बड़ी उम्र वाली और धन धान्य से भरपूर होती है। जो स्त्री कृष्ण की तरह श्याम, चम्पक पुष्प के समान गौर वर्णवाली स्निग्ध अंग और वदनवाली होती है वह बड़ी सुखी होती है। जिस स्त्री के हँसने पर ललाट में स्वस्तिक का चिन्ह होता है तो वह हजारों वाहनों सवारियों की स्वामिनी होती है। जिसके बांए पार्श्व में, गले में, अथवा स्तनों पर मस्से, तिल आदि कोई चिन्ह हो तो वह सर्व प्रथम पुत्र पैदा करती है जो स्त्री कम पसीने वाली, थोड़े रोएं वाली, कम आहार और कम निद्रावाली होती है और जिसके शरीर पर रोएं नहीं होते हैं वह उत्तम लक्षणों वाली कही जाती है। जिस स्त्री के जांघों स्तनों और होठों पर रोएं होते हैं वह शीघ्र ही विधवा हो जाती है। जिसकी पीठ में भौंरी होती है वह अपने पति का नाश कर देती है। हृदय में आवर्त (भौंरी)

वाली पतिव्रता और कमर में भौंरी वाली स्त्री स्वैरिणी होती है। जिसकी ललाट, पेट और योनि (गुह्यस्थान) लम्बी होती है वह अपने पति, ससुर और देवर के लिये घातक होती है। मनुष्य को चाहिये कि वह काली जीभवाली, लम्बे होठों वाली, पीली आंखों वाली, घर्घर-आवाज वाली, अत्यन्त गोरी और अत्यन्त काले रंग की इन छः प्रकार की स्त्रियों के साथ विवाह न करे।

जिस स्त्री के विना हंसे भी गालों में गढ्ढे पड़ते हैं ऐसी स्त्री बड़ी व्यभिचारिणी होती है और वह कभी भी अपने पति के घर नहीं ठहरती। जिस स्त्री की कनिष्टिका और अनामिका उंगली यदि पृथ्वी को न छूती हो तो वह अवश्य ही युवावस्था में जारों के साथ रमण करती है इसमें कोई संदेह नहीं है। जिसके जैसा मुख हो वैसा ही गुप्त स्थान हो, जैसी आंखें हो वैसी ही कमर हो, जैसे हाथ हों वैसे ही पैर हों, बाहुओं के जैसी ही जंघाएं हों और जो कौए के समान स्वर वाली कौए के सदृश जांघोंवाली पीठ में रोएं वाली बड़े बड़े दांतवाली हो वह कन्या विवाह के बाद दस महिने में ही पति के मृत्यु का कारण बन जाती है इसमें कोई संदेह नहीं।

सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार विकट अंगुलियों वाली छिदे छिदे पैर वाली, धम धम चलने वाली, ऐसी स्त्री

वैर बसाने वाली होती है। अति दीर्घ, अतिह्रस्व, अति स्थूल, अतिकृश, अति--गौर और अति-कृष्ण, ऐसे छः तरह के भग, दुर्भग कहलाते हैं। कछुए की पीठ के समान उन्नत, हाथी के स्कन्ध समान, कमल के पत्ते के समान, सुसंवृत, अनुष्ण और अम्बर के समान सद्वृत्त, ये छः प्रकार के भग सुभग कहलाते हैं।

अब कुमार विवाह के योग्य और विवाह के अयोग्य स्त्रियों के लक्षण बतलाते हैं।

> पीनोरू पीनगंडा, लघुसमदशना, दक्षिणावर्त-नाभिः
> स्निग्धांगी चारु-सुभ्रुः, पृथुकटिजघना, सुस्वरा चारुकेशी।
> कूर्मपृष्ठा--ह्यनुष्ण—द्विरदसम-पृथु स्कंधभागा सुवृत्ता
> सा कन्या पद्मनेत्रा, सुभग-गुणयुता नित्यमुद्वाह-योग्या॥

अर्थात्— पुष्ट जंघोंवाली, प्रफुल्ल और पुष्ट गालों वाली, छोटे छोटे बराबर दांतों की पंक्तिवाली, दक्षिण की ओर भंवरीयुक्त नाभिवाली, स्निग्ध शरीर वाली, सुन्दर भौंहोंवाली, विशाल-जघन वाली, मधुर-स्वर एवं सुन्दर-केशोंवाली, सुभग-पद्म के समान विकसित नेत्रोंवाली ऐसी प्रधान गुणवती कन्या विवाह के योग्य होती है। विवाह के अयोग्य स्त्रियों के सामुद्रिक-लक्षण ये हैं—

> पिंगाक्षी, पूपगंडा खर—परुषरवा, स्थूलजंघोर्ध्व-केशी
> लम्बौष्ठी, दीर्घवक्त्रा अविरलदशना श्यामताल्वोष्ठजिह्वा।

शुष्कांगी संहितभ्रू विषम-कुचयुगा, नासिकाक्रान्त-वक्त्रा,
सा कन्या वर्जनीया सुख-सुतरहिता भ्रष्टशीलाच नारी ॥

अर्थात्—पीले नेत्रों वाली, पूए के समान छिद्रयुक्त गालों वाली, गधे के समान भारी आवाज वाली । मोटी जाँघों वाली, खडे केशोंवाली, लम्बे होठ और मुँह वाली, छोटे छोटे दाँतों वाली, श्याम रंग के तालु, होठ और जीभवाली, सूखे दुर्बल शरीरवाली, छोटी भौंहें और छोटे बड़े स्तनों वाली, लंबी चौडी-नाक वाली, शीलभ्रष्ट कन्या के साथ विवाह नहीं करना चाहिये ।

शास्त्र तो विवाह के बाद भी अयोग्य स्त्री के त्याग की आज्ञा देता है । जैसेः—

विवाद-शीलासनमर्द-सूरिणीं, परानुकूलां परपाक-पाकिनीम् ।
आक्रोशिनीं शून्यगृहोपदेशिनीं, त्यजस्व भार्यांदश पुत्र-पुत्रिणीम् ॥

अर्थातः—रात दिन कलह और विवाद करने वाली, दूसरों के अनुकूल चलने वाली, दूसरों के यहाँ खाना पकाने वाली, निन्दा करने वाली, सूने घर में सोने वाली स्त्री को चाहे वह दस पुत्र व पुत्रियां वाली ही क्यों न हो उसे बिना विचार किए ही त्याग देना चाहिये ।

इस प्रकार कुमार श्रीचन्द्र ने प्रियंगुमंजरी के प्रश्नों का सुन्दर और स्पष्ट रूप से उत्तर दे उसे संतुष्ट कर

दिया। प्रियंगुमंजरी ने भी प्रसन्न होकर उनके गले में वरमाला डाल दी। विवाह मंडप में कुमार का विधिपूर्वक प्रोंखण (परीक्षण या पोंखना) आदि के होजाने पर मातृका स्थान पर वरवधू को लाया गया। शास्त्रोक्त विधि से करणीय और आवश्यकीय कृत्यों को करके सुन्दर हरे वांसो से बनी, चारों कोनों में चार कलशों वाली चंवरी में अग्नि की साक्षी से फेरे फिराये गये। दहेज में यथायोग्य सोना, चांदी, मणि, रत्न, दास, दासी, हाथी, घोड़े राजा ने बड़े भारी उत्साह के साथ दिये। धूमधाम से सवारी के साथ श्रीचन्द्र और प्रियंगुमंजरी को उनके निवासस्थान पर ले जाया गया। लोगों ने परस्पर इस प्रकार कहा—

रूप, विद्या, कुल, बुद्धि और गुणों में यह कुमार एक ही है वैसे ही यह राजकन्या भी सौंदर्य और शील में एक ही है। इन दोनों का संयोग सुवर्ण के साथ रत्न का, इन्द्र के साथ इन्द्राणी का, रति के साथ कामदेव का रोहिणी के साथ चन्द्र का और रत्नादेवी के साथ सूर्य का जैसा सुन्दर योग हुआ है उन्हीं के समान इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध भी उतना ही प्रशंसनीय हुआ है।

कुमार श्रीचन्द्र विवाह के मांगलिक कृत्यों से निवृत्त होकर घर में प्रवेश करके, सबको यथास्थान स्थापन करके, याचकों को दान देकर के अपने महल में विश्राम के लिए चला गया।

पूज्य पतिदेव के महल में आ जाने पर सुन्दरी प्रियंगुमंजरी भी पति के पास प्रसन्नता के फूल बखेरती हुई पहुँच गई। काव्यालाप और साहित्य चर्चा हो रही थी। परस्पर एक दूसरे के पांडित्य का परिचय हो रहा था। मुखावलोकन और संभाषण के आनन्द का अमृत पिया जा रहा था। लहराती हुई आनन्द की लहरों से वे दोनों किसी अनिर्वचनीय सुख का अनुभव कर रहे थे इतने में मदनपाल ने वहां पहुँच कर आंख के इशारे से श्रीचन्द्र को प्रतिज्ञा की याद दिला दी। श्रीचन्द्र अपनी प्रतिज्ञा को याद करके शौच के बहाने से ज्योंही महल से निकला, प्रियंगुमंजरी भी पानी लेकर उसके पीछे पीछे चली। कुमार ने उसे वहीं रोक दिया। खुद ऊपर से नीचे चला आया। अपने कुण्डल, मुद्रिका एवं प्राचीन वेश को लेकर बोला—मित्र ! मैंने तुम्हारी मनोभिलाषा पूर्ण कर दी है। मैं अन्यत्र जाता हूँ। अब गृह संरक्षण का भार तुम्हारी योग्यता पर निर्भर है।

मदनपाल ने उत्तर दिया—भाई ! तुमने मेरे लिए सब कुछ किया। मैं बदला नहीं चुका सकता। एक प्रकार से आपने मुझे जीवन दान दिया है। अब आप अपनी इच्छानुसार जा सकते हो। प्रत्येक व्यक्ति का कष्ट दूर करने में समर्थ बने रहो, यही मेरा हार्दिक आशीर्वाद है। कुमार श्रीचन्द्र बाहर निकल गया।

मदनपाल ने प्रसन्नता के साथ आँखों में सुरमा लगाया, पान चबाया, कुमार के विवाह का वेश धारण कर, चिरकाल की अभिलाषा पूर्ण करने करने के लिए, भारी उमंग को हृदय में लिये वह महल में पहुँचा। अजीब प्रकार से आते और बैठते हुए निस्तेज मदन को देखकर प्रियंगुमंजरी के मन में संदेह हुआ। वह बिजली की तरह चमक कर बाहर निकल गई। उसने अपनी सखियों से कहा—यह अजनबी पुरुष मेरे महल में कौन घुस आया है। अरी सखियों ! जरा देखो तो सही। वेशभूषा तो मेरे पतिदेव के जैसी ही मालुम होती है परन्तु व्यवहार, आचरण और सूरत में जमीं आसमान का अन्तर हो गया है। सखियों ने कहा—स्वामिनि ! आप पागल तो नहीं हो गई हैं जो इस प्रकार कह रही हैं। भला पति के सिवाय यहाँ अभी दूसरा पुरुष कौन आ सकता है ? उनकी वेशभूषा से ही निर्णय कर लेना चाहिये।

प्रियंगुमंजरी ने सखियों को विश्वास दिलाते हुए कहा—सखियो ! अगर तुम मेरी बातों का विश्वास नहीं करती हो तो तुम स्वयं जाकर उसे पहले की बातचीत और प्रेम भरे वचनों को पूछो, और उसके मुँह से कहलाओ। इस प्रकार उसकी जाँच करके देखो, कि वह वही है या दूसरा।

सखियों ने आज्ञा पाकर वैसा ही किया। उक्ति प्रत्युक्ति के अनन्तर उनको यह निश्चय हो गया कि यह वह श्रीचन्द्र नहीं है। यह तो कोई दूसरा छली पुरुष है। तब वे वहाँ से बाहर चलीं आईं और कहने लगीं—स्वामिनि ! वास्तव में आपका कहना सच है। यह कोई अन्य ही है। हमें द्वारपाल से जाकर पूछना चाहिए। यह कहकर वे द्वारपाल के स्थान पर पहुँची मगर उन्हें वह भी दिखाई न दिया। यह देख सखियों को वहीं छोड़कर राजकुमारी स्वयं अपनी माता के पास चली गई इस प्रकार पुत्री को आई देख माता को कुछ सन्देह हुआ, और उसने निकट से पूछा—बेटी ! कुशल तो है ? तुम ऐसी हालत में ऐसे कैसे चली आई हो ? दुखी हृदय से राजकुमारी ने उत्तर दिया—माता जी ! बड़ा अनर्थ हो गया है। जिनको मैंने जिन्दगी सदा के लिए सौंपी थी वे तो कहीं दिखाई नहीं देते। परन्तु उनकी जगह कोई अन्य ही

व्यक्ति उनका वेश बनाकर आ उपस्थित हुआ है। य
सुनकर माता बड़ी दुखी हुई। माँ ने राजा से सारा हा
कह सुनाया। राजा भी इस दुखदायक अद्भुत घटना क
सुनकर अतीव दुखी हुआ। दूसरे दिन प्रातःकाल उ
पुरुष को बुलाकर बड़े गौर से देखा। राजा को भी निश्च
हो गया, कि यह कोई अन्य व्यक्ति प्रतीत होता है
अपने विश्वास को दृढ करने के लिए राजा ने कुण्डल
और मुद्रिका दिखाने को कहा। वे दोनों चीजें तो श्रीचं
के साथ चली गईं थीं अतः वह न दिखा सका। पद्मिनि
आदि स्त्रियों के सम्बन्ध में पूछा तो उसका जबाब भ
वह न दे सका। राजा ने नाराज होकर गीली बैंतों से पीट
की आज्ञा अपने सिपाहियों को दे दी। बैंत उठते ही वह
थर थर काँपने लगा और मारे डर के उसने राजा को
वृत्तान्त कह सुनाया।

वह कहने लगा—मेरा नाम मदनपाल है। राज-
कुमारी के चित्र को देखकर मोहित होगया। राजकुमारी
के चित्र को पाने के उद्योग में मैं यहां आया। मेरी एक
ब्रह्मचारी बाबा से भेंट हुई। उसने मेरा दुखडा सुनकर
मेरे ही कहने से मेरा वेष बनाकर इस कन्या से विवाह
किया पूर्व प्रतिज्ञानुसार उस परोपकारी ब्रह्मचारी ने मुझे
दहेज समेत इस कन्या को सौंप दी। वह कहीं चला गया

पता नहीं वह अब कहां है। उसी की बुद्धि से मैंने इतना रास्ता पार किया।

इस प्रकार उसके वचन सुन कर राजा ने और पुरवासियों ने कहा—वह अवश्य ब्रह्मचारी बाबा श्रीचन्द्र ही था, वह श्रीचन्द्र ही था इसमें कोई संशय नहीं। उपस्थित तारक भट्ट ने भी कहा।

राजा ने श्रीचन्द्र की इधर उधर खोज करवाई परन्तु वह कहीं न मिला। कुमारी प्रियंगुमंजरी करुण विलाप करने लगी। सुनने वालों की आंखों में भी आंसू छल छला गये। उसके मुंह से निकलनेवाले वियोगजन्य वचन इतने दयनीय थे, जिनको सुनकर पालतू मयूरों ने नृत्य छोड दिया। पालतू हरिणों ने घास खाना छोड दिया। यहां तक कि उसके दुख से सहानुभूति प्रकट करने के लिए उद्यान के पेडों ने भी फूलों के आंसू बरसाए।

पुत्री को इस प्रकार रोती कलपती देखकर पिता के धैर्य का बांध भी टूट गया। राजा नरसिंह देव अपने आप को संभाल न सका। वह धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ा और उसके बाल बिखर गये। सारा राजकीय वेष अस्तव्यस्त होगया। मुश्किल से होश में आने पर

दिल को मजबूत करते हुए पुत्री से कहा—बेटी ! रोओ मत। धैर्य रखो। गुणों की परीक्षा आपत्ति में ही होती है।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी,
आपत काल परखिये चारी॥

तुम अपने पवित्र और सच्चे प्रेम पर श्रद्धा और विश्वास रखो। वह अवश्य ही तुम्हें मिलेगा, लेकिन मिलने पर तुम उसे पहचान तो लोगी ?

पुत्री ने उत्तर दिया—पिताजी ! यहां पर जिसे मैंने देखा है, जिसके साथ सुभाषित गोष्ठी की है, उस पति को मैं भूल नहीं सकती हूँ। उन्हे मैं हर तरह से पहचान सकती हूँ। यह मुद्रिका उन्होंने मुझे प्रेम पूर्वक दी है। अतः जब तक पति का मिलाप न होगा तब तक मैं इस मुद्रिका की पूजा करती रहूँगी।

इधर राजा की आज्ञा से मंत्रियों ने मदनपाल के पास से सारी दहेज सामग्री छीन ली। रानी द्वारा दी हुई अंगूठी उसके पास न मिली तब उन्होंने उससे पूछा—बताओ, वह मुद्रिका कहाँ है ? मदन ने उत्तर दिया—सासू द्वारा दी गई अंगूठी तो वह मेरे पास से स्वयं ले गया। यह सुन राजा सहित सब लोग बड़े हर्षित हुए

और कुमार श्रीचन्द्र के परोपकार, धैर्य, बुद्धि तथा साहस की एवं कन्या के भाग्य की सराहना करने लगे। राजा ने कुछ धन देकर मदनपाल को जिन्दा छोड़ दिया। अपने विश्वासपात्र सेवकों को श्रीचन्द्र की खोज में भेजा। आसपास के सारे प्रान्त छान डाले। कुमार का कहीं अतापता न चला। तब वे निराश होकर लज्जित अवस्था में राजा के सम्मुख उपस्थित हुए। राजा उनकी बात सुनकर दीर्घ और गर्म सांस छोड़ते हुए बोला—किसी अच्छे दिन श्रीचन्द्र की खोज में सुयोग्य मंत्रियों को कुशस्थलपुर भेजूँगा। इस प्रकार सब अपने अपने स्थान पर चले गये और अपने अपने काम में लग गये।



३०

ग्रीष्मऋतु अपने पूर्ण यौवन पर थी। सूर्य अपनी प्रचण्ड किरणों से जगत के प्रत्येक प्राणी को तपा रहा था। संताप से बचने के लिये सभी प्राणी आश्रय ढूंढ रहे थे। विशाल वट-वृक्ष, पशु-पक्षियों की एक खुश-हाल बस्ती बन रहा था। पक्षियों का कलरव बड़ा ही सुहावना लग रहा था। गर्मी की अधिकता से पशु-पक्षी अपने जन्म-जात वैर को भुलाकर एक साथ सूर्य के प्रखर-ताप से अपना बचाव कर रहे थे। जल को छोड़कर संसार की सभी वस्तुएँ नीरस सी प्रतीत हो रही थीं। परोपकारी वृक्ष सब पर छाया किये हुए स्वयं एक तपस्वी के समान तप रहे थे।

ऐसे विकट समय में हमारा चरित्र नायक कुमार श्रीचन्द्र शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित क्षत्रिय वेश को धारण करके एक बड़े भारी जंगल में आ निकला। जोर की प्यास लग रही थी। किसी ऊंचे स्थान पर चढ़कर दूर तक जलाशय को ढूंढने के लिये दृष्टि दौड़ाई। कुछ ही दूर पर एक तालाब देखा, उसके किनारे एक दीप्तिमय तेजःपुंज भी दिखाई दिया। कुमार वहीं जा पहुंचा। अपने अंगोछे से जल को छानकर पीया, और वहां पड़े तेजःपुंज संपन्न चन्द्रहास खड्ग को देखा। कुमार ने उसे उठा लिया और सोचा यह किसी देव-मनुष्य या विद्याधर की तलवार है।

इसका स्वामी कौन है? यह जानने के लिये कुमार ने इधर उधर पता लगाया। पर कोई दिखाई न दिया-तब कुमार ने माना कि-या तो कोई इस तलवार को यहां भूल गया है, या आकाश में चलते २ असावधानी से किसी देव-विद्याधरकी पड़ गई मालूम देती है। तीक्ष्णता की परीक्षा-के लिये पास खड़ी बांस की झाड़ी पर कुमार ने उसे चलाई। नीचे की तरफ मुंह किये लटकता हुआ एक आदमी अर्ध-कटा कुमार को दीख गया। कुमार को बड़ा खेद हुआ। पश्चात्ताप करता हुआ वह कहने लगा—

अहो ! अज्ञान से यह भारी पाप मुझ से हो गया। निरपराधी को मारने से मुझे नरक में भी शायद स्थान मिलना कठिन है। उस अधमरे आदमी के हाथ में तलवार पकड़ाकर कुमार ने कहा—भाई ! भूल में मेरे हाथ से तुम्हारे चोट आ गई है। मैं अपराधी हूँ। क्षमा करके अपनी तलवार ले लो, और जो दण्ड देना चाहो मुझे देदो।

बोलने में असमर्थ उस अधकटे आदमी ने तलवार वापस करते हुए इशारे से जल की मांगनी की। कुमार ने उसे पानी लाकर पिलाया। थोड़ी देर बाद उसके प्राण-पखेरु उड गये। कुमार श्रीचन्द्र इस दुर्घटना से दुःखी हुआ। बिना कुछ खाये पिये ही वह आगे की ओर बढ गया।

रात हो चली थी। चन्द्रहास खड्ग ही उसका एक मात्र संगी था। मार्ग के कष्टों और अनजान में हुई नर-हत्या के दुःख से वह सदा की अपेक्षा आज अधिक थक चुका था। सामने उसे एक सघन वट-वृक्ष दिखाई दिया कुमार ने उसी पर अपना पडाव डाल दिया। ज्यों ही वह आस पास देखता है। डाभ के पुआल से बनी एक शय्या उसे दिखाई दी। उसे देखकर—"अवश्य ही यहां कोई यात्री पहिले सोया होगा"—ऐसा सोचकर कुमारने

उस शय्या को अपने सोने योग्य मानकर उसकी देख-भाल–पडिलेहना की।

शय्या को ऊंची नीची करके देखने पर उसके नीचे लकड़ियों से ढकी एक खोखल कुमार को दिखाई दी। आश्चर्य से लकड़ियों को हटाकर क्षण भर में वह साहस का पुतला-कुमार उसमें उतर गया। वृक्ष के मुल में जा पहुँचा—वहां पर पड़ी हुई एक विशाल पत्थर की शिला को हटा कर नीचे के गड्ढे में हाथ डालकर टटोला तो उसे नीचे उतरने की एक सीढ़ी का पता चला। शनैः शनैः वह अपनी हिम्मत के बल पर नीचे उतरा। उसके आगे एक खोह उसे दिखाई दी। कुमार बात का पक्का, हिम्मत का धनी और आन का सच्चा था। वह कभी निराश होनेवाला जीव न था। भय तो उसे छू तक नहीं गया था। वह बिना हिचकिचाहट के उस खोह में भी जा घुसा। वहां पर उसने भूगर्भ में एक विशाल भवन देखा। रंगविरंगे रत्नों की दीपमालाओं के प्रकाश से प्रकाशित वह दुमंजिला मकान इन्द्रधनुष की भांति शोभा दे रहा था।

कुमार पहले पहली मंजिल में घूमा, फिर बाद में दूसरी मंजिल में पहुँचा। वहां पर तरह तरह की रंग-

विरंगी मणियों से जड़े हुए, अनेक प्रकार के चित्रों से चित्रित, देश विदेश की मनुष्योपयोगी, धातु, काष्ठ, काच आदि की सभी सामग्रियों से शोभायमान एक सुसज्जित कमरे में जाकर वह एक रत्न-जड़ाऊ पलंग पर बैठ गया।

थोड़ी देर विश्राम कर लेने के पश्चात् कुमार ने आसानी से भीतर के कमरे के द्वार खोल दिये, और वह उसके अन्दर भी जा घुसा। वहां पर उसने एक बंदरी को रत्न जड़ाऊ पलंग पर सोते हुए देखा। यह देख कर वह दंग रह गया। इधर वानरी भी उसे चकित देख शय्या को छोड़ के एक दम उठ खड़ी हुई, और आकर उसके चरणों में गिर पड़ी। उसने उसके वस्त्र का अंचल पकड़ कर पलंग पर बैठाया। पलंग पर बैठकर आश्चर्य चकित कुमार ने उस बंदरी से पूछा "चेष्टा से तो तुम मानवी दिखाई पड़ती हो और वैसे तुम वानरी हो यह क्या बात है? मैं इस रहस्य को जानना चाहता हूँ।"

यह सुन कर वह रोने लगी और उसने दीवार में बने हुए एक आले की ओर इशारा किया। वह बार बार अपने नेत्रों और आले की ओर हाथ से इशारा कर के कुमार को समझाने लगी। उसके इशारे से कुमार उठ कर उस आले की ओर गया और उसमें से उसने अंजन

ो हुई कुप्पियाँ दो बाहर निकाली। एक में सफेद और दूसरी काला अंजन भरा हुआ था। उसने बानरी के संकेत से उसकी ाँखों में काला अंजन डाल दिया। उस अंजनकी महिमा वह सुन्दर दिव्य वस्त्र और आभूषणों को धारण की हुई क कन्या बन गई। उसे इस प्रकार मानवी बनी देख ाश्चर्य में डूबे हुए कुमार ने उससे पूछा,—"भद्रे तुम कौन हो? और तुम्हें किसने ऐसी दशा में पहुँचाया है? इस स्थान का नाम क्या है? इन सब बातों का उत्तर देकर तुम मेरे सन्देह को दूर करो।"

कुमार के सन्देह का निराकरण करती हुई हर्ष और लज्जा के वशीभूत उस कन्या ने कहा "हे वीरवर! हेमपुर के स्वामी मकरध्वज नरेश की महारानी मदनावली-के गर्भ से मेरा जन्म हुआ है। माता पिता ने मेरा नाम मदनसुन्दरी रक्खा है। मैं अपने भाई मदनपाल की छोटी बहन और माता पिता की बहुत प्यारी बेटी हूँ। शुक्लपक्ष में चन्द्रकला की तरह दिन ब दिन बढ़ती हुई मैं क्रम से तरुणावस्था को प्राप्त हुई। मैं मनुष्यों के सामुद्रिक लक्षणों-की जानकार होने के नाते यह प्रतिज्ञा कर चुकी थी, कि जो कोई पुरुष बत्तीस लक्षणों से युक्त होगा, उसीके साथ विवाह करूँगी।

एक समय मेरा भाई मदनपाल किसी चित्रपट पर राजकुमारी प्रियंगुमंजरी के रूप व सौन्दर्य को देखकर उस पर मोहित होगया, परन्तु वह कुमारी राधावेध के कर्त्ता कुमार श्रीचन्द्र में पहले से ही प्रेम वाली थी। इसलिये उसने मदनपाल की ओर कुछ भी ध्यान न दिया। तो भी मेरा भाई प्रियंगुमंजरी के प्रेम में मोहित होकर घर से कहीं निकल गया। प्रेम का पंथ बडा ही विकराल है। कहा भी है :—

> धर मोम के दांतों को आनन से
> चने लोह के चारु चबावनो है,
> मनु आंख विहीन को देखनो है
> विन पांव को पंथ चलावनो है।
> विन डोर पतंग उड़ावनो है
> विन 'बुद्धि' को पाठ पढावनो है,
> यह प्रेम को पंथ कराल महा
> तरवार की धार पे धावनो है॥

जब से भाई मदनपाल घर से निकला है, वापस लौटा ही नहीं। एक रोज मेरे पिताजी की राज-सभा में एक वंदी-कवि ने मधुर स्वर से कथन किया कि—

> दान-व्यजन कोद्‌भूतः-श्रीचन्द्रस्य यशोऽनिलः।
> नव्यः कोऽप्यर्थि धूलीनां, पुञ्जं सम्मुखमानयत्॥

अर्थात्—महाराज प्रतापसिंह के चिरंजीवी श्रीचन्द्र कुमार के दान रूप पंखे से पैदा होने वाला कोई यश-रूप नवीनवायु याचक रूप धूली समूह को आपके सन्मुख लाया है।

यह सुन मेरे पिता हेमपुर-नरेश ने उस कवि का उचित सत्कार करके उसे विदा किया उसके बाद मंत्रियों के साथ परामर्श करके श्रीचन्द्र कुमार के साथ मेरा विवाह करने का निश्चय किया गया।

इस चर्चा से प्रसन्न-मनवाली मैं समवयस्क सखियों के साथ अपने फूल बाग में मनोरंजन के लिये गई। रंग-बिरंगी फूलों से मेरे लिये हार, गजरे, कर्णफूल, आदि सखियों ने तैयार किये। इतने में कोई विद्याधर आकर मुझे उडा ले चला। उसने अपनी घरवालीके डर से मुझे यहां एकान्तवास में ला रखी है। यहां रहते हुए मुझे पांच दिन बीत गये हैं।

विद्याधर ने मेरे साथ विवाह करने का प्रस्ताव रक्खा है मगर मैंने उसे ठुकरा दिया है। जब मैं अपने भाग्य पर रोने लगी तो उसने कहा—'सुभगे! रोती क्यों है? मैं वैताढ्य-निवासी रत्नचूड विद्याधर हूँ। इस समय गोत्री नरेश ने मेरे मणिभूषण नगर पर अधिकार कर लिया है। इस-

लिये मैं सपरिवार वहां से निकला हुआ, बाहर ही रहता हूँ।

उसने मुझसे कहा एक दिन की बात है मैं पृथ्वी-पर घूमता हुआ, कुशस्थलपुर नगर में पहूँचा था। वहां एक उद्यान में हाथी, घोड़े, ऊंट, रथ, और सेना आदि का पड़ाव पड़ा था। उनके बीच में जरी से काम किया हुआ एक मखमली तंबु लगा था। उसमें सोने के पलंग पर सखियों से घिरी हुई एक पद्मिनी को मैंने बैठी देखा। उस समय वह सुसराल से अपने भाई के साथ अपने पिहर—पिता के घर जा रही थी। मैं उसको देखकर मोहित होगया। रूप और सौन्दर्य की मूर्ति-उस पद्मिनी-के अपहरण की इच्छा से मैं अदृश्य होकर वहां एक दिन ठहरा। परन्तु उसके शील के प्रभाव से एवं उसके पति द्वारा की हुई रक्षा के कारण मैं उसे उड़ाने में असमर्थ रहा।

वह आगे कहता गया—तब मैं निराश होकर वहां से चल पड़ा। उसके समान रूपवाली स्त्री की खोज करने लगा। खोजते २ तू मुझे दिखाई दी, और मैं तुझे उडा कर यहां ले आया हूं। अब मैं तेरे साथ विवाह करूंगा।

यह कह कर विद्याधर ने सफेद अंजन को आंज कर
के वानरी बना दी। कुछ फल आदि खाने पीने का
मान रख कर वह यहां से चला गया। इसके बाद
सरे दिन वह फिर आया, इस काले सुरमे के योग से
फे वापस स्त्री रूप बनाकर कहने लगा—'सुन्दरी!
ती क्यों है? ले ये मोदक, ये बड़े स्वादिष्ट हैं। इसके
ने से मन की अभिलाषा पूर्ण होती है—'देख मैं ज्यो-
पी से अभी लग्न दिखा कर आया हूं। गुरुवार की
पहरी में लग्न ठहरा है। इसीलिये मैं सारी
वाह की सामग्री यहां लेकर आया हूं तूं इसे
म्हाल कर रख। मैं बुधवार की रात्रि में या गुरुवार
 प्रातःकाल में निश्चयरूप से आऊंगा। इसमें तनिक भी
न्देह मत करना।'

यह सुनकर मैंने उस विद्याधर से कहा, "विद्याधर!
तुम विद्वान् होते हुए भी मूर्ख क्यों बन रहे हो? तुम
मेरे पिता तुल्य हो। तुम मेरे साथ विवाह कैसे करोगे।"
इस प्रकार कहने पर भी उसने मेरी बात हंसी में टाल दी
और मुझे फिर वानरी बनाकर चला गया।

हे आर्य! आज बुध की रात होगई है और वह
नीच प्रातःकाल अवश्य ही आवेगा। यह मेरी कथा तो

समाप्त हुई। अब आप अपना परिचय दें। हेसाहसिक! आप कौन हैं? और यहां किस प्रकार आये हैं? कृपा कर आप मुझे इस दुष्ट के पंजे से छुड़ा कर मेरा उद्धार कीजिये।

यह सुन चन्द्रकला के पति श्रीचन्द्र ने अपने मन में विचार किया कि आज सुबह जो व्यक्ति मुझ से मारा गया है वह रत्न-चूड़ विद्याधर ही हो सकता है दूसरा नहीं। ऐसा विचार करके गर्व रहित हो कुमार ने अपना परिचय देना शुरू किया। कुमारी! मैं कुशस्थल पुर का निवासी हूँ, और निर्धनता बढ जाने के कारण धन कमाने के लिये विदेश में आया हूँ। रात बिताने के लिये मैं इस वट वृक्ष पर चढ़ा और ज्योंही मैं डालपर बिछी हुई डाभ की पुआले पर सोने लगा, तो मुझे एक खोखल दिखाई दी। उसमें घुस कर मैं यहां आया हूँ। पाताल मन्दिर देखकर मैं इस पर चढ़ा और यहां इस दुमंजिले पर तुम्हें वानरी के रूप में देखा। मेरा तुमसे यही कहना है कि तुम वृथा दुःख क्यों झेल रही हो? तुम कुमारी तो हो ही। उस विद्याधर के साथ शादी करने पर विद्याधरी हो जाओगी। इसमें तो मुझे तुम्हारा भला ही दिखाई देता है अतः तुम यहीं रहो।

कुमार के वचनों का उत्तर देते हुए मदनसुंदरी ने कहा हे आर्य ! आप के स्वरूप को देख कर मैं आप को निर्धन नहीं मानती । मेरा अन्तः करण आप के प्रति आकृष्ट हो रहा है । कहा है:—

सतां हि सन्देह—पदेषु वस्तुषु
प्रमाण मन्तः करण-प्रवृत्तयः ।

अन्तः करण ही सन्देहवाली वस्तुओं में प्रमाण भूत होता है । आप को पाकर मुझे विद्याधररत्न की कोई अभिलाषा नहीं है । मेरे भाग्य ने ही आप को यहां भेजा है । आप ही बत्तीस-लक्षण संपन्न मेरे स्वामी हैं । मैं ही नहीं शास्त्र भी आप को महान् बताते हैं । देखियें सामुद्रिक शास्त्र में बत्तीस-लक्षण जो आप में मौजूद हैं, उन का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है ।

भुजा, नेत्र, उंगलियां, जीभ और नासिका लम्बी होनी चाहिये । पीठ, कण्ठ, लिङ्ग और जांघें छोटी होनी चाहिये । दांत, त्वचा नाखून और केश सूक्ष्म होने चाहियें । हथेली पैरों के तलिये, तालु, आंखों के कोने, जीभ, नाखून और होठ ये लाल होने चाहियें । ललाट और वक्षस्थल विशाल, तथा नाभि और स्वर गंभीर होने

चाहियें। आंखो के तारे और केश सचिक्कण श्याम होने चाहियें।

ये सारे सुलक्षण बत्तीसों ही आप के अंगों में प्रशस्य और प्रकट रूप से दीख रहे हैं। अतः मैं आप के ही श्रीचरणों की दासी बनुंगी। आप मेरा पाणि-ग्रहण कर, मेरे सुख-दुःख के साथी और स्वामी बनें। अब मैं किसी की परवाह नहीं करती, केवल आप को ही अपने जीवन का आधार मानती हूं। कृपा कर के आप मुझे अपना लें बस मुझे विद्या या विद्याधर किसी की भी आवश्यकता नहीं है।

प्राणनाथ! पधारियें। इस समय आप अकेले हैं। प्रातः काल होते ही वह दुष्ट विद्याधर आ धमकेगा। व्यर्थ में बाधा खड़ी कर देगा। इस लिये हम दोनों को यहां से चल देना चाहिये। जिस से कि वह हमें देख ही न पावे।

दूसरी बात प्रार्थना रूपमें अर्ज करती हूं कि आज ही दुपहर को लग्न का समय है। विवाह की सामग्री यहां मौजूद ही है। अतः आप किन्तु परन्तु न करते हुए विवाह कार्य को साध लें, तो बड़ा अच्छा हो। 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि'। हुआ करता है मंगल कार्य में बाधा आही जाती है। हम तो बाधा के ठिकाने पर ही खडे हैं, अतः

जल्दी विवाह करके हमें यहां से जल्दी प्रस्थान कर देना चाहिये।

मदनसुन्दरी को समझाते हुए कुमार ने कहा—सुन्दरी! तुम अपने मन से भय निकाल दो। तुम्हारा अब कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। यह तो बताओ यहां इस भूमीधर में मध्याह्न का पता कैसे लगेगा?। राजकुमारी ने बड़ी नम्रता से कहा—नाथ! इसी भवन के पास एक छोटीसी खिड़की है। उसीसे दिन-रात और दोपहर का पता चलता है

इसके बाद कुमार ने उसके साथ प्रातः काल होने पर वहीं पारणा किया। दोपहर के समय तक वे दोनों वहाँ उस विद्याधर की प्रतीक्षा करते रहे मगर लग्न के समय तक वह वहाँ न आया। पूर्व निश्चयानुसार उन दोनों ने उसी लग्न में अपना विवाह कर लिया इसके बाद वे दोनों उसी महल में विश्राम करने लगे। गोष्ठी के बीच में मदन सुन्दरी ने कुमार से पूछा, "नाथ! मुझे इस बात का विचार होता है कि विवाह के लिये अत्यन्त उत्कण्ठित वह विद्याधर अभीतक क्यों नहीं आया?

यह सुनकर कुमार ने राजकुमारी को उस विद्याधर

अपना स्वामी बना देख उसके आनन्द की सीमा न रही। अपने स्वामी की उदारता, दयालुता और दाक्षिणता देख उसका रोम रोम हर्षित हो उठा। उसने अपने स्वामी से विनय पूर्वक प्रार्थना की कि वे भोजन करने बैठजायें।

श्री चन्द्र ने उत्तर देते हुए कहा "सुभ्रू! आज मैं बड़ा सौभाग्यशाली हूँ कि मुझे अपनी धर्मपत्नी के हाथ का पकाया हुआ भोजन मिल रहा है। अतः मेरी इच्छा है कि किसी साधु महाराज को पहले भोजन करा कर फिर मैं भोजन करूँ, और अपने सौभाग्य में चार चाँद लगा दूँ। इतना कह कर कुमार तालाब की पाल पर चढ़ कर इधर उधर देखने लगा। इतने में उसके भाग्य से खींचे हुए दो साधु वहाँ आते हुए दिखाई दिये। वह सामने जाकर उन्हें बड़े ही आदर पूर्वक ले आया और घेवर तथा पुए आदि पक्वान्न उन्हें वहरा दिया, फिर उसने अपनी स्त्री के और ओरभी उपस्थित दूसरे लोगों के साथ भोजन किया।

भोजन आदि से निवृत्त होकर कुमार श्री चन्द्र अपनी स्त्री के साथ उन साधुओं की सेवा में जा उपस्थित हुआ। वन्दन करके उन वत्स और कच्छ नाम के दोनों साधुओं के सामने वह बैठ गया। वत्स नामक साधु ने उन्हे धर्मोपदेश देना शुरू किया।

देवानुप्रियों ! चित्त, वित्त और सुपात्रों का योग बड़ा ही दुर्लभ होता है। कहा भी है—

काले सुपत्त दाणं सम्मत्त-विसुद्ध बोहिलाभं च।
अन्ते समाहि-मरणं, अभव्व-जीवा न पावंति ॥
उत्तम-पत्त साहू, मज्झिम-पत्त च सावया भणिया।
अविरय सम्मदिट्ठी, जहन्न-पत्त मुणेयव्वं ॥

अर्थात्—समय पर सुपात्र में दान देना, सम्यक्त्व से विशुद्ध ज्ञान-लाभ को प्राप्त करना और अन्त में समाधि-मरण ये तीन बातें अभव्य जीवों को प्राप्त नहीं होती। साधुओं को उत्तम-पात्र, श्रावकों को मध्यम पात्र और अवरित सम्यग्-दृष्टियों को जघन्य-पात्र शास्त्रों में बताये हैं।

दान धर्म से मनुष्य आत्म-धर्म को पाता है, दान से ही त्याग की साधना होती है। इसीलिये कहा है कि—न्यायोपार्जित वित्त और त्याग-प्रधान चित्त की साधना से सुपात्र में दान देते रहना चाहिये। दान-धर्म-से धर्म-लाभ के अधिकारी आत्मा इस लोक और पर लोक की परम-लक्ष्मी को पाते हैं।

इस प्रकार श्रीवत्स महर्षि के सदुपदेश को सुन कर कुमार ने मुनिराज से प्रार्थना की कि—हे भगवन् !

इस जंगल में घूमते हुए अनजान में मुझ-पापी से एक विद्याधर की हत्या हो गई है। अतः आप कृपा करके उस पाप का कोई प्रायश्चित्त दीजियें। मुझे मेरा पाप कांटे की तरह खटकता है।—

यह सुन श्रीमुनिराज ने फरमाया,पुण्यशाली! तुम्हारी पाप-भीरुता प्रशंसनीय है। यद्यपि तुम्हारे पाप की शुद्धि पश्चात्ताप और दान से हो चुकी है फिर भी इस प्रायश्चित्त के रूपमें श्री अरिहंत, भगवान को नमस्कार उन का नाम-जाप और मौका आने पर एक जिनमंदिर का भी निर्माण करना।

इस प्रकार सुधा-मधुर गुरु-वाणी को सुन कर आत्मा को कृत-कृत्य मानता हुआ कुमार बहुत प्रसन्न हुआ। क्रम-से चलता हुआ वह श्री कल्याणपुर नाम के नगर में पहुंचा।



संसार एक रंग भूमी है। इस में भले बुरे कई प्रकार के पात्र होते हैं। भलों की भलाई सदा सुवर्णाक्षरों में लिखी जाती है, याद की जाती है और बुरों की बुराई घृणास्पद हो कर यातो लोग भूल जाते हैं या फिर उस के प्रति तिरस्कार ही तिरस्कार होता रहता है। कौन नहीं जानता परोपकारी विक्रमादित्य को वस्तुपाल-तेजपाल को या पौराणिक राजा श्रीपाल को। उसी तरह से उस दुर्जन-वृत्ति वाले धूर्त धवल सेठ को भी हम भूले तो नहीं पर उस के प्रति हमारा कोई सद्भाव नहीं है।

हमारा चरित्र नायक कुमार श्रीचन्द्र एक भला पात्र है। उसमें वीरता धीरता और गंभीरता तो है ही पर साथ ही साथ उदारता और दक्षिणता भी चरमसीमा में पहुंच

रही थी। अपने पूर्व-पुण्य-कर्मों की प्रधानता से उस के विरोधी उस का कुछ न विगाड सकते थे वल्कि वे विगाडने की भावना वाले ही विगड जाया करते थे।

कल्याणपुर की ही वात है। कुमार मदन-सुंदरी को लिये एक दिव्य-देव मंदिर में विश्राम कर रहा था। भोजन की तैयारी थी। इतने में एक कापालिक-बाबा श्रीचन्द्र-कुमार के पास आया। कुमार को वत्तीस-लक्षण संपन्न देख कर मन ही मन मुदित होता हुआ कुमार से कहने लगा—

विरला जाणंति गुणा, विरला जाणंति अप्पणो दोसे।
विरला परकज्जपरा, पर दुक्खे दुक्खिया विरला॥

कुमार! दूसरे के गुणों को देखने वाले, अपने दोषों को देखने वाले, परकीय कार्य को सधाने वाले, और पराये दुःखों में दुःखी होने वाले पुरुष संसार में विरले ही होते हैं।

कुमारने योगी के भाव समझ कर उससे पूछा बाबा! तुम कौन हो? योगी ने कहा भैया! मेरा नाम त्रिपुरानन्द भारती है। मैं खर्पर योगी का छोटा भाई हूं।

मैं लोकोपकार की इच्छा से सुवर्ण पुरुष की सिद्धि के लिये भटकता हुआ यहाँ आया हूँ। अभी तक कहीं

मुझे कोई ऐसा मनुष्य नहीं मिला, जो मेरे इस कार्य-में उत्तर-साधक बने। यहाँ पर तुम्हें आकृति और शरीर की कान्ति से महापुरुष और परोपकारी समझ मैं तुम्हारे पास आया हूँ अतः तुम आज रात्रि में मेरे उत्तर-साधक, बनो जिससे मेरे कार्य की सिद्धि शीघ्र हो जाय।"

परोपकारी कुमार उसकी प्रार्थना को ठुकरा न सका, और उसे उस कार्य की विधि पूछ बैठा। योगी ने उत्तर दिया, "महाशय! स्वर्णपुरुष की सिद्धि रात्रि के समय श्मशान में मनुष्य के मृत शरीर की साधना से होती है और सत्वशाली पुरुष की विद्यमानता में सारी सामग्री सुलभ हो जाती है।"

योगी के वचन सुनकर श्रीचन्द्र ने कहा, "अगर ऐसा है तो जाओ, वहाँ जाकर अपनी सामग्री जुटाओ। मैं वहाँ अवश्य ही आऊंगा।" कुमार की प्रशंसा करता हुआ वह योगी वहाँ से चलकर श्मशान में पहुँचा और वहाँ पर सारी सामग्री जुटाली। अग्नि कुण्ड और शवस्थान आदि का निर्माण अभ्यस्त होने के कारण उसने बात की बात में कर लिया।

इधर योगी के चले जाने के बाद कुमार ने अपनी पत्नी को योगी का सारा हाल बतला दिया। यह सुन

कर वह बोली, "स्वामिन् ! आपने योगी की प्रार्थना स्वीकार क्यों की ? । ये तो हमेशा से कपटी और कुटिल आचरणवाले होते हैं । इनका विश्वास करना आग से खेलना है । अतः मैं आपको वहाँ किसी भी प्रकार जाने नहीं दूंगी ।

वह बोला, "प्रिये ! तुम जानती ही हो, कि शुद्ध-मनवाले का कल्याण ही होता है सम्पत्तियें उनके सामने हाथ बांधे खड़ी रहती हैं । विघ्न समूह उनके सामने से कपूर की तरह उड़ जाते हैं । अतः तुम घबड़ाओ मत किसी प्रकार की चिन्ता मत करो । मुझे अपना वचन पालन करने दो । अपना नारी धर्म पहिचान कर मेरा साहस बढ़ाओ वचन भंग से संसार में मेरी और तुम्हारी दोनों की हँसी होगी और आजीवन इस कलंक को चन्द्र के कलंक की तरह धारण करना पड़ेगा । धीरज धरो, नमस्कार मंत्र के प्रभाव से तुम्हारा सब तरह से कल्याण होगा । लो मैं तुम्हें फिर से वानरी बना देता हूँ । तुम निर्भय होकर इस पेड़ पर चढ जाओ ।"

यह कह कर कुमारने उसी प्राप्त-अंजन के योग से उसे वानरी बना कर वृक्ष पर चढ़ा दिया और स्वयं हाथ में तलवार लिये घूमता हुआ स्मशान में योगी के

पास जा पहुँचा। योगी पहले से ही तैयार था। आते ही योगी ने कुमार से रक्षक बनने की प्रार्थना की। कुमार-ने उसे निर्भयतापूर्वक कार्य करने को कहा।

योगी विधि-पूर्वक जप और हवन आदि करके अर्द्ध-रात्रि के समय कुमार से बोला, "वीर! सुनो। इसी दिशा में एक बहुत बड़ा बड़ का वृक्ष है। उस पर किसी चोर का मृत शरीर लटक रहा है। तुम निर्भयता से वहाँ जाकर उस शव को यहाँ ले आओ। देखना! बोलने की जरुरत पड़े तो भी तुम मत बोलना।"

योगी की आज्ञा पाकर कुमार शीघ्र ही रात्रि की शान्ति को भंग करता हुआ उस वट-वृक्ष के नीचे जा पहुँचा। वहाँ पर चोर के शव को लटकता हुआ देखकर वह उस पर चढ़ा और चन्द्रहास तलवार से उसके बंधन काट डाले। ज्योंहीं वह उस शव को पृथ्वी-पर गिराकर वृक्ष से नीचे उतरा, त्योंहीं क्या देखता है? कि वह शव पूर्व की तरह फिर से उसी शाखा में लटक रहा है। यह देख कुमार को न तो कोई आश्चर्य हुआ, और न वह डरा, परन्तु साहस करके वह फिर पेड़ पर चढ़ा। फिर उसने उसी तरह बंधन काट कर उस शव को अपने कन्धे पर उठाकर बड़ से नीचे उतरा।

कुमार उस शव को कभी कंधे पर और कभी हाथ में उठाता हुआ मार्ग में चलने लगा। इतने में उस शव ने जोर से हँस कर कुमार से कहा, "तुम राजा भी हो और राजकुमार भी हो अतः मुझे कोई कथा सुनाओ।" लेकिन कुमार ने उसको कोई उत्तर नहीं दिया। तब वह शव फिर बोला, "अगर तुम नहीं कहते हो तो लो मैं ही पद्मावती की लौकिक कथा सुनाता हूँ मगर सुनते समय हुँकारा अवश्य देना पड़ेगा।" यह कह कर शव ने कहना शुरू किया—

क्षितिप्रतिष्ठित नाम के नगर से राजकुमार गुणसुन्दर और मन्त्री कुमार सुबुद्धि ये दोनों घोड़े पर बैठ कर बाहर निकले। दैव-योग से मार्ग भूल कर वे किसी बड़ी भारी अटवी में भटकने लगे। प्यास के मारे उनके होंठ सूख कर काले पड़ गये थे; और चेहरे निस्तेज हो चले थे। अन्त में पानी की खोज करते करते एक सरोवर की तीर पर जा पहुँचे। वहाँ पर वे दोनों एक यक्ष मन्दिर में ठहरे। सुबुद्धि शीघ्र ही तालाब का जल पीकर लौट आया और घोड़ों की रखवाली करने लगा। इसके बाद राजकुमार ने भी बहुत समय की प्यास को शान्त किया। बाद में वह सरोवर में जल-क्रीड़ा करता हुआ सामने के तीर पर जा पहुँचा। वहाँ कोई कन्या कमल

ाये खेलती हुई बगीचे में से निकल कर आई, और मार को देख कर वह अपने कमल, से दंतपंक्ति और नों को छू कर संकेत करके वापिस प्रसन्नचित्त अपने थान को लौट गई।

कुमार भी उसके संकेत को न समझ कर अपने ाथ निराशा लिये पुनः उस तीर पर आ पहुँचा जहाँ पर सका मित्र उसकी प्रतीक्षा में खड़ा था। उसने अपने मित्र को उस कन्या द्वारा किये गये सारे संकेत कह नाये। मित्र बड़ा बुद्धिमान् था। वह बात की बात- सारी बातें समझ गया। उसने कहा "मित्र! सुनो! ाह दंतपुर नरेश कर्णदेव महाराज की पद्मावती नामक कन्या है और आपमें अनुरागवती है।" यह सुन कर राजकुमार बहुत प्रसन्न हुआ मित्र सहित उस कन्या के नगर में जा पहुंचा।

वहाँ पर अपने मित्र के साथ वह एक माली के घर पर ठहरा मंत्रीपुत्र ने सारी बात का पता लगा कर औरमालिन को कुछ लोभ देकर उसे अपना संदेश राज- कुमारी तक पहुंचा देने के लिये राजी कर लिया। मालिन उनका संदेश लेकर राजकुमारी के पास पहुँची और मौका पाकर उसने उससे कहा, "राजकुमारी जिस

मनुष्य को तुमने तालाब के तीर पर देखा था वह यहाँ आगया है।" यह सुनकर राजकुमारी बड़ी क्रोधित हुई और उसने मालिन के सिर पर चन्दन से भरा हाथ का पंजा मार दिया, वह बिलबिलाती हुई अपने घर पहुँची।

उसने यह सारी घटना राजकुमार से कह सुनाई। राजकुमार बड़ा लज्जित हुआ और उसने मित्र से कहा, " मित्र! क्या यही तुम्हारा बुद्धि बल है?" मित्र ने उत्तर दिया, "घबराओ नहीं। राज-कन्या ने जो मालिन के सिर पर चंदन से भरे हाथ का पंजा मारा है उससे साफ प्रकट है कि उसने शुक्ल पक्ष की पंचमी को तुम्हें वहाँ आने का निमंत्रण दिया है। तुम किसी बात की चिन्ता मत करो, और अपनी आत्मा में किसी प्रकार की उथल पुथल मत मचने दो।"

मित्र की बातें सुन कर राजकुमार को कुछ धीरज हुआ, और अब वे दोनों किराये पर मकान लेकर अलग रहने लगे। शुक्ल पक्ष की पंचमी को वह मालिन फिर धन लोभ से विवश कर वहाँ भेजी गई। उसने भी वहाँ जाकर राजकुमार के लिये मार्ग पूछा। यह सुन कर राज-कुमारी क्रोध से तमतमा उठी और कुंकुम भरे हाथ से उसका गला पकड़ कर उसे धकेल दिया। फिर सखियों से

ोली, " सखियों ! यह बार बार मेरा अपमान करती है सलिये महल की छत से इसको रस्सी से लटका कर छोड़ ो।" बस हुक्म की देर थी। सखियों ने फौरन उसको स्सी से बाँध कर छत से नीचे लटका दिया, और उसे ोड़ दिया।

बेचारी मालिन ने फिर अपनी दुःख भरी कहानी कुमार से कह सुनाई और कहा कि बस मैं जीवित लौट आई इसी में मैं अपना अहो भाग्य समझती हूँ। मालिन के वचन सुन कर मित्र ने राजकुमार को समझाया कि आप शीघ्रता मत कीजियें, आपके काम में अभी विलम्ब है। लाल कुंकम की चार अंगुलियों के निशान जो इस की गर्दन पर मौजूद हैं वे इस बात के द्योतक हैं कि अभी वह राज-कुमारी रजस्वला है, और उसने चार दिन और प्रतीक्षा करने का संकेत किया है। रस्सी का प्रयोग करके तुम्हें भी रस्सी द्वारा ऊपर आने का संकेत किया है। अतः हम नवमी की रात को उसी मार्ग से चलेंगे।

राजकुमार ने वे चार दिन प्रिया-मिलन की उत्कण्ठा में किसी तरह बिताये। आखिर नवमी आ पहुँची। रात्रि में राजकुमार संकेत स्थान पर जा कर खड़ा होगया। उसको वहाँ वैसी हालत में आया देख राजकुमारी बड़ी प्रसन्न

हुई। बात की बात में उसने राजकुमार को उपर च
लिया और रात भर उसके साथ पारस्परिक प्रेम गो
की। उस समय उसने राजकुमार से पूछा कि स्वामिन
आपने मेरे हृदय में छिपे हुए भावों को किस प्रकार
जाना। राजकुमार जरूरत से ज्यादा भोला था। उ
भोलेपन से सच सच कह दिया कि ये सभी बातें मु
अपने मित्र से मालूम हुई हैं।

यह सुन कर उसने अपने मन में मंत्री पुत्र को म
डालने का सोचा मगर राजकुमार के सामने उसने ये भ
किसी भी इंगित या चेष्टा द्वारा प्रकट न होने दिये
उसने राजकुमार को तरह तरह के पकवानों से खूब ध
कर भोजन कराया और कुछ जहरीले लड्डू उसे दे
कहा कि मेरे देवर को ये अवश्य दे देना। इसके बाद
दोनों अपनी अपनी चिर संचित उमंगों को पूरी करने
लग गये। राजकुमारी ने दूसरे दिन फिर आने की प्रति
करा कर राजकुमार को विदा किया।

राजकुमार लड्डू लिये अपने निवास-स्थान पर पहुँचा
उसने वे लड्डू सुबुद्धि को दे दिये सुबुद्धि ने अपनी भा
का दिया हुआ उपहार मान कर उन्हें बिना किसी हिच
किचाहट के ग्रहण कर लिये। राजकुमार ने वहाँ क

सारी बातें कह सुनाई। सुबुद्धि ने उस से कहा कि तुमने वहाँ पर मेरा नाम फ़िज़ूल ही लिया। वार्तालाप समाप्त होने पर दोनों उठ खड़े हुए। प्रातः काल हुआ ही चाहता था, अतः वे दोनों शौचादि से निवृत्त होने के लिये चले गये।

सुबुद्धि मंत्री पुत्र जब शौचादि से निवृत्त हो कर आया तो उसने अपने लड्डूओं पर बैठी हुई मक्खियों को मरा पाया। उसे यह निश्चित हो गया कि ये लड्डू विषैले हैं अतः उसने उनको पृथ्वी में गाड़ दिया। जब राजकुमार आया तो उसने उसे इस बात से सूचित कर दिया। यह सुन कर वह दंग रह गया। सुबुद्धि ने उसे कहा कि आज रात्रि में जब तुम वहां जाओ तब तुम मेरे कथनानुसार कार्य करना। उसने मित्र के कथन को बिना किसी बाधा के स्वीकार कर लिया।

दोनों मित्र भोजनादि से निवृत्त हो, सायंकालीन कृत्यों में जुट गये। अंधेरा बढने लगा राजकुमार संकेतानुसार राज महल में पहूँच गया। रात के तीन प्रहर आमोद-प्रमोद में बीता दिये। राजकुमारी को नींद ने आघेरा। वह सो गई। कुमार ने दोस्त के कहे अनुसार उसकी जंघा पर तीन रेखाएँ खींच दी, और उसके पैर का

पायजेब-झांझर निकाल कर चुप चाप अपने उतारे प
लौट आया ।

कुमार उस झांझर को अपने मित्र सुबुद्धि के हाथ
दे दिया । वाद में दोनों ने योगी का रुप वना कर
स्मशान में जाकर डेरा डाल दिया । सुबुद्धि गुरु बना और
राजकुमार शिष्य हुआ । गुरु की आज्ञा से शिष्य पाय
जेब लेकर बाजार में बेचने को गया । एक सर्राफ से कहा
कि इस के बदले में मुझे धन दे दो ।

इधर राजकुमारी के पायजेब चोरे जाने की चर्चा
सारे शहर में विजली के वेग से फैल चुकी थी ।
उस सर्राफ ने उस योगी-वेश-धारी कुमार को पायजेब
समेत राजा के पास पकड पहूंचाया । राजा ने अपना
नाम देख कर उसे पहचान लिया । राजा का क्रोध भड़क
उठा । उसने योगी से पूछा, जल्दी बताओ यह नुपूर
तुम्हारे हाथ कैसे लगा ? योगी ने कहा राजन् ! इस
विषय में मैं कुछ नहीं जानता हूं । इस बात का पता
केवल मेरे गुरुजी को हो सकता है ।

योगी के ऐसा कहने पर राजा ने सिपाही भेज कर
गुरु को भी सख्ती से बुला लिया । गुरु जी आकर उप-
स्थित हुए । उन्हों ने कहा " महाराज ! जब मैं आज

श्मशान में ध्यान जमाये बैठा था, तभी वहां पर एक प्लेग-की भयंकर देवी आई। मुझे देख वह शहर की तरफ लौटने लगी। मैंने उसके पैर पकड़ लिये। उसे रोकने की कोशीश करते हुए उसके पैर का पायजेब–नूपुर मेरे हाथ आगया। उस की जांघ पर मेरे हाथ से कुछ रेखायें भी पड़ गईं।

इस बात से शंकित-मनवाले राजा ने रानी से अपनी लड़की का परीक्षण कराया। योगी के कहे मुताबिक राजकुमारी की जांघ पर रेखाओं को पाकर, राजा चिंता करने लगा कि अब क्या हो ?। उसने योगी से कहा महात्मन्! आपका कहना सोलहों आने सच है। क्या यह ठीक भी हो सकती है ? योगी ने कहा, जरूर। पर राजकुमारी को मेरे द्वारा अभिमन्त्रित वस्त्र पहिना कर, आंखों पर पट्टी बांध कर हाथ पैर रस्सी से कस कर मन्त्री लोग रथ में बिठा कर नगर के बाहर कुछ दूर जंगल में ले जाकर छोड़ दें। रथ वाले लोग पीछे घूम–कर न देखें। इस प्रकार आठ प्रहर तक उसे जंगल में पड़ी रहने देवें। वह शक्ति-दोष से मुक्त हो जायगी। बाद में आप लोग बड़े भारी उत्सव के साथ अपने राज-महल में उसे वापस ले आना। राजाने योगी के कथना-नुसार उसी हालतमें उसे जंगल में छोड़ दिया।

इधर वे दोनों मित्र भी अपने २ घोड़ों पर सवार होकर वहां जा पहुँचे, और उसके बंधनों को काट, जंगल से अपने नगर की तरफ ले चले। रास्ते में राजकुमारी ने कहा कि—क्या ये सब करतूतें देवर-महोदय की हैं। तब सुबुद्धि ने कहा, नहीं—ये सब करतूतें भाभी-रानी की हैं।

इधर आठ प्रहर का समय बीत जाने पर राजा स्वयं जंगल में गया। वहां उसे राजकुमारी पद्मावती न मिली। इस दुःख से राजा का हृदय फट गया। अब बताओ यह पाप कन्या को, राजकुमार को, या मित्र सुबुद्धि को—इनमें से किस को लगा?

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कुमार ने कहा। मृतक मेरी समझ में तो राजा को ही लगा। कारण, कि उसने इतनी बड़ी कन्या को क्वाँरी ही क्यों रखी? दूसरे प्रकार से चारों व्यक्ति पाप के भागी हैं। कुमार के ऐसा कहते ही मृतक उसके हाथ से छिटक कर फिर बड़ में जा टंगा।

इस प्रकार कुमार के भाषण से मुरदे ने तीनबार ऐसा किया। परन्तु कुमार ने भी हिम्मत न हारी और चौथीबार शव को बड़ से उतार ही लाया। मजबूती से

पकड़ कर ज्यों ही वह आगे बढता है, त्यों ही शब ने कहना शरु किया—

कुमार! राज-राजेश्वर होकर भी न मालूम क्यों इस योगी के चक्कर में फँस रहे हो? योगी बड़ा दुष्ट है। कपटी है। तुम से वह अपनी साधना सिद्ध करना चाहता है। मैं तुम्हें सचेत कर देता हूं कि—कुमार! अनजान में कहीं धोखा मत खा जाना।

मुरदे के वचन को सुनकर कुमार बिचार में पड़ गया और सोचने लगा कि यह क्या कह रहा है? इतने में वहां एक मध्यम अवस्था वाली स्त्री आई। कुमार ने पूछा तू कौन है? तो उसने आंखों में आंसू भर कर लम्बी २ सांस लेते हुए कहा—

इस स्थान से दक्षिण की ओर नन्दगांव में मेरा निवास है। यह फांसी में लगा हुआ मेरा पति है। निर्धन होने के कारण यह चोरियाँ करता था। एक दिन पकड़ा गया, राजा ने इसे फांसी की सजा दे दी। लोगों के मुंह से मालूम होने पर पति-मुख-दर्शन के लिये मैं आई हूं। तुम इसे इस प्रकार पकड़ कर क्या करना चाहते हो?

इधर वे दोनों मित्र भी अपने २ घोड़ों पर सवार होकर वहां जा पहुँचे, और उसके बंधनों को काट, जंगल से अपने नगर की तरफ ले चले। रास्ते में राजकुमारी ने कहा कि—क्या ये सब करतूतें देवर-महोदय की हैं? तब सुबुद्धि ने कहा, नहीं—ये सब करतूतें भाभी-रानी की हैं।

इधर आठ प्रहर का समय बीत जाने पर राजा स्वयं जंगल में गया। वहां उसे राजकुमारी पद्मावती न मिली इस दुःख से राजा का हृदय फट गया। अब बताओ यह पाप कन्या को, राजकुमार को, या मित्र सुबुद्धि को—इनमें से किस को लगा?

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कुमार ने कहा। मृतक मेरी समझ में तो राजा को ही लगा। कारण, कि उसने इतनी बड़ी कन्या को क्वाँरी ही क्यों रखी? दूसरे प्रकार से चारों व्यक्ति पाप के भागी हैं। कुमार के ऐसा कहते ही मृतक उसके हाथ से छिटक कर फिर बड़ में जा टंगा

इस प्रकार कुमार के भाषण से मुरदे ने तीनबार ऐसा किया। परन्तु कुमार ने भी हिम्मत न हारी और चौथीबार शव को बड़ से उतार ही लाया। मजबूती से

पकड़ कर ज्यों ही वह आगे बढता है, त्यों ही शव ने कहना शुरु किया—

कुमार ! राज-राजेश्वर होकर भी न मालूम क्यों इस योगी के चक्कर में फँस रहे हो ? योगी बड़ा दुष्ट है। कपटी है। तुम से वह अपनी साधना सिद्ध करना चाहता है। मैं तुम्हें सचेत कर देता हूं कि—कुमार ! अनजान में कहीं धोखा मत खा जाना।

मुरदे के वचन को सुनकर कुमार विचार में पड़ गया और सोचने लगा कि यह क्या कह रहा है ? इतने में वहां एक मध्यम अवस्था वाली स्त्री आई। कुमार ने पूछा तू कौन है ? तो उसने आंखों में आंसू भर कर लम्बी २ सांस लेते हुए कहा—

इस स्थान से दक्षिण की ओर नन्दगांव में मेरा निवास है। यह फांसी में लगा हुआ मेरा पति है। निर्धन होने के कारण यह चोरियाँ करता था। एक दिन पकड़ा गया, राजा ने इसे फांसी की सजा दे दी। लोगों के मुंह से मालूम होने पर पति-मुख-दर्शन के लिये मैं आई हूं। तुम इसे इस प्रकार पकड़ कर क्या करना चाहते हो ?

उत्तर देते हुए कुमार ने कहा। शुभे ! इसे मैं श्मशान में ले जा रहा हूँ। तब उसने कहा हे महापुरुष ! मुझे मेरे पति से अन्तिम प्यार कर लेने दो। कुमार ने कहा, जो चाहो सो कर लो। इस पर वह स्त्री चन्दन आदि से मुरदे को लेप करने लगी इतने में मुरदे ने उसकी नाक काट ली। वह रोती चिल्लाती अपने गांव की ओर चली गई।

कुमार ने मुरदे को लाकर योगी के पास रक्खा। शव को स्नान कराकर पुष्पादि से पूजा आदि करके कुंड के सामने बनाये मण्डल में सुला दिया। योगी स्वयं उसके सामने मुंह करके उसके सिर के पास बैठ गया। कुमार को मुरदे के पैरों की तरफ पीठ करके बिठला कर बोला 'हे धीर पुरुष ! मैं अपनी साधना का कार्य प्रारम्भ कर रहा हूँ। तुम पीछे की ओर मत देखना'।

कुमार अपनी अंग-रक्षा करके मजबूती से बैठ गया। योगी ने मन्त्र द्वारा १०८ चावलों को अभिमंत्रित करके मृतक पर फैंके। मृतक मंत्र-देवता के प्रभाव से कुछ उठा, पर गिर गया। कुमार तिरछी निगाह से यह सारा खेल देख रहा था। योगी ने फिर पहले की तरह अभिमंत्रित चावल मृतक पर डाले। पहिले की ही तरह कुछ उठ कर वह मुरदा फिर गिर गया।

योगी ने कुमार से कहा मित्र ! तुम किस विचार में डूबे हुए हो। तुम तो इस बात का ध्यान रक्खो कि योगि की साधना सिद्ध हो जाय। इस पर कुमारने कहा—जिन के मन वचन और कर्मों में एकता होती है उन्हीं की साधना सिद्ध होती है। तुम तन्मय हो कर साधना करते जाओ। मैं सावधान हूं।

इस के बाद योगी ने उसी विधान को तीसरी बार फिर किया। मगर मृतक में नाक की नोक का शल्य है, यह वह न जान सका। तब मंत्र का देवता उस मुरदे में प्रकट हो कर क्रोध से फुफकारता हुआ, शल्य को बाहर फेंक कर योगी से बोला—

अरे दुष्ट ! तू ने मुझे इस शल्य-युक्त-शव में उतारा, और इस सीधेसादे कुमार को भी तूने ठगा है। देख ! साधना कभी व्यर्थ नहीं जाती, अतः जा ! इस की जगह आज तू ही बलीका बकरा बन। ऐसा कहते हुए उस शवाधिष्ठित-देवने योगी को उठा कर जलते हुए अग्निकुण्ड में झोंक दिया। कुमार हा ! हा !! करता ही रह गया। योगी आग में पड कर सोने का पुतला बन गया।

कुमारने अपने साधक की रक्षा न कर सकने से पश्चात्ताप किया। बाद आग के शांत हो जाने पर उस

सुवर्ण-पूतले को बाहर निकाला और जमीन में गाड़ दिया। सुबह वह अपनी स्त्री से जा मिला। उसे अंजन योग द्वारा बंदरी से मानुषी बना दिया। फिर रात की सारी घटना कह सुनाई।

मदन सुंदरी ने विस्मित होकर पति से पूछा देव! इस सुवर्ण-पूतले का क्या प्रभाव है? कुमार ने कहा प्रिये! इस की पूजा करके चारों अंग काट लिये जायँ, और रात को ढक रखने से दूसरे दिन यह फिर तैयार-पूर्णांग हो जाता है। इस प्रकार जिसके पास यह सुवर्ण पुरुष हो वह धनवान हो जाता है, पर मेरा मन इसमें जरा भी रुचि नहीं रखता-क्यों कि इस के भोग-उपभोग से पहेले स्थूल प्राणातिपात विरमण-व्रत का एक तरह से खंडन हो जाता है। अतः दयालु पुरुषों के योग्य यह सुवर्ण-पुरुष नहीं है।

परस्पर में बात चीत करते २ प्रसन्न-मन दोनों पति-पत्नी आगे बढते गये।

३२

जहां सिंह दहाड़ते हैं। हाथी चिंघाड़ते हैं। रींछ और बंदर किलकारियां मार रहे हैं। बारासिंगे, हिरण, खरगोश सूअर इधर से उधर किलोल करते हुए स्वतंत्रता का आनन्द लूंट रहे हैं। ऊबड़ खाबड़ जमीन में रास्ते ऊंचे नीचे सांप की तरह निकल रहे हैं। आम नीम जामुन बड़ पीपल इमली बांबल सागून पलास महुए आदि के पेड़ अपनी आड़ में छाया में आश्रितों की रक्षा करते हुए परोपकार का पाठ जगत को मूक भाव से पढा रहे हैं। ऐसा विन्ध्याचल का पहाड गंभीर योगी के समान समाधि— में लीन हुआ खडा है। कहीं २ उसमें सुधा-मधुर शीतल जल के झरणे भी झर रहे हैं।

सूर्य की बाल किरणों कुमकुम बखेर रही है। उस समय विन्ध्याचल की आभा अनन्त गुणी उल्लसित हो

रही थी ऐसे ही प्रसंग में वीर शिरोमणि कुमार श्रीचन्द्र अपनी प्रियतमा मदन सुन्दरी को साथ लिये धीर गंभीर चाल से चलता हुआ उस पहाडी भूमी को पार कर रहा था। उस समय वहां एक स्तुति पाठक विदेशी कवि मौज में गाता हुआ जा रहा था, वह भी उनके साथ हो लिया, और सब को श्रीचन्द्र की यशो-गाथायें सुनाने लगा !

जयतु कुशस्थल पुर नगर, प्रताप सिह भूपाल।
सूर्यवती सुत जयतु जग, सिरि सिरि चन्द कृपाल ॥
राधा—वेधी निस्पृही, सुरतरु सम दातार ।
पर नारी के वन्धुवर, जय सिरिचन्द्र कुमार ॥
शून्य नगर कुण्डलपुरे, राक्षस मानी हार ।
नया बसाया चन्द्रपुर, जयसिरि चन्द कुमार ॥
परणी छोडी पदमणी, चन्द्रकला वरनार ।
लक्ष्मीदत्त पालित सुतन, जय सिरिचन्द्र कुमार ॥
विद्याधर विजयी हुए, जो चोरों का काल ।
'बुद्धि' सुलोचन वैद्यवर, जय सिरि चन्द दयाल ॥

श्रीचन्द्र ने कहा कविराज ! कहां से आरहे हो ? बन्दी ने कहा देव ! मैं कुण्डल पुर से आया हूं। वीणापुर जाता हूं। कुमार ने उसे भारी पारितोषिक दिया मदन सुंदरी ने कहा आपने अपना चरित्र नहीं सुनाया तो क्या हुआ। आज मैंने तो सुन ही लिया। कुमार ने कहा प्रिये ! तुम

योगी ने कुमार से कहा मित्र ! तुम किस विचार में डूबे हुए हो। तुम तो इस बात का ध्यान रक्खो कि योगि की साधना सिद्ध हो जाय। इस पर कुमारने कहा— जिन के मन वचन और कर्मों में एकता होती है उन्हीं की साधना सिद्ध होती है। तुम तन्मय हो कर साधना करते जाओ। मैं सावधान हूं।

इस के बाद योगी ने उसी विधान को तीसरी बार फिर किया। मगर मृतक में नाक की नोक का शल्य है, यह वह न जान सका। तब मंत्र का देवता उस मुरदे में प्रकट हो कर क्रोध से फुफकारता हुआ, शल्य को बाहर फेंक कर योगी से बोला—

अरे दुष्ट ! तू ने मुझे इस शल्य-युक्त-शव में उतारा, और इस सीधेसादे कुमार को भी तूने ठगा है। देख ! साधना कभी व्यर्थ नहीं जाती, अतः जा ! इस की जगह आज तू ही बलीका बकरा बन। ऐसा कहते हुए उस शवाधिष्ठित-देवने योगी को उठा कर जलते हुए अग्निकुण्ड में झोंक दिया। कुमार हा ! हा !! करता ही रह गया। योगी आग में पड कर सोने का पुतला बन गया।

कुमारने अपने साधक की रक्षा न कर सकने से पश्चात्ताप किया। बाद आग के शांत हो जाने पर उस

सुवर्ण-पूतले को बाहर निकाला और जमीन में गाड़ दिया। सुबह वह अपनी स्त्री से जा मिला। उसे अंजन योग द्वारा बंदरी से मानुषी बना दिया। फिर रात की सारी घटना कह सुनाई।

मदन सुंदरी ने विस्मित होकर पति से पूछा देव ! इस सुवर्ण-पूतले का क्या प्रभाव है ? कुमार ने कहा प्रिये ! इस की पूजा करके चारों अंग काट लिये जायँ, और रात को ढक रखने से दूसरे दिन यह फिर तैयार-पूर्णांग हो जाता है। इस प्रकार जिसके पास यह सुवर्ण पुरुष हो वह धन-वान हो जाता है, पर मेरा मन-इसमें जरा भी रुचि नहीं रखता-क्यों कि इस के भोग-उपभोग से पहेले स्थूल प्राणातिपात विरमण-व्रत का एक तरह से खंडन हो जाता है। अतः दयालु पुरुषों के योग्य यह सुवर्ण-पुरुष नहीं है।

परस्पर में बात चीत करते २ प्रसन्न-मन दोनों पति-पत्नी आगे बढते गये।

३२

जहां सिंह दहाड़ते हैं। हाथी चिंघाड़ते हैं। रींछ और बंदर किलकारियां मार रहे हैं। बारासिंगे, हिरण, खरगोश सूअर इधर से उधर किलोल करते हुए स्वतंत्रता का आनन्द लूट रहे हैं। ऊबड़ खाबड़ जमीन में रास्ते ऊंचे नीचे सांप की तरह निकल रहे हैं। आम नीम जामून बड़ पीपल इमली बांवल सागून पलास महुए आदि के पेड़ अपनी आड़ में छाया में आश्रितों की रक्षा करते हुए परोपकार का पाठ जगत को मूक भाव से पढ़ा रहे हैं। ऐसा विन्ध्याचल का पहाड़ गंभीर योगी के समान समाधि-में लीन हुआ खड़ा है। कहीं २ उसमें सुधा-मधुर शीतल जल के झरणे भी झर रहे हैं।

सूर्य की बाल किरणें कुमकुम बखेर रही है। उस समय विन्ध्याचल की आभा अनन्त गुणी उल्लसित हो

रही थी ऐसे ही प्रसंग में वीर शिरोमणि कुमार श्रीचन्द्र अपनी प्रियतमा मदन सुन्दरी को साथ लिये धीर गंभीर चाल से चलता हुआ उस पहाडी भूमी को पार कर रहा था। उस समय वहां एक स्तुति पाठक विदेशी कवि मौज में गाता हुआ जा रहा था, वह भी उनके साथ हो लिया, और सब को श्रीचन्द्र की यशो-गाथायें सुनाने लगा!

जयतु कुशस्थल पुर नगर, प्रताप सिंह भूपाल।
सूर्यवती सुत जयतु जग, सिरि सिरि चन्द कृपाल ॥
राधा—वेधी निस्पृही, सुरतरु सम दातार।
पर नारी के बन्धुवर, जय सिरिचन्द्र कुमार ॥
शून्य नगर कुण्डलपुरे, राक्षस मानी हार।
नया बसाया चन्द्रपुर, जयसिरि चन्द कुमार ॥
परणी छोडी पदमणी, चन्द्रकला वरनार।
लक्ष्मीदत्त पालित सुतन, जय सिरिचन्द्र कुमार ॥
विद्याधर विजयी हुए, जो चोरों का काल।
'बुद्धि' सुलोचन वैद्यवर, जय सिरि चन्द दयाल ॥

श्रीचन्द्र ने कहा कविराज! कहां से आरहे हो? बन्दी ने कहा देव! मैं कुण्डल पुर से आया हूं। वीणापुर जाता हूं। कुमार ने उसे भारी पारितोषिक दिया। मदन सुंदरी ने कहा आपने अपना चरित्र नहीं सुनाया तो क्या हुआ। आज मैंने तो सुन ही लिया। कुमार ने कहा प्रिये! तुम

अत्यन्त भोली दीखती हो। इस पृथ्वी में श्रीचन्द्र नाम वाले अनेकों व्यक्ति हैं। जिस किसी की प्रशंसा में मुझे ही वह मान लेना ठीक नहीं होता। मदनसुन्दरी ने कहा रहने भी दीजियें, इन बातों में क्या रक्खा है? क्या आप मुझे पागल ही समझ रहे हैं? क्या अब भी आप गुप्त रहने की ही चेष्टा करते रहेंगे? अपनी प्रियतमा की तिरछी चितवन के साथ कही हुई इस बात का उत्तर कुमार ने हंस कर ही दिया।

वीणापुर के मार्ग में जाते हुए एक राजकीय अधिकारी ने कुमार के पास चन्द्रहास खड्ग और चन्द्रमुखी ललना को देख कर ललचाये हुए भावों से कहा कि-जरा दीजियें तो, देखु, आप की तलवार कैसी है? यह सुन कुमार ने कहा महाशय जी! आप अपनी तलवार सम्हाल लें फिर मेरी तलवार का जौहर देखना।

फुर्तीले और बहादुरी भरे उसके वचन सुन कर वह जल भुन गया। वह जा कर अपने साथियों को बहका लाया। वे लोग मारो पकडो। बांध लो। अरे तलवार और स्त्री के चोर! अब तू भाग कर कहां जायगा? अब तो तू मरा ही समझ ले। इस प्रकार चिल्लपों मचाता हुआ उन उद्दण्ड आदमियों का टोला कुमार के पास आ पहूंचा।

कुमार श्रीचन्द्र पहिले से ही तैयार था वह सिंह की तरह गरज कर उन पर टूट पड़ा। कई मारे गये। कई अधमरे हो गये। कइयों के अंग उपांग कट गये। बाकी के बचे हुए भाग खडे हुए। भागते हुए वे लोग कहते जाते थे बाप रे! मार दिये। मरवा दिये, इस पापी ने। यह तो कोई विद्याधर है। नाहक इससे हमें भिड़ा दिया।

राज-कुमारी मदना अपने पति के सिंहनाद को, तलवार के हाथों को, और विरोधियों की तादाद को देख कर बहुत खुश हुई। उस में भी वीर-रस भर गया उसे वीरपत्नी होने का गौरव मालूम हुआ।

उस विरोधी टोले के भाग जाने पर अपनी प्रियतमा मदना से प्रसन्नता की बातें करता हुआ कुमार पहाड़ में ऊबड खाबड और टेढे मेढे मार्गों से कभी धीरे और कभी तेजी से चलता हुआ सिद्धपुर नगर में जा पहुँचा। वहाँ तीर्थभूत एक विशाल श्री जिन मन्दिर के दर्शन किये। वहां के प्रभाव से प्रेरित हो दूर दूर से लोग भगवान् श्री आदिदेव के दर्शन के लिए आते थे। वस्त्र अक्षत फलादिकों से अनेक प्रकार की पूजाएँ रचाई जातीं थीं। वहां के निवासी बनिये लोग भगवान् की पूजा में चढाये हुए द्रव्य को आपस में बांट लेते थे। देव-द्रव्य का उपभोग

रने से वे लोग निर्धन, सन्तति-हीन, निस्तेज दिखाई
ते थे। खानदान के खानदान तबाह होरहे थे। संख्या
दिन ब दिन घट रही थी। फिर भी वे अपनी इस आदत
से बाज़ नहीं आ रहे थे।

मदना और कुमार ने बड़े ही भक्तिभाव से जिन-
वंदना और जिन-पूजा की। बाहर निकल कर कुमार ने
मदना से कहा-सुनती हो! यह नगर अपने अन्न जल
लेने के योग्य नहीं है, क्यों कि यहां के सब लोग देव-
द्रव्य को खाने वाले हैं। यहां किसी का आतिथ्य स्वीकार
न करना ही हमारे लिए श्रेयस्कर है।

कुमार ने वहां उपस्थित बूढे मनुष्यों से पूछा कि
देव-द्रव्य खाने में आपको ग्लानि नहीं होती? देव-द्रव्य
ग्रहण करने की शास्त्रों में आज्ञा नहीं है। कहा है:—

जिण दव्वं भक्खंतो, अणंत संसारिओ होइ।

× × × ×

भक्खणे देव दव्वस्स, परित्थी-गमणेण य।
सत्तमं नरयं जंति, सत्तवारा उगोयमा!॥
देवद्रव्येण या वृद्धि-स्तेन द्रव्येण यद्धनम्।
तद्धनं कुल-नाशाय, मृतोऽपि नरकं व्रजेत॥

अर्थात्–देव-द्रव्य को खाने वाला जीव अनंत-संसार में भटकता है। देव-द्रव्य के खाने से, परस्त्री का गमन करने से, हेगौतम ! सातवार सातवीं नारकी में जीव को जाना पड़ता है। देव–द्रव्य से जो वृद्धि होती है, और उस द्रव्य से जो धन–संख्या होती है, वह धन कुल-नाश के लिये होता है। मर कर के भी देव-द्रव्य खाने वाला मनुष्य नरक में जाने वाला होता है।

इस शास्त्रीय-वचनों से कुमार ने सिद्धपुर--वासियों को देव-द्रव्य छोड़ने का उपदेश दिया। कई आदमियों ने देव-द्रव्य खाना छोड़ दिया। कईयों ने सोचेंगे कहकर कुमार को अपना अतिथि बनाना चाहा पर कुमार वहां न ठहर कर आगे के लिये प्रस्थान कर गया।

रास्ते के किसी पार्वतीय-गांव में उन दोनों ने शौचादि कार्यों से निवृत्त हो भोजन किया। दूसरे दिन वे वहां से चले। चलते चलते किसी बीहड़ जंगल में जा पहुँचे। शाम होने वाली थी। दिनभर चलते २ मदन-सुन्दरी थक गई थी। कुमार ने कहा–इसी बड़ के नीचे रात बिता ली जाय तो ठीक रहेगा। बड़ के नीचे कुमार ने घासफूस का बिछौना बनाकर रात बिताने के उद्देश्य से वहीं सोना तय किया। पहले दो पहर तक मदना

त्यन्त भोली दीखती हो। इस पृथ्वी में श्रीचन्द्र नाम
ाले अनेकों व्यक्ति हैं। जिस किसी की प्रशंसा में मुझे
ी वह मान लेना ठीक नहीं होता। मदनसुन्दरी ने कहा
हने भी दीजियें, इन बातों में क्या रक्खा है? क्या आप
मुझे पागल ही समझ रहे हैं? क्या अब भी आप गुप्त
रहने की ही चेष्टा करते रहेंगे? अपनी प्रियतमा को तिरछी
चितवन के साथ कही हुई इस बात का उत्तर कुमार ने
हंस कर ही दिया।

वीणापुर के मार्ग में जाते हुए एक राजकीय
अधिकारी ने कुमार के पास चन्द्रहास खड्ग और चन्द्र-
मुखी ललना को देख कर ललचाये हुए भावों से कहा कि-
जरा दीजियें तो, देखु, आप की तलवार कैसी है? यह
सुन कुमार ने कहा महाशय जी! आप अपनी तलवार
सम्हाल लें फिर मेरी तलवार का जौहर देखना।

फुर्तीले और बहादुरी भरे उसके वचन सुन कर वह
जल भुन गया। वह जा कर अपने साथियों को बहका
लाया। वे लोग मारो पकडो। बांध लो। अरे तलवार
और स्त्री के चोर! अब तू भाग कर कहां जायगा?
अब तो तू मरा ही समझ ले। इस प्रकार चिल्लपों
मचाता हुआ उन उद्दण्ड आदमियों का टोला कुमार के
पास आ पहूंचा।

कुमार श्रीचन्द्र पहिले से ही तैयार था वह सिंह की तरह गरज कर उन पर टूट पड़ा। कई मारे गये। कई अधमरे हो गये। कइयों के अंग उपांग कट गये। बाकी के बचे हुए भाग खडे हुए। भागते हुए वे लोग कहते जाते थे बाप रे! मार दिये। मरवा दिये, इस पापी ने। यह तो कोई विद्याधर है। नाहक इससे हमें भिड़ा दिया।

राज-कुमारी मदना अपने पति के सिंहनाद को, तलवार के हाथों को, और विरोधियों की तादाद को देख कर बहुत खुश हुई। उस में भी वीर-रस भर गया उसे वीरपत्नी होने का गौरव मालूम हुआ।

उस विरोधी टोले के भाग जाने पर अपनी प्रियतमा मदना से प्रसन्नता की बातें करता हुआ कुमार पहाड़ में ऊबड खाबड और टेढे मेढे मार्गों से कभी धीरे और कभी तेजी से चलता हुआ सिद्धपुर नगर में जा पहुँचा। वहाँ तीर्थभूत एक विशाल श्री जिन मन्दिर के दर्शन किये। वहां के प्रभाव से प्रेरित हो दूर दूर से लोग भगवान् श्री आदिदेव के दर्शन के लिए आते थे। वस्त्र अक्षत फला-दिकों से अनेक प्रकार की पूजाएँ रचाई जातीं थीं। वहाँ के निवासी बनिये लोग भगवान् की पूजा में चढाये हुए द्रव्य को आपस में बांट लेते थे। देव-द्रव्य का उपभोग

करने से वे लोग निर्धन, सन्तति-हीन, निस्तेज दिखाई देते थे। खानदान के खानदान तबाह होरहे थे। संख्या दिन ब दिन घट रही थी। फिर भी वे अपनी इस आदत से बाज़ नहीं आ रहे थे।

मदना और कुमार ने बड़े ही भक्तिभाव से जिन-वंदना और जिन-पूजा की। बाहर निकल कर कुमार ने मदना से कहा-सुनती हो! यह नगर अपने अन्न जल लेने के योग्य नहीं है, क्यों कि यहां के सब लोग देव-द्रव्य को खाने वाले हैं। यहां किसी का आतिथ्य स्वीकार न करना ही हमारे लिए श्रेयस्कर है।

कुमार ने वहां उपस्थित बूढे मनुष्यों से पूछा कि देव-द्रव्य खाने में आपको ग्लानि नहीं होती? देव-द्रव्य ग्रहण करने की शास्त्रों में आज्ञा नहीं है। कहा है:—

जिण दव्वं भक्खंतो, अणंत संसारिओ होइ।

× × × ×

भक्खणे देव दव्वस्स, परित्थी-गमणेण य।
सत्तमं नरयं जंति, सत्तवारा उगोयमा!॥
देवद्रव्येण या वृद्धि-स्तेन द्रव्येण यद्धनम्।
तद्धनं कुल-नाशाय, मृतोऽपि नरकं व्रजेत्॥

अर्थात्—देव-द्रव्य को खाने वाला जीव अनंत-संसार में भटकता है। देव-द्रव्य के खाने से, परस्त्री का गमन करने से, हेगौतम! सातवार सातवीं नारकी में जीव को जाना पड़ता है। देव—द्रव्य से जो वृद्धि होती है, और उस द्रव्य से जो धन—संख्या होती है, वह धन कुल—नाश के लिये होता है। मर कर के भी देव-द्रव्य खाने वाला मनुष्य नरक में जाने वाला होता है।

इस शास्त्रीय-वचनों से कुमार ने सिद्धपुर—वासियों को देव-द्रव्य छोड़ने का उपदेश दिया। कई आदमियों ने देव-द्रव्य खाना छोड़ दिया। कईयों ने सोचेंगे कहकर कुमार को अपना अतिथि बनाना चाहा पर कुमार वहां न ठहर कर आगे के लिये प्रस्थान कर गया।

रास्ते के किसी पार्वतीय-गांव में उन दोनों ने शौचादि कार्यों से निवृत्त हो भोजन किया। दूसरे दिन वे वहां से चले। चलते चलते किसी बीहड़ जंगल में जा पहुँचे। शाम होने वाली थी। दिनभर चलते २ मदन-सुन्दरी थक गई थी। कुमार ने कहा—इसी बड़ के नीचे रात बिता ली जाय तो ठीक रहेगा। बड़ के नीचे कुमार ने घासफूस का बिछौना बनाकर रात बिताने के उद्देश्य से वहीं सोना तय किया। पहले दो पहर तक मदना

सोती रही, कुमार जागता रहा। तीसरे पहर में कुमार सो गया और वह जागती रही। चौथे पहर में वह फिर सो गई। उस समय कुमार जाग रहा था। उत्तर-दिशा-की ओर से कुछ तीव्र प्रकाश दिखाई दिया। क्या यह किसी रत्न का प्रकाश है? यह क्या है? चलकर देखना चाहिए कौतुक के मारे कुमार प्रकाश की तरफ तेजी से चला पर वह प्रकाश कभी दूर, कभी निकट होता हुआ कुछ आगे बढकर एकाएक गायब हो गया। कुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ किन्तु उसे कोई इन्द्रजाल समझकर उन्हीं पैरों वापस लौट आया। सोयी हुई मदना से कुमार ने कहा—प्रियतमे! उठो। रात बीत चली है। भगवान् भास्कर उदयाचल के ऊँचे शिखर का स्पर्श कर रहे हैं। एक बार, दो बार, तीन बार आवाज़ देने पर भी जब कोई उत्तर न मिला तो उसने विशेष प्रयत्न किया, और उसे मालूम हुआ कि वह तो वहां है ही नहीं।

कुमार भौंचका सा रह गया फिर भी न घबड़ाते हुए, उसने बड़ी धीरज से उसे ढूढना शुरु किया मगर मदना के पैरों के निशान तक उसे दिखाई न दिये।

वह उसके वियोग में दुखी होकर पागलों की तरह इधर उधर घूम रहा था। अचानक उसे विचार आया

जब मैं उस प्रकाशपुञ्ज का पता लगाने गया था, तभी किसी ने पीछे से मेरी मदना का अपहरण किया है। वह अबला मदना मेरे बिना कैसे जीवन धारण कर सकेगी! हायरे विधाता! बेचारी के पीछे हाथ धोकर क्यों पड़ा है? अभी२ तो उसे विद्याधर के पंजे से बड़ी मुश्किल से छुड़ा पाया था, इतने में तू ने उस पर यह दूसरा दारुण वज्रपात कर दिया। सच है, तू क्या नहीं कर सकता?

यत्कदापि मनसा न चिन्त्यते, यत्स्पृशन्ति न गिरःकवे रपि।
स्वप्नवृत्तिरपि यत्र दुर्लभा, हेलयैव विदधाति तद्विधिः॥

अर्थात्—जिस बात का कभी मन में चिंतन नहीं होता, जिसे कवियों की कल्पना भी छू नहीं पाती, जहां स्वप्न की भी पहूँच नहीं होती उस काम को पूर्व-कृत कर्म रूप-विधि बना देती है।

संसार में किसके मनोरथ पूर्ण हुए हैं?। आदि से अन्त तक कौन सुखी रहा है? यह भी एक कसौटी है। कसौटी पर कस जाने पर ही सोने की कीमत होती है, वैसे इस प्रकार की घटनाओं के घटने से ही जीवन महान् जीवन बन जाता है, अस्तु, मुझे अपने पथ से विचलित न होते हुए मदना की प्राप्ति का उपाय करना चाहिये। इस प्रकार कुमार आगे बढता हुआ एक कनकपुर नाम के नगर में जा पहूँचा।

इधर कनकपुर-नरेश कनकध्वज दैवयोग से अपुत्र
ही परलोक सिधार गये थे। इसलिये उनके मंत्रियों ने
पंच दिव्य किये। तीन दिन नगर के बाहिर और भीतर
हाथी, घोड़ा छत्र, चँवर और कलश अधिकारियों के
साथ घूमते रहे। कुमार श्रीचन्द्र पर अभिषेक हो गया।
मंत्रियों ने उससे राजकुमारी कनकावली का विवाह करके
उसे राज्य-सिंहासन पर विराजमान कर दिया।

नगर में धूमधाम से सवारी निकली। प्रजाजनों ने
अभिनन्दन किया। कैदी छोड़े गये। विद्यार्थियों को
अनाथों को मिठाइयां बांटी गई। देव-मंदिरों में पूजा-
विधि संपन्न की गई। राजा श्रीचन्द्र प्रजा का पिता के
समान पालन करने लगा।

एक समय राजा से लक्ष्मण मंत्री ने प्रार्थना की कि
महाराज! आपके वंश-परिचय के अभाव में गीतों के
गाने में बड़ी अड़चन होती है। कुमार ने इस आग्रह का
निषेध करके गुणों को देखिये, बस इतना ही संकेत किया।

वीणापुर नरेश की कन्या का स्वयंवर होने वाला था।
लोग कनकपुर के रास्ते से वीणापुर जा रहे थे। गायना-
चार्य कलरवजी भी इसी रास्ते से आये थे। उन्होंने कन-
कपुर में 'श्रीचन्द्र प्रबन्ध' बड़े ठाठ से गाकर लोगों को

सुनाया। लोग सुनकर प्रसन्न हुए बहुतसा इनाम दिया। लोगों ने पूछा गायकजी ! क्या आपने श्रीचन्द्रकुमार-को देखा है ? उनने कहा मैंने तो नहीं मेरे चाचा ने देखा है, और कुमार से भारी दान भी प्राप्त किया है।

कुशस्थल-पुराधीश-प्रतापसिंह-भूपतेः।
सती सूर्यवती-सूनुः श्रीचन्द्रो जयताच्चिरम्॥

श्रीचन्द्र प्रबन्ध को सुनने के कारण से मंत्री आदि लोग रात्री में दरबार में न जा सके। प्रातः काल सभा में राजा ने पूछा आप लोग रात में न आये ? उनने कहा देव ! हम 'श्रीचन्द्र' नाम के एक पुण्य पुरुष का चरित्र सुन ने को रह गये थे। कुमार श्रीचन्द्र मुस्कराये।

लक्ष्मण मंत्री ने इस पर निश्चय किया कि ये ही वे श्रीचन्द्र कुमार हैं। जिनकी यशो-गाथायें हमने आज सुनी थीं। इस बात का प्रचार हो गया। लोग अपने तकदीरों की सराहना करने लगे, कि ऐसा पुण्य-पुरुष हमारा राजा बना है।

एक दिन महाराज श्रीचन्द्र घुड-दौड का आनन्द लेने, सेना के साथ उद्यान में पहुंचे थे। वहां उत्तम जाति के घोडों को अलग २ वेश से सजाया जा रहा था। इतने में पश्चिम की तरफ से घुटनों तक धूल से सने हुए,

सोती रही, कुमार जागता रहा। तीसरे पहर में कुमार सो गया और वह जागती रही। चौथे पहर में वह फिर सो गई। उस समय कुमार जाग रहा था। उत्तर-दिशा-की ओर से कुछ तीव्र प्रकाश दिखाई दिया। क्या यह किसी रत्न का प्रकाश है? यह क्या है? चलकर देखना चाहिए कौतुक के मारे कुमार प्रकाश की तरफ तेजी से चला पर वह प्रकाश कभी दूर, कभी निकट होता हुआ कुछ आगे बढकर एकाएक गायब हो गया। कुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ किन्तु उसे कोई इन्द्रजाल समझकर उन्हीं पैरों वापस लौट आया। सोयी हुई मदना से कुमार ने कहा—प्रियतमे! उठो। रात बीत चली है। भगवान् भास्कर उदयाचल के ऊँचे शिखर का स्पर्श कर रहे हैं। एक बार, दो बार, तीन बार आवाज देने पर भी जब कोई उत्तर न मिला तो उसने विशेष प्रयत्न किया, और उसे मालूम हुआ कि वह तो वहां है ही नहीं।

कुमार भौंचक्का सा रह गया फिर भी न घबड़ाते हुए, उसने बड़ी धीरज से उसे ढूढना शुरु किया मगर मदना के पैरों के निशान तक उसे दिखाई न दिये।

वह उसके वियोग में दुखी होकर पागलों की तरह इधर उधर घूम रहा था। अचानक उसे विचार आया

जब मैं उस प्रकाशपुञ्ज का पता लगाने गया था, तभी किसी ने पीछे से मेरी मदना का अपहरण किया है। वह अबला मदना मेरे बिना कैसे जीवन धारण कर सकेगी? हायरे विधाता! बेचारी के पीछे हाथ धोकर क्यों पड़ा है? अभी२ तो उसे विद्याधर के पंजे से बड़ी मुश्किल से छुड़ा पाया था, इतने में तू ने उस पर यह दूसरा दारुण वज्रपात कर दिया। सच है, तू क्या नहीं कर सकता?

यत्कदापि मनसा न चिन्त्यते, यत्स्पृशन्ति न गिरःकवेरपि।
स्वप्नवृत्तिरपि यत्र दुर्लभा, हेलयैव विदधाति तद्विधिः॥

अर्थात्—जिस बात का कभी मन में चिंतन नहीं होता, जिसे कवियों की कल्पना भी छू नहीं पाती, जहां स्वप्न की भी पहूँच नहीं होती उस काम को पूर्व-कृत कर्म रूप-विधि बना देती है।

संसार में किसके मनोरथ पूर्ण हुए हैं?। आदि से अन्त तक कौन सुखी रहा है? यह भी एक कसौटी है। कसौटी पर कस जाने पर ही सोने की कीमत होती है, वैसे इस प्रकार की घटनाओं के घटने से ही जीवन महान् जीवन बन जाता है, अस्तु, मुझे अपने पथ से विचलित न होते हुए मदना की प्राप्ति का उपाय करना चाहिये। इस प्रकार कुमार आगे बढता हुआ एक कनकपुर नाम के नगर में जा पहूँचा।

इधर कनकपुर-नरेश कनकध्वज दैवयोग से अपुत्र ही परलोक सिधार गये थे। इसलिये उनके मंत्रियों ने पंच दिव्य किये। तीन दिन नगर के बाहिर और भीतर हाथी, घोड़ा छत्र, चँवर और कलश अधिकारियों के साथ घूमते रहे। कुमार श्रीचन्द्र पर अभिषेक हो गया। मंत्रियों ने उससे राजकुमारी कनकावली का विवाह करके उसे राज्य-सिंहासन पर विराजमान कर दिया।

नगर में धूमधाम से सवारी निकली। प्रजाजनों ने अभिनन्दन किया। कैदी छोड़े गये। विद्यार्थियों को अनाथों को मिठाइयां बांटी गई। देव-मंदिरों में पूजा-विधि संपन्न की गई। राजा श्रीचन्द्र प्रजा का पिता के समान पालन करने लगा।

एक समय राजा से लक्ष्मण मंत्री ने प्रार्थना की कि महाराज! आपके वंश-परिचय के अभाव में गीतों के गाने में बड़ी अड़चन होती है। कुमार ने इस आग्रह का निषेध करके गुणों को देखियें, बस इतना ही संकेत किया।

वीणापुर नरेश की कन्या का स्वयंवर होने वाला था। लोग कनकपुर के रास्ते से वीणापुर जा रहे थे। गायनाचार्य कलरवजी भी इसी रास्ते से आये थे। उन्होंने कनकपुर में 'श्रीचन्द्र प्रबन्ध' बड़े ठाठ से गाकर लोगों को

सुनाया। लोग सुनकर प्रसन्न हुए बहुतसा इनाम दिया। लोगों ने पूछा गायकजी! क्या आपने श्रीचन्द्रकुमार-को देखा है? उनने कहा मैंने तो नहीं मेरे चाचा ने देखा है, और कुमार से भारी दान भी प्राप्त किया है।

कुशस्थल-पुराधीश—प्रतापसिंह-भूपतेः।
सती सूर्यवती-सूनुः श्रीचन्द्रो जयताच्चिरम्॥

श्रीचन्द्र प्रबन्ध को सुनने के कारण से मंत्री आदि लोग रात्री में दरबार में न जा सके। प्रातः काल सभा में राजा ने पूछा आप लोग रात में न आये? उनने कहा देव! हम 'श्रीचन्द्र' नाम के एक पुण्य पुरुष का चरित्र सुन ने को रह गये थे। कुमार श्रीचन्द्र मुश्कराये।

लक्ष्मण मंत्री ने इस पर निश्चय किया कि ये ही वे श्रीचन्द्र कुमार हैं। जिनकी यशो-गाथायें हमने आज सुनी थीं। इस बात का प्रचार हो गया। लोग अपने तकदीरों की सराहना करने लगे, कि ऐसा पुण्य-पुरुष हमारा राजा बना है।

एक दिन महाराज श्रीचन्द्र घुड-दौड का आनन्द लेने, सेना के साथ उद्यान में पहूंचे थे। वहां उत्तम जाति के घोडों को अलग २ वेश से सजाया जा रहा था। इतने में पश्चिम की तरफ से घुटनों तक धूल से सने हुए,

कंधे पर लाठी, और हाथ में जल-पात्र लिये हुए एक पुरुष आता हुआ दिखाई दिया। राजा श्रीचन्द्र ने अपने सिपाहियों को भेज कर उसे अपने पास बुलाया। पास पहुँचते ही उसने राजा को पहचान लिया। आगन्तुक-की आंखों में हर्ष के आंसू छलछला गये। शरीर पुल-कित हो गया।

जय श्रीचन्द्रकुमार जय, जय जय मेरे मीत!
छोड़ गये गुणचंद को, पाये प्रेम-प्रतीत॥

आ! हा!! हा!!! प्यारे मित्र गुणचन्द्र! तुम यहां कैसे आगये? दोनों अभिन्न-मित्र बड़े प्रेम से एक दूसरे से भेटे। वायु मण्डल में खुशी ही खुशी छा गई। उपस्थित मन्त्रियों, सेनापतियों, एवं पुरवासियों ने नृप-मित्र गुणचन्द्र का बड़े भावभरे शब्दों में स्वागत किया।

राजा श्रीचन्द्र ने बड़े सौहार्द-भाव से कुशल-प्रश्न पूछना प्रारम्भ किया। मित्र! कुशल तो हो? तुम अकेले इधर कैसे आये? कहां कहां होते हुए आ रहे हो? कुशस्थल कब छोडा था? माता-पिता तो कुशल हैं? मेरे चले आने के बाद वहां क्या २ घटनायें घटी? सब बातें सुनाओ—

गुणचन्द्र ने मित्र-दर्शन से गद्गद् होते हुए कहना शुरु किया—देव ! उस रोज दैनिक कार्यों की अधिकता से मै आपकी सेवा में न पहूंच सका। आपने विदेश-यात्रा की वात जरूर कही, पर आज ही यह सब हो जायगा ऐसा मुझे स्वप्न में भी ख्याल न था।

महाराजा के आमन्त्रण पर, सेठ साहब के खोज कर ने पर, आपका न मिलना एक अतर्कित घटना के रूप में घट गया। बस, फिर क्या था ? चारों ओर खोज शुरु हुई। आखिर में भाभीजी से मिला। उनके उदास चेहेरे से मेरी उदासी और आशंकायें और बढ गई। आपकी वात भी याद आगई। भाभी चन्द्रकलाजी ने कहा कि देवर ! आप को स्वामी इस लिये छोड़ गये हैं, कि आपके विना माता-पिता को बहुत कष्ट होगा। ऐसा जान कर वे अकेले ही प्रस्थान कर गये। आप इस वात का प्रचार न करें कि कुमार भाभी से कुछ कह कर गये हैं।

प्रियवर ! इस घटना से एवं आपके वियोग से मेरा हृदय बड़ा ही दुःखी हुआ। मैं ही क्यों ? महाराजा, महारानी, सेठ, सेठानी नागरिक जिसने भी आपके गुम होने की बात को सुना, सभी रोए कलपे, और दुःखी हुए।

उन्हीं दिनों वहां एक ज्ञानी-गुरुदेव पधारे उनने आपके जन्म की बातें कहीं। महारानी सूर्यवतीजी एवं

महाराजा आप के माता पिता हैं, एवं सेठ सेठानी पालक माता-पिता हैं इसका भी स्पष्टीकरण हुआ। उसी रोज सबको जय कुमार आदि की काली करतूतों का पता चला। उन्हीं गुरुदेव ने आपके उज्ज्वल-भविष्य का कथन किया। जिसे सुन कर हम सब आश्चर्य के साथ २ प्रसन्नता का भी अनुभव करने लगे।

गुण चन्द्र आगे कहता चला गया-एक दिन भाभी चन्द्रकलाजी पीहर पधारीं। महेन्द्रपुर के सुन्दर मन्त्री का कुशस्थलपुर में आना हुआ। उनके कहने से आपका पता लगा। कुण्डलपुर के विशारद मन्त्री भी आये। उनने भी अपने वहां की घटनायें कह सुनाईं। इन लोगों के कथन से महाराजा ने आप की भ्रमण-भूमि को जाना। निर्दिष्ट दिशा की ओर आप को खोजने के लिये सशस्त्र सिपाहियों को भेजा गया। धनंजय को मेरा भार सौंप कर मैं भी कुछ सिपाहियों को लेकर आप को ढूंढने निकल पड़ा। मैं कुण्डलपुर में चन्द्रलेखाजी से और चन्द्रमुखीजी से मिला। वहां से महेन्द्रपुर में सुलोचनाजी से हाल मालूम किये। कान्ती नगरी में प्रियंगुमंजरीजी से मैं सत्कृत हुआ। अपने सिपाहियों को इधर उधर गांवों में भेजता हुआ मैं इधर की ओर आ निकला हूं। मैंने सर्वत्र आपके यश की चर्चा सुनी। अभी २ एक यात्री से मैंने सुना, कि श्रीचन्द्र-कुमार

अद्भुत ढंग से यहां के राजा हुए हैं। मेरी प्रसन्नता क
पार नहीं रहा। मैं सब से आगे बढ गया। रास्ते
मेरा घोड़ा मर गया, उसकी परवाह न करते हुए
अकेला ही इस रूप में आ रहा हूं।

आज आप के दर्शन पाकर कृतार्थ हो गया हूं
आज मेरा सारा दुःख सुख रूपमें परिणत हो गया है
कुशस्थलपुर में आप के आने की आशा से गिन गि
कर दिन विताये जाते हैं। माताजी सूर्यवतीजी ने आ
के आगमन तक लड्डू-घी आदि का त्याग कर रक्ख
है। सभी लोग आप के आने की टोह लगाये हुए हैं
आप के वियोग दुःख से ही वे दुखी हैं। अन्यथा स
कुशल मंगल है।

उपस्थित मंत्रियों ने, नागरिकों ने गुण चन्द्र के मु
से ये सारे हाल जान कर भारी खुशी का अनुभव किया
सब लोगों ने गगन भेदी आवाज से जयघोष किया
राजा श्रीचन्द्र सब के साथ वहां से चल कर नगर
आये। गुणचन्द्र को प्रधान मन्त्री बनाया। पिछले
सिपाही भी धीरे २ सब आ पहूंचे—सर्वत्र प्रसन्नता क
वायु–मण्डल छा गया।

इस प्रकार पूर्व जन्म में किये तप के प्रभाव से श्रीचन्द्र
कुमार सुखभोग करने लगे। ठीक है, तप ही इस लोक में
और पर-लोक में सर्व-सिद्धि का प्रधान कारण होता है

२२

अद्यापि नोज्झति हरः किल कालकूट-
म्भोनिधि र्वहति दुस्सहवाडवाग्निम्।
कूर्मो विभर्ति धरणीं किल पृष्ठभागे,
ह्यङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ॥

अर्थात्—कवि सम्प्रदाय में कहा जाता है कि पिये हुए कालकूट जहर को महादेवजी ने नहीं थूका। दुस्सह वडवाग्नि को समुद्र वहन करता ही है। पृथ्वी को अपनी पीठ पे कछुवेने धार ही रक्खी है। वडे आदमी जो बात अंगीकार कर लेते हैं उसका अन्त तक पालन भी करते हैं।

राज्य सुख को भोगते हुए भी चरित्र नायक राजा श्रीचन्द्रकुमार मदन मंजरी को नहीं भूला था। अपने मित्र

गुणचन्द्र के साथ सलाह मशिवरा कर के राज्य का भार लक्ष्मण मंत्री को सौंप कर दो बढिया घोडों पर दोनों मित्र मदनमञ्जरी की खोज में एक रोज रातको चुप चाप निकल गये। घोड़े बड़ी तेजी के साथ बढे जा रहे थे। वीहड़ जंगल पार हुआ जाता था। वहां एक वृक्ष के नीचे एक अवधूत को आतिसार की बीमारी से पीड़ित देखा। दोनों मित्र वहीं रुक गये। परोपकार का स्थान जान कर पडोस के गाँव से औषधि लाकर श्रीचन्द्र ने उसका इलाज किया। स्नान मालिश आदि से उस अवधूत को कुमार ने सन्तुष्ट किया।

अवधूत ने प्रसन्न होकर कुमार की प्रशंसा करते हुए अपने पास से—लोहे का सोना बनाने वाला पारस-मणि उन्हें प्रदान किया। अवधूत का आयुष्य भी पूर्ण होने ही वाला था। उसकी मृत्यु हो जाने से कुमार ने गांव वालों को उस स्थान पर एक भारी अवधूत-मन्दिर बनाने का आदेश दिया और उसके योग्य धन भी दे दिया।

इस प्रकार परोपकार से पुण्य उपार्जन करते हुए दोनों मित्र जंगल में आगे बढ रहे थे। मार्ग में बांसों की झाड़ी में एक सौ आठ गांठोंवाला बांस उन्हें दिखाई

दिया। शास्त्र द्वारा बतलाये हुए गुणोंवाले सुपक्व और सीधे उस बांस को उन्होंने चीरा। उसमें से दो मोती निकले। कुमारने मित्र से कहा-दोस्त! यह बड़ा मोती नर और यह छोटा दाना नारी है।

नर नारी का जोडा ही संसार में अग्रगामी होता है। दोनों में एक दूसरे की रक्षा का भार बंटा हुआ है। अपन भी आज उसी कर्तव्य-भार से प्रेरित हुए आगे बढ रहे हैं। मदन मंजरी की अवस्था याद करता हूँ दिल बेचैन हो जाता है। उसे ढूंढ कर ही दम में दम लूंगा यही मेरी प्रतिज्ञा है, क्यों ठीक है न? गुणचन्द्र ने कुमार की कर्तव्य–परायणता सराहते हुए कहा अवश्य अवश्य।

इस प्रकार विनोद पूर्ण बातें करते हुए कुमार श्रीपर्वत नाम के एक उंचे और मनोरम पहाड़ की तलहट्टी में जा पहुँचे। अचानक उन्हें कोई स्त्री के करुण आक्रंदन की आवाज सुनाई दी। कुमार मित्र के साथ उसी ओर चले। वह शब्द उंचे से आ रहा था, कुमार भी उंचे चढे। वहां उनने एक भीलनी को रोते देखी। बहिन! क्यों रो रही हो? तब भीलनी ने कहा–इस पहाड़ का नाम श्रीगिरि है। यहां से थोडी ही दूर वीणापुर नाम का एक

नगर है। वहां पद्मनाभ नाम का राजा राज्य करता है। एक दिन राजा के यहां कोई सुवर्ण-घट की चोरी हो गई चोर के खोज यहां तक आये। सिपाहियों ने हम को यहां देख कर मेरे पति को पकड़ लिया। जब पद-चिह्न मिलाये गये तो उनमें बहुत अन्तर रहा, फिर भी मेरे पति को ही चोर मान कर राजा तंग किया करता है राजा का कहना है। कि तू सोनेका घडा ला नहीं तो तुझे फांसी लगादी जायगी। मालिक ! हम गरीब सोने का घडा कहां से लावें ?। मेरे पति को मारा जाता है, इस दुःख से मैं आज यहां रो रही हूँ। कुमार ने उस के पास पडे लोहे के घड़े को पारस मणि से छुआ दिया, वह सोने का हो गया। भीलनी को कहा कि ले लेजा, अपने पति को छुडा लेना। भीलनी खुश हो कर उन्हें आशीर्वाद देने लगी। मालिक ! भगवान् आपका भला करें। कुमार ने वहां जलाशय में स्नान और जल पान किया। भीलनी सुवर्ण कलश को लेकर चली गई।

इधर कुमार अपने मित्र के साथ आगे बढते हुए वीणापुर जापहुँचे। नगर के हाट-बाजर भव्य-प्रासाद जिना-लय आदि से परिष्कृत राज मार्गों को देखते हुए एक सुन्दर चबूतरे पर थकावट मिटाने के लिये बैठ गये।

पाठकों को याद होगा कुशस्थलपुर में पहिले
चन्द्र कुमार को देख कर भगवान के मंदिर में एक
रिका—मैना ने दूसरे जन्म में यह कुमार मेरा पति
, कह कर अनशन कर लिया था। उस मैना का जीव
कर वीणापुर के राजा पद्मनाभ की कन्या पद्मश्री नाम
हुई थी—वह अपनी अभिन्न-हृदया सखी मंत्री-पुत्री
मलश्री के साथ उद्यान-क्रीडा से निवृत्त होकर अपने
हल की तरफ आ रही थी। उसने गुणचन्द्र के साथ
मार श्रीचन्द्र को देखा।

विमलं कलुषीभवच्च चेतः,
कथयति पुरुषं हितैषिणं रिपुं वा।

हमारे सामने वाला आदमी हितैषी है, या दुश्मन
इस का पता निर्मल और मलिन होता हुआ हमारा मन
ही दे देता है। श्रीचन्द्र के दर्शन मात्र से पद्मश्री का
हृदय पद्म खिल उठा। उसने कुमार के पाण्डित्य को
देखने के लिये अपने महल में पहुंच कर चन्दन से भर कर
एक सुवर्ण का कटोरा अपनी दासी के साथ कुमार के पास
भेजा। कुमार ने अपनी कनिष्ठिका उंगली की अंगुठी
उतार कर चंदन में डाल कर उसे वापस कर दिया। दूसरी
बार कुमारी ने बिखरे हुए फूल एक रकेबी में सजा कर

भेजे। कुमार ने उनकी बढिया माला गूंथ कर वापस कर दी।

गुणचन्द्र यह सारी लीला देखता ही रह गया। उसने कुमार से पूछा मित्र! ये क्या बातें हुई ?। कुमार ने कहा सुनो—कुमारी ने हमें यह सूचित किया कि-यह नगर पहिले से ही श्रेष्ठ पुरुषों से भरा हुआ है फिर आप यहां कैसे समा सकोगे ? मैने समझा दिया कि अंगुठी में रत्न के जैसे हमें भी यहां स्थान मिल ही जायगा। फूल भेजने का मतलब यह था कि—फूलों की तरह हम अकेली हैं। उसका उत्तर मैंने दिया माला की तरह तुम भी सगुण और वांछित पुरुष वाली हो जाओगी।

इधर राज-कुमारी ने अपने भावों को जानने वाले सुन्दर स्वरूप वाले पूर्व जन्म से अभिलपित कुमार श्रीचन्द्र को मन ही मन वरण कर लिया। मंत्री पुत्री ने गुणचन्द्र को अपना स्वामी बना लिया। दोनों कन्याओंने अपने घरवालों से अपने भाव सूचित कर दियें।

उधर उस भीलनी ने वीणापुर के राजा को सुवर्ण-घट देकर—अपने पति को छुडा लिया। भीलने पूछा यह सुवर्ण-घट तुझे कैसे मिला तो उसने सारा हाल कह सुनाया। भील अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिये कुमार

को पदानुसरण करते हुए नगर के चबूतरे तक जा पहुंचा। कुमार से बड़ी अनुनय विनय करके अपने घर ले गया और उन दोनों को पके हुए बड़े बड़े आमके फल अर्पण किये।

कुमार श्रीचन्द्र ने पूछा-इन दिनों में-असमय में ऐसे आम कैसे और कहां से मिले? भीलने कहा मेरे राजा! इस पहाड़ के पांच शिखर हैं। उनमें ईशान शिखर सब से ऊंचा है। वहां विजयादेवी का मंदिर है। उसके बगीचे में देवी के प्रभाव से सदा फल देने वाला आम का पेड़ है। मैं वहीं से इन फलों को हमेशा लाता हूँ।

मालिक! पहाड़ में पहूँचने का केवल एक ही मार्ग है। सिवाय मेरे इस पहाड़ में जाने में कोई दूसरा समर्थ भी नहीं है। पुरखाओं से यही क्रम चला आया है। यह कितना कोश है? इसका उतार चढाव कहां कितना है? इसमें कहां २ गुफायें आदि देखने योग्य हैं? मैं यह सब जनता हूँ। अगर आपकी इच्छा हो तो आइयें आपको भी इस पहाड़ पर घुमा लाऊं।

मित्र के साथ कुमार श्रीचन्द्र भील के निवेदन करने पर उस पहाड़ पर गये। गुफायें, घाटियें, झरणे, शिखर, पेड़, लताएँ आदि अनेक दर्शनीय वस्तुओं को देखते

हुए विजया-देवी के मंदिर के पास जा पहुँचे। पहिले उनने थकावट उतारने को तालाव के स्वच्छ जल में स्नान किया। जल-विहार से थकान को मिटाकर। देवी के दर्शन किये। सदाफल नाम के उपवन में से भील ने समित्र कुमार के खाने के लिये अमृत के समान मीठे २ आम, अनार, केले, दाख, सेव, संतरे लाकर उपस्थित किये। मुखवास के लिये इलायची, लौंग, सुपारी जायफल, जावँत्री आदि लाया। शृंगार के लिये कमल चंपा, केवड़ा, चमेली, गुलाव, जुई, साटा, मोगरा आदि के फूलों का टोकरा भर कर सामने रखा। कुछ फूलों के हार-गजरे वने और कुछ योंही सूंघने को रखे गये।

भील की सहायता से भलीभांति पहाड़ का परिभ्रमण करके कुमार ने प्रसन्नता जाहिर करते हुए कहा कि-अवसर आने पर अधिष्ठात्री देवी के आदेश से यहां एक नगर वसाउंगा। जिन-भवन का भी निर्माण कराउंगा।

वाद में भील को समयोचित हितोपदेश देकर कुमार अपने मित्र के साथ आगे के लिये अपने घोड़ों पर रवाना दोनों सवार कष्टों की परवाह न करते हुए अपने घोड़ों को सरपट दौडाये जा रहे थे। उनके और घोड़ों के शरीर पसीने से तर हो गये थे। आखिर जानवर

ही तो ठहरे। बेचारे घोड़े थक कर चूर चूर हो गये। मुह से झाग निकलने लगे। घोड़े अपने आखिरी अद्वांश पर दौड़ रहे थे। यह देख उन दोनों ने लगाम ढीली छोड दी। घोड़े ठहर गये। वे दोनों उतर पड़े। पीठ सहलाते हुए पास ही के तालाब के तीर पर सघन पेड़ की छाया में विश्राम के लिये डेरा डाल दिया।

घोड़ों की जीन उतार दी गई। घोड़ों ने भी हिन हिनाते हुए अपनी थकावट को दूर की। कुमार ने पसीना सूखा कर निर्मल शीतल जल का पान किया। बाद पेड़ की छाया में कोमल घास के बिछोने पर लेट गये। उन्हें नींद आगई—

नींद में कुमार ने एक स्वप्न देखा कि—मेरु पर्वत पर कल्प वृक्ष की छाया में कोई अद्भुत स्त्री, मानो कोई कुल देवी, लक्ष्मी या सरस्वती हो बैठी हुई थी। उसने मुझे अपनी गोदी में उठा लिया। कुमार ने मित्र से कहा सखे! इस दिव्य स्वप्न का सुन्दर फल आज हमें जरूर मिलेगा।

इतने में जंगल में से व्यथित हरिणी की तरह चकित नेत्रों वाली दिव्य अलंकारों से देदीप्यमान लाल-वस्त्रों को धारण की हुई गर्भवती कोई सधवा स्त्री आती हुई

श्रीचन्द्र को दिखाई दी। वह हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ, उसके सामने गया, और-मातृ भाव से उसके चरणों में झुक गया। कुमार ने कहा माँ! आप इस प्रकार अकेली इस वन में कहां से आ रही हैं? उस आगंतुक संभ्रान्त महिला की दृष्टि कुमार की अंगुठी पर लिखे–'श्रीचन्द्र कुमार'–इस नाम की ओर गई तो उसने कुमार को पहचान लिया, उसके स्तनों से दूध की धारा छूट गई।

बड़ी प्रसन्नता से उस देवी ने पूछा बेटा! सेठलक्ष्मीदत्त के घर में प्रसिद्ध श्रीचन्द्र तुम्हीं तो हो न? चकित होकर कुमार ने उत्तर दिया जी हां–यह सुनते ही उसने श्रीचन्द्र को अपनी गोद में बिठा कर हर्ष के आंसुओं से नहलाती हुई कहने लगी।

ए मेरे आंखों के तारे! हिरदे के हार! ए मेरे लाडले बेटे! चन्द्रकुमार! आज मेरा जन्म सफल हुआ। मैं रानी सूर्यवती तेरी मां हूँ। तू मेरा बेटा है। पूर्व कर्मों की महिमा से तेरा मेरा बारह वर्षों वियोग हो गया था। बेटा! ज्ञानी गुरु के वचनो से आशा ही आशामें मैंने ये दुःख के वर्ष बीताये हैं। आज तेरा मिलना हुआ है। यों अपने बेटे का लाड प्यार करती हुई उसने पुत्रवती होने का सच्चा सुख उसी रोज अनुभव किया।

श्रीचन्द्र कुमार ने भी, विस्मित और प्रसन्न होते हुए
ा मातांजी आप का अंगज़ पुत्र होते हुए भी सैं सेठ के
कैसे गया ? और आप यहां कैसे पधारीं ? इन दो
तों का स्पष्टी करण कीजियें। बेटा ! जब तू गर्भ में था,
 तेरे पिता कुशस्थलाधीश युद्ध में पधारे थे। तेरे सौतेले
ई जयकुमार-आदि ने किसी निमित्त जानने वाले से जाना,
 राज्य-का उत्तराधिकारी तू होगा, तो तुझे मारने के
लये उनने ठान ली। मुझे मेरी सखियों से पता लग
या। गुप्त रीति से तेरा जन्म होते ही फूलों की टोकरी
 मालन के द्वारा तुझे मैंने बगीचे में पहूंचा दिया। सेठ
लक्ष्मीदत्त ने देवी के संकेत से फुलों के ढेर से तुझे अपने
घर ले जाकर अपना पुत्र प्रसिद्ध किया। चन्द्र पान के
दोहद से हमने तेरे लिये श्रीचन्द्र कुमार नाम तजवीज़
कर के यह अंगुठी बनवाई थी देख ! यह तेरी उंगली में
लगी हुई है।

लक्ष्मीदत्त के लेजाने के बाद हमारी सखियों ने
तुझे ढूंढा वहां तेरा पता ही न लगा। मेरे दुःखों का
पार नहीं था। उस दुःख में कुल देवी ने मुझे स्वप्न में
कहा कि किसी धनवान के घर तुम्हारा लालन पालन हो
रहा है। वहीं वह सुरक्षित रह सकेगा। तू चिंता मत कर।
देवी के कथन से मुझे कुछ शांति हुई।

वेटा ! इसी प्रकार एक ज्ञानी गुरु के मुँह से मालूम हुआ कि तेरा मेरा मिलाप वारह वर्ष में होगा धीरज से मैंने उस अत्यधिक कष्टमय समय को पार कि दैव योग से आज तेरा मेरा मिलना हो गया।

दूसरीवात—मेरा यहां कैसे आना हुआ ? उसे सुन ले। गर्भवती होने के नाते मुझे लाल रंग के पा में स्नान करने की उत्कट इच्छा हुई। महाराजा ने उस प्रवन्ध कर दिया। अपने वाग की एक सुन्दर वावडी गहरे लाल रंग से पानी को भी खून के समान लाल सुर्ख बना दिया गया मैंने उसमें दिलखोल कर खूब क्री की। जब मैं वाहर निकली तव मैं खून से तरवतर मां पिण्ड के समान दिखाई दे रही थी। इतने में कि भारण्ड पक्षी-की दृष्टि मुझ पर पड़ी उसने मुझे मांस पिण्ड के भ्रम-से पंजों में और चोंच में पकड एकद झपट से उठा कर आकाश में उडा ली।

उड़ते २ उसने मुझे जीन्दी जानकर कोई पूर्व पुण्य से यहां लाकर इस वनमें छोड़ दी—नमो आरिहंताणं—के ध्यान से मैं जीन्दा वची हूँ। रात तो मैंने पास की एक गुफा में बीताई और प्रातः काल होते ही वहां से निकल कर घूमती हुई इधर आई हूँ। यहां आज तुझे

पाकर मेरा सारा दुःख सुख रूप में परिणत हो गया है। मेरे लाल! आज मेरी तपस्यायें,-कठोर अभिग्रह,-भगवान का ध्यान,-गुरुदेवों की कृपा सब फलीभूत हुए हैं। गूंगे के गुड की तरह मैं आज के अपने इस आनन्द का वर्णन नहीं कर सकती। पुत्र! तुझे पाकर आज मैं पत्नी-प्रदत्त कष्ट को भी भूल चुकी हूँ। पर बेटा! एक नयी चिंता मुझे आतंकित कर रही है, वह यह कि-मेरे अचानक इस प्रकार गायब हो जाने से तेरे पिता को कितना असह्य-दुःख होता होगा?

इस प्रकार मां के स्नेह भरे बचनों को सुन कर कुमार कहने लगा—मां! आज आप के दर्शनों से मैं धन्य और कृतपुण्य हूँ। आज विना बादलों की वृष्टि हुई है, जो मैंने आज अपनी माता को पाया है। जननि! संसार में आप से बढ कर कोई वस्तु मुझे नजर नहीं आती। बड़े२ राज्य, सुन्दर पत्नियाँ, गुणवान्-मित्र, सर्वत्र विजय, अखूट वैभव, और भोग विलास की अपूर्व सामग्रियाँ ये सब आप की ही कृपा का फल मानता हूं। माँ! पिता से आपको दशगुणा गौरव प्राप्त है। हजार शिक्षक बालक जो शिक्षा नहीं दे सकते उसको गुणवती माता एक इशारे में दे सकती हैं। मैं कहां तक वर्णन करूं आपकी महिमा अनन्त है।

कुमार के चुप हो जाने पर गुणचन्द्र ने मां सूर्यवती को कुमार का सारा चरित्र कह सुनाया। अपने लाडले बेटे की उदारता दयालुता शूरता और विस्मयता भरे चरित्र को सुन कर महारानी बहुत प्रसन्न हुई।



३८

पूरब पुण्य प्रभावतें जंगल मंगल होय।
पुण्य करो संसार में पुण्य कियां सुख होय॥

पुण्यवान् पुरुष जहां जाते हैं, वहीं उन के लिये आनन्द मंगल होने लगते हैं। समुद्र उनके लिये क्रीडा सरोवर, सिंह उनके लिये सवारी, सांप उन के लिये फूलों की माला और विपत्तियाँ उनके लिये संपत्तियाँ बन जाती हैं जिन ने जीवन में धर्म की आराधना से पुण्य संचय किया हुआ होता है।

चरितनायक श्रीचन्द्र उन्ही पुण्यवान् पुरुषों में एक अनुपम पुण्य-पुरुष हैं। संपत्तियां उन्हें खोजती फिरती थीं। जंगल में अचानक माता का मिलाप होने

के साथ ही वीणापुर नरेश के सिपाही कुमार के पद चिह्नों की खोज करते हुए वहां आ पहूंचे।

सिपाहियों के साथ मंत्री बुद्धिसागर ने कुमार से प्रार्थना की—राजन्! वीणापुर की राजकुमारी पद्मश्री आप में और मेरी पुत्री आप के इन प्रधानजी में अनुराग रखने वाली हो गई हैं। हमारे राजा ने आप की खोज में मुझे भेजा है। सुनियें! नंदीपुर के स्वामी हरिषेण की पुत्री तारलोचना के भेंजे हुए शुक युगल को देख कर पिता की गोद में बैठी पद्मश्री मूर्छित हो गई। सावधान होने पर उसने कहा पिताजी! मैं पूर्व जन्म में कुशस्थल की महारानी सूर्यवती के पास कर्कोटजा सारिका थी। भगवान् श्री आदिनाथ के मन्दिर में श्री चन्द्रकुमार को पति रूप में पाने की इच्छा से अनशन कर यहां पैदा हुई हूँ। यहां मैंने उन्हीं कुमार को देखकर निश्चय किया है, कि अब इस भव में मैं उन्हीं को पति बनाउंगी।

इसी लिये राजाजी ने आपको खोजने के लिये हमें भेजा है। सौभग्य से आप यहां मिल गये हैं। राजन्! कृपा करके निज-चरण धूली से हमारे नगर को पवित्र कीजिये इतनमें वीणापुर नरेश अपनी पुत्री के साथ वहीं आ पहुँचे। बड़े अग्रह समारोह के साथ कुमार को वीणापुर में प्रवेश कराया।

माता की आज्ञा से पद्म श्री और नंदीपुर की राजकुमारी तारलोचना के साथ कुमार श्रीचन्द्र ने ब्याह कर लिया। गुणचन्द्र का विवाह कमल श्री के साथ होगया।

विवाह विधि सम्पन्न हो जाने पर कुमार ने उस बुद्धि सागर मन्त्री को अपने पिता महाराजा प्रतापसिंह के पास अपनी माता रानी सूर्यवती की कुशल-सुचना देने-के लिये सांढणी-सवारों के साथ भेजा, और कहा कि—कनकपुर में लक्ष्मण मंत्री को भी इस बात की सूचना दे देवें।

श्रीगिरि पहाड़ के उस भील ने राजा श्री चन्द्र को एक सोने की खान दिखलाई। प्रसन्नता से इसने वहां श्रीचन्द्र नगर बसाया। उस नगरके चारों ओर मजबूत किला बनवाया। बड़ी २ सड़कें, चौराहे, बाजार, मठ, मन्दिर, और हाट-हवेलियों से सम्पन्न उसे बनाया। बाग बगीचों कुओं और तालावों से उसे सुसज्जित किया।

श्री गिरि के मध्य भाग में श्री चन्द्र ने चार दरवाजों-वाला विशाल उन्नत सुवर्ण शिखरों से विराजित एक श्री जिन मन्दिर बनवाया। उसमें श्री चन्द्रप्रभ स्वामी की प्रतिष्ठा करवाई। आस पास के भयंकर जङ्गल को साफ

करवा कर नये नगर और पुरे बसाये। दान पुण्यों से, उत्सवों से, धर्मशाला, मन्दिर, विद्यालय, ज्ञान भण्डार, छात्रावास, अन्नक्षेत्र, औषधालय, उद्योग मन्दिर आदि नये निर्माणों से दुनिया में त्याग का एक आदर्श पैदा किया। सारा संसार उस परोपकारी धर्मात्मा राजा श्री चन्द्र के गुणों को गाने लगा।

कल्याणपुर से आये किसी यात्री ने एक रोज राजा श्री चन्द्र से कहा कि कनकपुर में आजकल बड़ी गडबड़ी चल रही है। वहां का राजा तो न जाने अपने राज्य भार को मन्त्री लक्ष्मण के कंधे पर डालकर कहीं चला गया है। लक्ष्मण पर गुणविभ्रम आदि छह राजाओं ने मिलकर चढ़ाई कर दी है। मंत्री लक्ष्मण यथाशक्ति अपनी फौज के साथ विरोधियों से टक्कर ले जरूर रहा है पर-घणा जीते रे लक्ष्मणा—वाली कहावत चरितार्थ हो जाय ऐसी सम्भावना है।

यह बात सुन कर राजा श्रीचन्द्र का मुह मारे क्रोध के तम तमा उठा। उनकी भुजायें फडकने लगीं। उन्होंने होठ काटते हुए मंत्री गुणचन्द्र से कहा तुम अभी पद्म-नाभ आदि राजाओं को सेना सहित साथ लेकर जाओ और शत्रुओं को अपनी करणी का फल चखा दो।

आज्ञा की ही देर थी। रण भेरी बज उठी। शंख-ध्वनि से दिशायें गूंजा उठी। रण बंके सैनिकों के अस्त्रशस्त्र सूर्य प्रकाश में झिलमिला उठे। पृथ्वी कांप उठी। घोडों-की टापों से उठती हुई धूल हाथियों के मद से शांत हुई। महाराज श्रीचन्द्र की जय के नारों से आकाश का पर्दा फटने लगा। राजा श्रीचन्द्र भी अपने तेजस्वी घोडे पर सवार हो कर प्रयाणोन्मुख सेना के सामने आकर खडे हो गये। सैनिकों ने फौजी ढंग से अपने महाराजा का अभिवादन किया। आज्ञा पाकर सेना ने आगे को कूच किया। महाराजा तीन पडाव तक साथ गये। गुणचन्द्र को अपना चन्द्रहास खड्ग दे कर श्रीगिरि की ओर वापस लौटे।

रास्ते में एक विशाल वट—वृक्ष की छाया में विश्राम के लिये सो गये पर किसी अतर्कित कारण से कुमार श्री चन्द्र को नींद नहीं आ रही थी। इतने में वहां कुछ जोगणियां उस बड पर बैठ कर कहने लगी—कुशस्थलपुर का राजा राणी के वियोग में जल मरेगा, चलो! देखने के लिये इसी वड़ पर बैठ कर उड़ चले—

कुमार ने भी फुर्ति से बड की खोखल में अपना आसन जमा लिया। बड़ उड़ा। कुशस्थलपुर के बाहिर

वह जमीन पर उतरा। अदृश्य रूप से जोगणियां और कुमार नगर की तरफ चले। रास्ते में मानवोंका समुद्र उमडता हुआ देखकर कुमार ने अवधूत का वेश बनाया और उस टोले में जा पहूँचा। वहां मंत्री आदि समझा रहे हैं पर महाराजा प्रतापसिंह अपनी गोत्र देवी के सामने धधकती आगमें—अपने आपको झोंकने की तैयारी कर रहे हैं।

उस समय बडी तेजी से ठहरो! ठहरो!! करताहुआ अवधूत वहां पहूँच गया। कहने लगा महाराज! आप अधीर न होइयें। महारानी पुत्र सहित सुरक्षित स्थान में विराजमान हैं थोडे ही दिनों में आप से मिल जायेंगी। उनके कुशल-समाचार तो आपको आठ ही दिनों में प्राप्त हो जायेंगे। आप आठ दिन और प्रतीक्षा करें।

मंत्रियों ने और नागरीकों ने भी यही राय दे कर के जोर दे दिया। राजा जलने से रुक गये। वापस नगर में पधारे! अवधूत को भी साथ ले लिया। योग की चर्चा होने लगी अवधूत ने अपने ज्ञान का खजाना खोल दिया। वह कहने लगा—महाराज!

योगश्चित्तवृत्ति-निरोधः

चित्त वृत्तियों के रोकने का नाम योग है। मूर्छित अवस्था में भी चित्तवृत्तियां रुक जाती हैं पर उसे योग

हीं कहा जा सकता। इसीलिये कुछ ज्ञानी आचार्य
परोक्त योग के लक्षण में-क्लिष्ट-पद को और जोड़ने
की सिफारिश करते हैं। अर्थात्—

योगः क्लिष्ट-चित्तवृत्ति-निरोधः

खराब चित्त वृत्तियों को रोकने का नाम योग है।

देखियें गुदा के मूल में चार पांखुड़ियों वाला एक
आधार चक्र है। लिंग के मूल में षट्कोण आकार का
स्वाधिष्ठान चक्र है। नाभि में दश पांखुड़ियों वाला मणि
पूरक चक्र है। हृदय में बारह पांखुडियों का अनाहत
चक्र हैं। कण्ठ और ग्रीव में-सोलह पांखुडियों का
विशुद्ध चक्र है। ललाट में बारह अक्षरों का आज्ञा
चक्र है।

महाराज के साथ राज-योग हठ-योग ध्यान धारणा
समाधि आदि योगांगों पर चर्चा करते हुए अवधूत ने
अपने ज्ञानी होने की आप बड़े सुन्दर ढंग से जमा दी।
इसीलिये कहा है-ज्ञानं सर्वत्रगं चक्षुः।

एक रोज जयकुमार आदि राजकुमार आपस में एक
षड्यंत्र कर रहे थे, कुमार ने अदृश्य रूप से सुन लिया।
वे कहते थे-विमाता सूर्यवती के मोह में महाराज मर जाते

तो राज अपना होता। पर उस अवधूत ने वच॥८५॥ अब न जाने क्या हो? महाराज के रहते अपन राजा नहीं बन सकते अतः लाख के घर में धोखे से महाराज को और इस शैतान के बच्चे अवधूत को जला देना चाहिये। सब ने ठीक है, करके दिन निर्धारित किया।

इधर श्रीचन्द्र ने बड़ी तेजी से लाख के घर के नीचे सुरंग तैयार करवादी और खुद महाराजा की रक्षा में सावधान हो गया। पांचवें दिन जय आदि राजकुमारों ने महाराजा से अनुरोध किया कि पधारियें कैसी अद्भुत कारीगरी हुई है। महाराजा गये गुप्त दरवाजे बंद किये गये। आग की लपटें निकलने लगी। महाराज ने कहा यह क्या? अवधूत ने कहा राज्य लोभी कुमारों की यह काली करतूत है, जो आपका प्राण लेना चाहते हैं। महाराजा किंकर्तव्य मूढ हो गये। अवधूत सावधान था ही-सुरंग द्वार खोलकर महाराज को निकाल लिये। वे अपने महल के ऊपरी भाग में चले गये। इधर जयकुमार ने भाइयों के साथ राजसभा में प्रवेश करके सर्वत्र कब्जा करलिया, और खुद राजा की जगह आ बैठा शहर में सन्नाटा छा गया। मंत्री हतबुद्धि होगये। चारों ओर हाहाकार मच गया।

महाराजा प्रतापसिंह ने अवधूत की सलाह से अपने अंग रक्षक सैनिकों को बुलाया। सैनिक महाराज को जीवित देख बड़े प्रसन्न हुए, और उन्होंने महाराज की आज्ञा से जय आदि राजकुमारों को गिरफ्तार करलिया। महाराजा राजसभा में आये। अधिकारीगण विस्मित और हर्षित हुए। महाराजा ने अवधूत से कहा—आपने मेरे प्राण बचाकर के आभारित किया है। मेरा आधा राज्य ग्रहण करके मुझे उऋण बनाइयें। पर वह लेने को तैयार नहीं होता। ठीक ही कहा है किसी ने—

मंगतों की मंगतों से सगाई
वे मांगते हैं वे देते ही नहीं।
बड़ों की बड़ों से सगाई
वे देते हैं वे लेते ही नहीं॥

इधर सातवें दिन सांढनियों की सेना के साथ मंत्री बुद्धिसागर कुशस्थलपुर में आ पहुंचे। महाराज की आज्ञा से उनका राजसभा में प्रवेश हुआ। स्वागत सत्कार के बाद मंत्री बुद्धिसागर ने साथ लाये हुए पत्र महाराजा के सामने पेश किये और कहा कि—महाराज! मैं आपके पुत्र राजा श्रीचन्द्र का मंत्री हूं। वीणापुर से आया हूँ। वहां महारानी सूर्यवती जी अपने पुत्र के साथ सकुशल हैं।

प्रधान मंत्री गुणचंद्र भी वहीं है। उन्हीं के कनकपुर राज्य के मंत्री लक्ष्मण से मिलकर आ रहा हूँ। अभी वहां युद्ध चल रहा है। इसके बाद उसने राजा श्रीचंद्र और मंत्री गुणचंद्र के विवाह आदि का भी जिक्र किया।

महाराजा ने सेठ आदि के पत्रों को अलग अलग देकर अपना पत्र पढना शुरु किया। पुत्र की पत्र-लेखन की चतुराई व युक्तियों से वे बहुत प्रसन्न हुए। कवि हरिभट्ट ने श्रीचन्द्र की जीवन घटनाओं को गा गाकर सुनाया। महाराजा ने भी अपने पुत्र और पत्नी के समाचार पाकर भारी प्रसन्नता का अनुभव किया। नगर में कई महोत्सव हुए। गुप्त वेश में वहीं बैठा हुआ कुमार श्रीचन्द्र बहुत प्रसन्न हुआ। धनंजय को कुमार का संदेश था कि चंद्रकला को अपने पीहर से लिवा कर श्रीगिरि पहुँचा देना। ऐसी आज्ञा को पाकर धनंजय शीघ्र ही वहां से चला और रानी चंद्रकला को उनके पीहर से श्री पर्वत पर पहुँचाने गया।

इस प्रकार कुशस्थलपुर में सर्वत्र खुशी का साम्राज्य छा गया।

—❀o❀—

३५

वसन्त का समय था। आमों पर मँजरियाँ आ रही थीं। उनके रसास्वाद से उन्मत्त होकर कोकिलाएँ पंचम स्वर में आलाप कर रहीं थीं। पतझड़ की समाप्ति से पेड़ों की डालियां में नई नई कोंपलें अपने रंग बिरंगी गुच्छों के साथ बनश्री की शोभा को अनंत रूप से प्रदर्शित कर रही थी। प्राणी मात्र के जीवन में नई उमंगे, नई नई आशाओं के साथ तरंगित हो रहीं थी। ऐसे ही समय में कुशस्थलपुर के राजा का जयकलश नाम का मुख्य हाथी किसी कारण से मदोन्मत्त हो गया। वह अपने बंधनों को तोड़कर और महावत को मारकर शहर में पील पड़ा। उसने नगर में छकड़ों और घोड़ा-गाड़ियों को उलट दिया। दुकानें उजाड़ दी। सामने आने वालों को कुचल

दिया। सर्वत्र शहर में खलबली मच गई। लोगों की चीख पुकार सुनकर राजा बड़ा दुखी हुआ और अपने सिपाहियों को हुक्म कर दिया—जाओ, दौड़ो। जैसे बने हाथी को वश में करलो। पकड़ लो।

सिपाही दौड़े। उनको देख हाथी विशेष कुपित हुआ। सारे नगर को उसने तहस नहस कर दिया। सबको कुचलेता हुआ वह राजद्वार की ओर आ धमका। सबको अपने जीवन की लगी थी। हाथी के मुकाबले में कोई नहीं आ रहा था। ऐसी अवस्था में अवधूत वेश धारी श्री चंद्र कुमार हाथी के पास गया। सब लोग चिल्लाने लगे। राजा ने भी मना किया। कुमार ने एक की भी न सुनी। उस मद्मस्त गजराज के पास जाकर, अपने वस्त्र से उसे अधिक कुपित किया। बाद में हाथियों की शिक्षा में निपुण उस अवधूत वेशधारी श्रीचन्द्र ने हाथी को अपने वश में कर लिया। सब के, देखते २ बड़े मजे से वह उसके कंधे पर जा बैठा। हाथी ने उसे अपनी पीठ से गिराने की बहुत कोशिश की मगर वह अपने स्थान पर डटा ही रहा हाथी उसे बल पूर्वक जंगल में ले भागा! तीन दिन के बाद वह मद रहित होकर शांत हो गया। किसी पहाड़ की तराई में आये हुए तालाब में जल पीने की इच्छा से कुमार नीचे उतरा। तालाब में नहा धोकर,

प्यास बुझाकर उसने अपने असली वेश को धारण किया। अनन्तर प्यार से पुचकारते हुए, कुमार उसके पैरों के सहारे उसकी पीठ पर जा बैठा।

महाराजा प्रतापसिंह अपनी सेनाको लेकर हाथी के पीछे गये सारी रात श्री चंद्र को सब ओर ढूंढा पर वह उन्हें कहीं मिला ही नहीं। आगे पहाड़ी प्रदेश में उसके खोज भी न मिले। महाराज को अपने सर्वश्रेष्ठ हाथी के चले जाने का उतना कष्ट नहीं हुआ, जितना अवधूत वेशधारी कुमार के चले जाने का हुआ वे कहने लगे— अरे! मुझे प्राण दान देने वाला वह ज्ञानी कितना सच्चा और उपकारी था। मैं तो उसका कोई बदला नहीं चुका सका!। महाराज उसके गुण स्मरण करते हुए कुशस्थल में लौट आये।

इधर उस गजराज की पीठ पर चढा हुआ। कुमार श्रीचन्द्र आनन्द से वन-विहार कर रहा था। पास की पहाडी पर भीलों की एक पल्ली थी। पल्लीपति ने उस को देखतेही पकडने की इच्छा से भील सेना के साथ आकर उसे घेर लिया। जोर से धमकाते हुए वह कहने लगा अरे तू कौन है? कहां जायगा? यहां क्यों आया है? साथ ही भीलोंने बाण बरसाना शुरु कर दिया।

कुमार अपने को वाणों से बचाता हुआ, हाथी द्वारा उखाड़ कर दी हुई वृक्ष शाखाओं और पत्थरों से उन भीलों को मार भगाया।

भीलों को भगा कर तेजस्वी कुमार श्रीचन्द्र एक सघन पेड की छाया में विश्राम करने लगा। वहां कहीं से वन विहार करती हुई भील कुमारीकाएं आ पहुँची। भील राज की कन्या मोहिनी कुमार को देखते ही मोहित हो गई। उसने अपने बाप से जाकर कहा कि—पिताजी! मैं तो उस हाथीवाले बहादुर पति को ही स्वीकार करती हूँ। किसी दूसरे को पाने की इच्छा अब है ही नहीं।

भिल्लराज अपनी इकलौती बेटी की इच्छा का ख्याल करके विनीत वेश में कुमार के पास पहूँचा। कहने लगा महापुरुष! आप महान् हैं। हमारे अपराधों के लिये क्षमा करें। इस मेरी पुत्री को स्वीकार कर मुझे आभारी करें। कुमार ने कहा-जब तक आप का डाकुओं का व्यवहार बना रहेगा तब तक मैं आपसे अपना संबंध जोडना ठीक नहीं समझता। नीति दुष्कुल से भी स्त्री रत्न को स्वीकारने की प्रेरणा करती है पर मेरे सम्बन्धी हो कर आप डाकू बने रहें यह मेरी शान के खिलाफ बात मानता हूँ। अतः मैं आपकी प्रार्थना मंजूर नहीं कर सकता।

भीलराज ने कहा कुमार ! परिस्थितियां ही मनुष्य को डाकू बना देती हैं। डाकू बन जाने पर भी क्या हमारे पास दिल नहीं होता ? मैं खुद इस धंधे से नफरत करता हूँ, पर क्या करूं लाचार हूँ। पारस को छू कर लोहा जैसे सोना बन जाता है वैसे आप के प्रसंग से मेरा यह पाप भी छुट जायगा ऐसी मेरी दृढ धारणा है। आप मेरी प्रार्थना को न ठुकरायें।

भावी लाभ को जानकर कुमार ने कहा कि यदि आज से आप दस्यु-वृत्ति का त्याग करते हैं, तो आपकी कन्या-से विवाह करने में मुझे भी एतराज़ नहीं है। पल्ली-पति बड़ा प्रसन्न हुआ, उसने भीलों के साथ डकेती, चोरी, आदि के धंधे का सर्वथा त्याग कर दिया। बड़ी धूम-धाम से कुमार के साथ मोहिनी का विवाह हो गया। दहेज में हाथी, घोड़े, रथ दास दासी मणि-रत्न आदि अपूर्व वस्तुए भीलराजा ने कुमार श्रीचंद्र को दीं। उस-में अपना सुवेग रथ और उन दिव्य घोड़ों को देख कर कुमारने पूछा ये आपके हाथ कैसे लगे ? भीलराज ने कहा गायक वीणारव हमारे धावे में इन घोड़ों समेत इस रथ को छोड़ भागा था। तभी से यह हमारे कब्जे में है. जब से ये घोड़े आये हैं तब से बहुत दुखी हैं। रातदिन इन की आँखों से आंसू बहते हैं। देखो न ?

इन की आँखें कैसी हो रही हैं। कुमार ! बेटी मोहिनी को दहेज में देने के लिये ही यह मेरा संग्रह है।

भील्लराज के साथ कुमार घोड़ों के पास गया। घोड़े मारे हर्ष के हिनहिना ने लगे अपने सच्चे स्वामी को पहचान कर उनकी कली २ खिल उठी पल्ली-पति ने कुमार से पूछा कुमार ! इनकी इतनी प्रसन्नता का क्या कारण है ? कुमार ने कहा—भीलराज ! यह सुवेग रथ और ये वायुवेग और महावेग नाम के घोड़े मेरे ही हैं, मैंने ही जयकुमार के षड्यन्त्र से अनजान वीणारव की याचना पर इन्हें दे दिया था। आज ये मुझे पहचान कर खुशी जाहिर कर रहे हैं। ऐसा कह कर कुमार श्री चन्द्र ने प्यार से पुचकारते हुए घोड़ों की पीठ पर हाथ फेरा और उन्हें थपथपाया घोड़ों ने नया जीवन पाया। भील्लराज भी खुश हो गया।

कुमार ने कहा पल्लिपति ! आपका यह सारा दहेज और मेरा यह हाथी अब आप ही संभालें। अभी तो मैं सीर्फ इस रथ को ही लेता हूं। उनने भीलराज के सिपाहियों में से कुंजर नाम के एक क्षत्रिय कुमार को अपना सारथी चुना। अपनी नाम मुद्रिका दिखाते हुए अपना संक्षिप्त परिचय भी दे दिया। यह श्रीचन्द्र कुमार है ऐसा जानकर भीलराज बडा ही खुश हो गया।

कुमार ने पल्लिपति और भीलों को लक्ष्य करके कहना शुरू किया—आप लोग ? कमसे कम आठम चौदश अमावस्या और पूर्णिमा इन चारों पर्वों में हिंसा आदि कतई न करें। पर्व तिथि में आनेवाले भव का आयुष्य पडता है। शास्त्रों में कहा भी है—

अट्ठमी चउद्दसी पुण्णिमाय, तह मावासा हवइ पव्वं।
मासम्मि पव्व-छक्कं, तिन्निय पव्वाइं पक्खम्मि॥
चतुर्दश्यष्टमी चैवा-मावास्या चैव पूर्णिमा।
पर्वाण्येतानि राजेन्द्र ! रवि संक्रान्ति रेवच॥
तैल-स्त्री-मांस भोगी स्यात् पर्वस्वेतेपु य· पुमान्।
विण्मुत्र—भोजनं नाम-प्रयाति नरकं मृतः॥

अर्थात्-आठम चौदस अमावास्या पूर्णिमा दूज पंचमी और एकादशी महीने में ये छह और पक्ष में तीन बड़े पर्व होते हैं। विष्णु पुराण में कहा है कि-उपर बताये दिन और रवि संक्रान्ति का दिन ये पर्व माने जाते हैं। इन पर्वों में तैल स्त्री और मांस का भोग करने वाले टट्टी—पिसाब का भोजन करते हुए मर कर के नरक में जाते हैं।

जीव की रक्षा करने में ही हमारी रक्षा है, हमारी भलाई है। सभी जीवित रहना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। सभी शास्त्रों का एक ही उपदेश है

किसी जीव को मत सताओ। अगर सताओगे तो सताये जाओगे। कोई अपना सताया जाना पसंद नहीं करता, तो दूसरों को भी नहीं सताना चाहिये। अभयदान सब दानों से श्रेष्ठ-दान है। अहिंसा, इंद्रीय-दमन-क्षमा, सचाई, ज्ञान, ध्यान और तप ये आठ बातें असली पुण्य है। इन्ही से देवता भी प्रसन्न होते हैं।

महानुभावों! अभक्ष्य भक्षण करने से भी बड़ा भारी पाप होता है। मांस और शराब दोनों ही जीवन को गिरानेवाले हैं। शराबियों को कोई हिताहित का ज्ञान नहीं रहता। उनमें पवित्रता तो नाम मात्र को भी नहीं होती। उन की स्त्रियां बाल--बच्चे दुखी होते हैं। शराबी बेहोश होकर गिरता है तब उसके मुह में कुत्ते मूत जाते हैं। बडी बेइज्जती होती है। शराब से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।

मज्जे महुम्मि मंसंमि-नवणीयम्मि चउत्थए।
उप्पज्जंति असंखाय-तव्वण्णा तत्थ जंतुणो॥

शराब में, शहद में, मांस में, और मक्खन, में असंख्याते त्रस-चलते फिरते जीव उसी वर्ण के पैदा होते हैं। अतः दयालू पुरुषों को विवेक से काम करना चाहिये।

अस्तं गते दिवानाथे आपोरुधिर मुच्यते ।
अन्नं मांस-समं प्रोक्तं मार्कण्डेय महर्षिणा ॥

सूर्य-अस्त हो जाने पर पाणी पीना एक प्रकार से खून पीने जैसा होता है, और अन्न खाना मांस खाने जैसा ऐसा मार्कण्ड महर्षि ने बताया है ।

आप लोगों से मेरा अंतिम कहना यही है, कि अगर आप लोग अपना भला चाहते हैं, तो चौरी, डकैती, जीव-हिंसा, मांस-भक्षण, मद्य--पान आदि का सर्वथा त्याग कर देना । अभी तो मुझे जाना है, वापस आउंगा तब सारी दहेज-सामग्री को और आपकी कन्या-को मैं ले जाउंगा ।

कुमार की हित की बातें सुन कर सभी लोग बड़े खुश हुए, और उस रोज से चोरी डकैती के नियम लेकर अपने आप को दुर्गति से बचाया, और धर्म के अधिकारी हो गये । कुमार श्री चन्द्र मदनसुंदरी की खोज में एक दिन वहां से अपने सुवेग रथ में निकल गये ।

कल कल करती गिरि-नदी वह रही थी । नावों में लोग हवा खोरी का मजा लूंट रहे थे । धोबी कपडे धोने में और दूसरे लोग न्हाने धोने में लगे हुए-गंगा

गोदावरी नर्मदा आदि का नाम लेकर अपनी ठंडी भगा रहे थे। हमारा चरित नायक कुमार श्रीचन्द्र उस भील-पल्ली से पार होता हुआ नदी के कीनारे हवा के साथ बातें करता हुआ शाम होते २ कुण्डिन पुर जा पहुंचा।

नगर के बाहरी उपवन में विश्राम के लिये डेरा डाल दिया। पडोस में ही एक यक्ष का मंदिर था। उस में सोने की व्यवस्था की गई। कुमार प्रसन्नता से सो रहा था। कुछ समय के बाद कोई राजकुमारी सरस्वती अपनी सहेली सुनामिका और सुरुपिणी को साथ लिये विवाह की सामग्री लेकर वहां आ पहुंची। उन्होंने अवाज लगा कर कहा कि-मंत्रीपुत्र श्रीदत्त! उठो व्याह के लिये तैयार हो जाओ। वहां मंत्रीपुत्र तो कोई था नहीं। श्रीचन्द्र ही था वह उठ बैठा और बिना चूं चपट किये चुपचाप व्याह कर लिया। विवाह करके कुमार जब सोने लगा तो उन कन्याओं ने कहा स्वामिन्! बाहर सांढनी खड़ी है, चलियें यहां से कहीं अन्यत्र चलें। इस पर कुमार ने कहा अभी रात्री है। मैं चल नहीं सकता, न मुझे सांढनी पर बैठने का ही अभ्यास है। चुपचाप सो जाओ गड़बड़ मत करो।

उन कन्याओं ने आश्चर्य के साथ देखा कि अरे ! यह तो कोई अजनबी आदमी से हमारा ब्याह हो गया। हमारा पूर्व संकेतित मंत्रि-पुत्र श्रीदत्त का तो यहां पता भी नहीं। उन्होने पूछा अजी ! आप कौन हैं ? तब कुमार-ने कहा मैं कुशस्थल से आया हूँ, तुम कौन हो ? तुम यहां से अन्यत्र क्यों चलना चाहती हो ? कुमार के ऐसा पूछने पर उनमें से एकने कहा—

हे आर्य ! इस नगर के स्वामी राजा अरिमर्दन की ये राजकुमारी हैं। ये सदा यक्ष की पूजा करती हैं एक समय गोद में बैठी हुई राजकुमारी को देख राजाने अपने मंत्रियों से पूछा कि बताओ ! इसके योग्य—वर कौन हो सकता है ? इसी प्रसंग में किसी बंदिने कहा—

कुशस्थल नरेश महाराज प्रतापसिंह के कुमार श्रीचंद्र जो परिस्थिति के वश एक सेठ के घर बडे हुए हैं, वे बड़े त्यागी और अति-योग्य हैं,। पर वे अभी अपने पालक पिता सेठ लक्ष्मीदत्तसे नाराज हो कर विदेश—यात्रा कर रहे हैं। अगर वे राज कुमारी के पति हों तो सोने में सुगंध हो जाय। यह सुन राजा तो चुप हो गये। पर राजकन्या सरस्वतीजी इसी उधेड़ बुन में अपने इष्ट यक्ष की मनौती करने लगीं। एक समय रात्री में यक्ष ने, कहा,

राजकुमारी ! आज से पांचवें दिन मैं अपने मन्दिर में रात्री के समय लग्न वेलामें तुम्हारे पति को ले आउंगा।

सुवह होने पर अपने स्वप्न को राजकुमारी ने बडी प्रसन्नता से हमें कह सुनाया। स्वप्न की बात जान कर हमने जो कुछ किया इसको भी आप सुनियें—

इसी नगरी में श्रीदत्त नाम का एक मंत्री पुत्र रहता है। उसने राजकुमारी के रूप-गुणों से अकृष्ट होकर इनकी प्राप्ति के लिये कई उपाय किये। किन्तु राजकुमारी तनिक भी उसे नहीं चाहती थी। उसने मुझे लोभ दे दिया, मैं उसके फंदे में फंस गई। मैंने राजकुमारी का स्वप्न उससे कह दिया। उसने मुझे बताया कि तुम जाकर राजकुमारी को यह कह दो कि मंत्री कुमार श्रीदत्त को भी ऐसा ही स्वप्न आया है। मैंने वैसा ही किया और राजकुमारी को जाकर झूंठमूठ ही निवेदन किया कि आज रात्रि में श्रीदत्त ने भी ऐसा ही स्वप्न देखा है।

राजकुमारी ने कहा, यदि ऐसा है तो यक्ष के वचन मुझे मान्य हैं। यह कह कर राजकुमारी चुप हो गई और उसने सखियों को सारी विवाह-सामग्री तैयार करने की आज्ञा दे दी। मैंने मंत्री-पुत्र से भी सारा कार्यक्रम

सूचित कर दिया। पर न जाने वह क्यों नहीं आया। देवताओं के वचन भी तो महिमावाले होते हैं न ?

अब राजकुमारी कहने लगी देव! मैं भी तो देव द्वारा ठगी गई हूँ। मेरे भाग्य से ही यक्ष-द्वारा आप मुझे मिले हैं! मेरी आपसे प्रार्थना है कि हम दोनों का यहां अधिक ठहरना खतरनाक होगा। न जाने पिताजी क्या कर बैठें ?

श्रीचन्द्र ने कहा प्रिये घबडाओ नहीं। वे भी मनुष्य हैं और मैं भी मनुष्य ही हूँ। देखलुंगा वे कितने पानी-में हैं। रात तो राजकुमारी की दुविधा में ही बीती। प्रातः काल में जब स्पष्ट रूप से कुमार के दर्शन हुए तब वह बडी ही प्रसन्न हुई।

यक्ष—मंदिर के पुजारी ने राजा से सारी घटना कह सुनाई। उसने क्रोधावेश में अपने सेनापति और सिपाहियों-को भेज दिये। कुमारी थर थर कांपने लगी। कुमार ने कहा-प्रिये! डरो मत। ये बेचारे अभी भागते हैं। कुमार ने एक सिंह-गर्जना की, गीदड़ के समान सारे सिपाही भाग खड़े हुए। राजा को पता चला, तब वह अधिक क्रोध में आकर पूरी ताकत के साथ आया। कुमार ने सखियों सहित पत्नी को अंगुठी की नाम मुद्रा दिखा

दी। उनके कान में कुछ कह कर-सार वस्तुएं एक गठरी में बांध कर अंजन-योग से उसे बंदरिया बना दी। सामने आनेवाले सिपाहियों को दायें बांये हाथ के धक्के से गिरा कर राजा के हाथी पर शेर के जैसे दहाड़ता हुआ चढ़ गया, और राजा की तलवार छिन कर उसे बांध वहीं छोड दिया।

इतने में किसी बंदि ने कुमार को पहचान कर ये गाथाएं गईं—

कुण्डल पुरस्स रज्जं, चंदमुही राय कन्न-परिणयणं।
जक्ख विहिणा उ विहियं, चंदउरं वासियं जेण॥
सो कुण्डल पुर सामी, सिरिचंदो जयउ पयावसिंह कुलचंदो।
संफुसइ जस्स तइया, जक्खो भत्तीइ पायतले॥

अर्थात्—कुण्डलपुर के राज्य को और विवाह के द्वारा चन्द्रमुखी नाम की राज-कन्या को पानेवाले, यक्ष के आदेश से नया चन्द्रपुर बसानेवाले, यक्ष द्वारा अपने पैर सहलाने वाले कुण्डलपुर के स्वामी और महाराजा प्रतापसिंह के कुल में चन्द्रमा के जैसे कुमार श्रीचन्द्र की जयहो।

इन गाथाओं को सुनकर श्रीचन्द्रराज ने उस चारण को पर्याप्त धन देकर संतुष्ट किया। बाद में वनमें जाकर अपने रथ पर सवार हो कुमार वहां से नौ दो ग्यारह हो गये।

इधर मंत्रियों ने मिलकर राजा अरिमर्दन के बंधन काटे, और मन्दिर के चबूतरे पर उन्हें ला बिठाया। श्रीचन्द्र से वांछित धन को पानेवाला वह चारण भी वहां आ पहूँचा। उसने राजा से श्रीचन्द्र की महती महिमा श्रीचन्द्र-प्रबंध के रूप में गा सुनाई। भट्ट द्वारा मुझे बांधने-वाला पुरुष श्रीचन्द्रराज ही था यह जानकर राजा बहुत प्रसन्न हुए उन्होंने अपने सिपाहियों को श्रीचन्द्र राज को लेने के लिये भेजे पर उसे वे न पा सके, और योंही निराश होकर वापस लौट आये।

राजा मंदिर में अपनी कन्या सरस्वती के पास गया, वहां वह वंदरी के रूप में आंसू भरे खड़ी थी। उसे देख कर राजा बड़े ही दुखी हुए। जब सखियों ने सारा रहस्य समझाया तो उन्हें कुछ धीरज हुआ, और वे कुमार की कला को सराहने लगे। अपनी पुत्री से उनने कहा-बेटा! महाराजाधिराज प्रतापसिंह के परम प्रतापी पुत्र श्रीचन्द्र ने तुझे ब्याहा है। तू बड़ी भाग्य-शालिनी है। मैं तुझे हाथी घोडे आदि दहेज की उत्तम सामग्री के साथ कुशस्थलपुर पहुँचाउंगा। तू जरा भी चिंता मत कर। राजाने उस भट्ट को खूब दान दिया। एवं अपनी उस वानरी कुमारी सरस्वती को अपने महल में ले गया। सारे शहर में प्रसन्नता छा गई।

३६

पुण्यवान जहँ पद धरे–प्रकटे नवे निधान ।
सुख दुख इस संसार में–पुण्य पाप फल जान ॥

वीर पुरुष जब तक अपने आश्रित को सुखी नहीं बना लेते, वहां तक वे खुद सुख से नहीं बैठते हैं । यही हालत चरितनायक कुमार श्रीचन्द्रराज की थी । मदनमंजरी कहां गई ? वह सुखी है या दुःखी ? इन प्रश्नों का सही उत्तर नहीं मिल जाता, तब तक उनके लिये कहीं शांति से बैठ जाना असंभव था । राजा अरिमर्दन को छोडकर वे मदनमंजरी की खोजमें पहाडों में, बीहड-वनों में नगरों में घूमते ही जाते थे ।

शुभ-शुकनों द्वारा प्रेरित हुए वे एक रोज एक बगीचे में रात्री बिताने के ख्याल से टिके हुए थे । इसी बीच

में उन्हें थोड़ी दूर से बड़ी ही मधुर मुरज—ध्वनि सुनाई दी। अपने सारथि कुंजर को सावधान करके वे उस ध्वनि को लक्ष्य करके चले। एक छोटी सी पहाड़ी पर किसी यक्ष के मंदिर में द्वार बंद करके कुछ स्त्रियां श्रीचन्द्र के गीत गा रही थीं। उनकी उत्कण्ठा और भी बढ गई। किंवाड़ के छेद से अंदर की गति विधि को देखा तो वहां आठ सुंदर कन्याओं के साथ मदन मंजरी नाच गान कर रही थी। उसे देख कुमार को भारी प्रसन्नता हुई। गुप्त रूप से सारे कार्य कलाप को देखना, उनने तय किया सारी रात भर उन कुमारियों-को मदन सुंदरी ने श्री चन्द्र—प्रबंध को नाच-गान के साथ समझाया।

रात बीत गई। मदन सुंदरी उन कुमारियों के साथ यक्ष—मंदिर से निकल पड़ीं। यह देखकर कुमार का हृदय खुशी के मारे उछल पड़ा। वे एकदम मन ही मन में बोल उठे "ओहो! आज मेरा बड़ा भारी सौभाग्य है, कि मेरी स्त्री मुझे मिल गई।"

कौतुक देखने के इच्छुक कुमार अब भी प्रकट होना नहीं चाहते थे। अतः वे उस गुटिका के योग से अदृश्य रूप से उनके पीछे पीछे हो लिये। तब वे एक पहाड़

की गुफा में घुसीं और एक बारी में से होकर पाताल नगर में जा पहुँची सारा नगर मणि–प्रदीपों की कान्ति से जगमगा रहा था मदन अपनी सहेलियों समेत अपने महल में चली गई, और वहां पर रत्न-जटित पलंग पर बैठ कर अपनी मुख्य सखी से बोली, "सखि ! आज मेरा बाँया नेत्र बार बार फड़क रहा है इससे मैं यह मानती हूँ, कि या तो मेरे पति स्वयं ही आज यहाँ आजायँगे या उनका संदेश मुझे जरूर मिल जायगा।

यह सुन रत्नचूला ने कहा, "सखि ! मेरी भी आज ऐसी ही मान्यता है कारण कि जिस दिन से तुम यहाँ आई हो, उसी दिन से आंबिल और उपवास आदि से खूब तपस्या कर रही हो अतः वह तपस्या के प्रभाव से यहाँ तुम्हें जरूर मिलेंगें।

इसी वार्तालाप के बीच में किसी दासी ने आकर रत्नचूला से कहा कि चलिये आपकी माता जी भोजन के लिये बुला रही हैं। यह सुन मदना ने उन सब से कहा कि बहनों ! तुम भाग जाओ, और भोजन करो। भूख न होने के कारण आज मैं भोजन नहीं करूँगी। परन्तु वे सब वहां से टस से मस न हुई, और बोली, "बहन ! हम तुम्हारे बिना अकेली भोजन नहीं करेंगी। "इस

वाद विवाद में काफी देर हो जाने के कारण माता जी स्वयं उन्हें बुलाने के लिये वहां आ पहुँची। उसने मदना-से कहा कि मदने! आज तुम भोजन क्यों नहीं कर रही हो? यह सुन मदना ने उत्तर दिया "माताजी! आज न मालुम मुझे क्या हो गया है, कि मेरी तबियत किसी भी काम में नहीं लगती।

विद्याधरी ने कहा, "पुत्री! तनिक भी विचलित मत हो। जो तुम्हारा पति है उसी को मेरी इन पुत्रियों ने भी अपना पति स्वीकार किया है। धीरज धरो बेटी! निमित्तिक का वचन कभी झुठा नहीं हो सकता। मैं बड़ी ही अभागिनी हूं। मेरे दुःख अपनी चरम सीमा पर पहूंच चुके है। मेरे स्थान आदि भी मेरे हाथों से निकल चुके हैं, और मेरा पति भी वन में मृत्यु को प्राप्त हो चुका है। मेरा देवर अपने पुत्र समेत सुमेरु पहाड़ पर बहुत पहले से ही जा बैठा है। कुशस्थल को भेजे हुए दूत भी अभी तक कोई खबर लेकर वापिस नहीं लौटे हैं। पुत्रि! क्या करूं मैं सब ओर से निराधार हूं। तुम स्वयं बुद्धिमती हो सभी बातों को जानती हो। अतः जानते हुए इस प्रकार हठ करना तुम्हें शोभा नहीं देता उठो। भोजन करो। हमारे इस कार्य में तुम अंतराय मत बनो।" इतना समझाने पर भी जब मदना भोजन

करने के लिये तैयार नहीं हुई तब वह विद्याधरी उसे अपनी छाती से लगा कर उसके दुःख से दुःखी हो फूट फूट कर रोने लगी।

कुमार अदृश्य रूप से वहां खड़ा ये सारी घटनाएँ देख रहा था। विद्याधरी की बातें सुनकर उसको ध्यान हो आया कि वन में मुझ से जो विद्याधर मारा गया था यह उसी की पत्नी है। मुझ में अत्यन्त स्नेहवती है। इसके दिल में मेरे लिए लेशमात्र भी वैर प्रतीत नहीं होता है। ऐसा विचार कर कुमार उस नगर द्वार पर प्रकट होकर बैठ गये। उन ने द्वारपाल से कहा कि तुम अन्दर जाकर सूचित करो कि कोई व्यक्ति आप लागों से मिलना चाहता है। द्वारपाल ने भीतर जाकर सूचना दी, और सूचना पाकर मणिवेगा वहां पर आ उपस्थित हुई। उसने रूप रंग और आकार से सुन्दर उस पुरुष से पूछा, "आप कौन हैं और आप कहां से आये हैं ?"

श्रीचन्द्र जवाब देने ही वाला था कि इतने में मदन सुन्दरी भी सखियां समेत वहाँ आ पहुँची। वहाँ अपने पति को देखकर वह बड़ी प्रसन्न हुई। मारे प्रसन्नता के उसके रोमांच हो आये और कंठ गदगद होगया। आँखों में हर्ष के आँसू छल छला आये। रुँधे हुए स्वर से

उसने विद्याधरी से कहा, माताजी ! आज आपके द्वार पर खड़े हैं।"

इस शुभ समाचार को सुनते ही विद्याधरी दौड़ी आई और कुमार को महल में ले जा कर उसका गुण-गान करने लगी महाराज--प्रतापसिंह के सुपुत्र श्रीचन्द्र ! आप हम लोगों के अहो--भाग्य से ही यहां आये हैं। यह आपको प्यारी मदना रातदिन आपके वियोग में रोती हुई आपके मिलन की आशा का आधार पाकर ही आज तक जीवित बची है। आपके प्रेम और गुणों को स्मरण करके आपके विछोह में इस बाला ने अपने नेत्रों को सावन-भादों के बादल ही बना डाले हैं। आप दोनों का पारस्परिक प्रेम अत्यन्त सराहनीय है।

इधर उस विद्याधरी के आदेश से वे आठों कन्याएँ हाथों में वरमालाएँ लेकर कुमार के गले में पहनाने के लिये वहाँ आ उपस्थित हुईं। यह देख कुमार श्रीचन्द्र ने उस विद्याधरी से कहा आपकी "ऐसी स्थिति क्यों है ?-और ये कुमारिकाएँ कौन हैं" ?

कुमार के प्रश्न का उत्तर देती हुई विद्याधरी ने कहना शुरू किया, वीरों के मुकुटमणि कुमार ! सुनो। मैं आपको अपना सारा वृत्तान्त सुनाती हूँ।

इसी वैताढ्य नामक पहाड़ पर मणिभूषण नामक नगर है। वहाँ पर पहले रत्नचूड़ नामके राजा राज करते थे। उनके छोटे भाई मणिचूड़ यहाँ के युवराज पद को सुशोभित करते थे। रत्नवेगा और महावेगा ह दोनों उनकी स्त्रियां हैं। ये रत्नचूला, मणिचूला आदि उनकी पुत्रियें हैं। रत्नकांता आदि ये चार उनकी भानजियें हैं, रत्नचूड़ और मणिचूड़ इन दोनों को अपने गोत्री विद्याधरों के साथ आकाश में घूमते हुए उत्तर-श्रेणी के स्वामी सुग्रीव विद्याधर ने जीत लिया। वे दोनों अपने समस्त धनमाल व परिवार समेत उस नगर को छोड़कर यहां चले आये, और यहां पाताल नगर बसा कर रहने लगे।

एक समय पुनः राज्य प्राप्ति के लिये मेरे पति रत्न-चूड़ विद्याधर चन्द्रहास तलवार को पाकर उसकी प्रयोग-सिद्धि के लिये वन में गये वहाँ पर विधि के अनुसार नीचा मुंह किये उस विद्या को ज्योंही साधने लगे त्योंही किसी ने उन्हें मार दिया।

जब प्रातःकाल हम पूजा की सामग्री लेकर वहाँ पहुँची तो वे मरे पाये। उसी जगह उनकी प्रेत--क्रिया करके हम अपने स्थान पर लौट आई।

एक समय रत्नचूड़ का पुत्र और रत्नचूड़ा का भाई रत्नध्वज पिता की मृत्यु से दुःखी हो कर इधर उधर भटकता हुआ एक बड़ी भारी अटवी को प्राप्त हुआ वन में किसी स्थान में प्रकाश का भ्रम पैदा कर, इस मदनसुन्दरी को अपने पति से पृथक् करके यहाँ ले आया। इस के शील के प्रभाव से एवं हमारी धाक से वह इस के साथ कोई अत्याचार नहीं कर सका। उस दिन से मैंने इस सदा-चारणी सुशीला मदना को अपनी धर्म–पुत्री बनाकर रक्खा है। यह इन सभी कन्याओं को अपने पति के गुणों और चरित्र का ज्ञान कराती है। मदना द्वारा कहे हुए आपके गुणों को व परोपकार युक्त कार्यों को सुन कर ये आप की हो चुकी हैं, और साथ में मदना को भी ये कह चुकी हैं, कि जो आपके पति हैं वे हमारे भी पति होंगे।

एक समय मणिचूड़ ने किसी नैमित्तिक से पूछा कि भाई! कृपा कर यह तो बताओ कि हमारा खोया हुआ राज्य कब मिलेगा? उसने उत्तर देते हुए कहा, "महाभाग! तुम्हारी आठों कन्याओं द्वारा वरण किया हुआ वर ही तुम्हारे खोये हुए राज्य को जीत कर लौटा लावेगा। ऐसे महापुरुष का संयोग अप्रतिचक्रा विद्या की साधना से ही हो सकेगा। उसके कथनानुसार मणिचूड़ और रत्नध्वज दोनों छः महिने में सिद्ध होने वाली उस

विद्या को विधि पूर्वक साधने के लिये मेरु पहाड़ पर गं
हुए है।

साधना करते२ उन्हें चार महीने बीत गए हैं। अः
केवल दो महीने साधना-क्रम के बाकी हैं। हम लोगे
के अहो भाग्य से ही आप यहां आए हैं। अतः कृप
कर इन कन्याओं को स्वीकार कीजिये। प्रेम पूर्वक कुमार
की मौन स्वीकृति से विद्याधर-बालाओं ने उनके गले में
वर मालायें पहना दीं। उनके साथ श्रीचन्द्र ने भोज किया।
बातचीत के प्रसंग में सासुओं ने उसे अकेले ही आने का
कारण पूछा। तब उसने अपना कुछ कुछ हाल ठीक-
तौर से उन्हें कह सुनाया। यह सुन रत्नवेगा ने कहा,
"कृपाकर जब तक मणिचूड़ वापिस यहाँ लौटकर न आवें
तब तक आप सुख पूर्वक यहीं रहें।

श्रीचन्द्र ने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए कहा,
"माता जी मुझे काम बहुत हैं, अतः मैं इतने दिन--तक
यहाँ ठहर नहीं सकता। मैं यहाँ से शीघ्र ही कनकपुर
जाना चाहता हूं। जब मणिचूड़ अपनी विद्या -सिद्धि कर
के दो महीने बाद लौट आवें तब आप मुझे कुशस्थल
आदि मेरे शहरों में जहाँ कहीं होऊं वहां सूचना भेज
देवें। बाद में सब कुछ ठीक होगा। आप लोगों के

साथ मेरा जो सम्बन्ध हुआ है, इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ"।

विद्याधरियों ने कहा कुण्डलपुर-नरेश! हम अनुनय विनय कर के आपको रोक कर आप के कार्य में कोई बाधा पैदा करना नहीं चाहती हैं। केवल एक ही प्रार्थना है, कि इन कन्याओं का पाणि-ग्रहण करके इन को साथ ले पधारें। ताकि मदन सुन्दरी के साथ इन का जो प्रेम है उसमें वियोग का कष्ट इन्हें न हो।

श्रीचन्द्र ने उत्तर दिया माताजी! आप क्यों इतना विचार करती हैं? विवाह तो जब चाहेंगे तभी हो जायगा। जब आप लोगों को पुनः राज्य की प्राप्ति होगी तभी मैं इन से ब्याह करूंगा। किसी प्रकार समझा बुझा कर उनकी अनुमति से वह मदना को साथ ले कर वहां से रवाना हुआ, तब रत्नचूड़ा रो पड़ी। उसने रुंधे हुए स्वर में कहा—स्वामिन् इधर आप पधारने का विचार कर के हमारे लिए दुस्सह विरह की आग भड़का ही रहे हैं, पर इन हमारी बड़ी बहीन मदन सुन्दरी जी को आप क्यों लिये जाते हैं? हमारी हालत पर भी तो जरा गौर कीजिए। हम यहां इस वियोगी दशा में कैसे जीयेंगी? उसकी प्रार्थना पर कुमार का हृदय पीघल गया। उनने

मदन सुन्दरी से कहा—ये ऐसा कहती है तो रह जाओ॥ मदना ने कहा 'इतो व्याघ्र इतस्तटी'-न्याय उपस्थित हुआ है। स्वामिन् ! दैव योग से बिछुड़े हुए आपका मिलाप बड़ी मुश्किल से हुआ है। हालां कि इन बहीनों को छोड़ते हुए भी मुझे कष्ट होता है, पर मैं आपको तो क़तई नहीं छोड़ सकती। मैं तो आपके साथ ही चलूंगी।

श्रीचन्द्रराज ने उन विद्याधर—कन्याओं को मैं निश्चित अवधि में लौट आऊंगा-की प्रतिज्ञा करके आश्वासन दिया। और उन्हें वहीं रहने को विवश किया। उन्हें देने योग्य वस्तुएं देकर सन्तुष्ट किया, और मदना को लेकर वहां से चल दिये। जहां रथ खड़ा किया था, वहां पहुंच कर कुमार रथ में बैठ कर कनकपुर की ओर चल दिये। आपस में विरह की अवधि में बीती हुई अपनी घटनाओं को सुनाते हुए वे दोनों मार्ग में चले जा रहे थे। जाते जाते रुद्रपल्ली नामक नगरी के समीप पहुँचे।

नगर की बाहर विशाल जन समुदाय इकट्ठा हो रहा था। क्या बात है ? यह जानने के लिये कुमार उधर की तरफ आगे बढ़े। उनने देखा एक चिता बनी हुई है। एक कृश काय कन्या उसके पास खड़ी है। राजा आदि उसे समझा रहे हैं बेटी ! अग्नि प्रवेश मत करो। जीवित-

नर कल्याण को प्राप्त करता है। मर कर अन्धकार के गहरे गर्त में चला जाता है। दूसरी ओर शहर कोतवाल द्वारा गिरफ्तार किया हुआ व्यक्ति रस्सियों से बंधा हुआ खड़ा है।

कुमार रथ से उतर पड़े। पास खड़े प्रधान से उनने पूछा भाई क्या बात है ? उसने कहा महाभाग! इस नगरी का नाम रूद्रपल्ली है। ये सामने खड़े हैं वे यहां के नरेश हैं। पास ही उनकी महारानी क्षेमवती खड़ी हैं। यह उन्हीं की राजकन्या दुर्बल और दुःखी हंसावली है। इसके आगे वह कुछ कह ही रहा था कि—राजा की दृष्टि रथ पर पड़ी। इतना सुन्दर रथ, और ऐसे प्रभावशाली कुमार को देखकर राजा को बड़ा भारी विस्मय हुआ। उनने मन्त्रियों को एवं प्रतिष्ठित नागरिकों को कुमार के पास भेजा। वे सब कुमार के पास पहूँचते हैं इतने में वहां आये हुए हरि बारहट के भाई अंगद भट्ट की दृष्टि कुमार पर पड़ी। वह बोल उठा—

कणग ज्झयस्स रज्जं, पुत्तिं कणगाउलीं च कणगउरे।
विलसइ सुरदिन्नं जो, नव लक्खवईस सिरिचंदो ॥
सिरिपव्वयग्गसिहरे, चंदप्पह-जिणस्स चेइयं जेण।
कारवियं चउदारं, रम्मं सो जयउ सिरिचंदो ॥

अर्थात्—देवताओं से दिये हुए कनकध्वज के राज्य कनक पुर के और उसकी पुत्री कानकावली के जो स्वामी हुए हैं उन नवलक्षाधिपति श्रीचन्द्र कुमार की जय हो। जिनने श्रीपर्वत के अग्रिम शिखर पर श्री चन्द्रप्रभ स्वामी का विशाल चतुर्मुख मन्दिर बनाया उन श्रीचन्द्र कुमार की जय हो। ये कुमार ही श्रीचन्द्रराज हैं ऐसा जानकर पास में खड़े मन्त्री आदिकों ने राजा के पास पहूंच कर निवेदन किया कि महाराज! श्री चन्द्रकुमार यहीं आये हुए हैं। इतना सुनते ही राजा वज्रसिंह अपनी कन्या हंसावली को साथ लेकर वहां आ पहूंचे। परस्पर में शिष्टाचार—स्वागत सत्कार के बाद कुमार ने पूछा कन्या को क्या दुःख है? वज्रसिंह ने कहा—महाराज यह मेरी पुत्री हंसावली कनक नरेश की पुत्री कनकावली की सखी है। कनकपुर और कनकावली के आप स्वामी हो गये हैं। यह जानकर इसने भी निश्चय किया कि कनकावली के पति ही मेरे पति होंगे।

इस दृढ़-निश्चय को जानकर मैंने विश्रुत नाम के अपने मन्त्री को आपकी सेवा में कनकपुर भेजा था। वहां लक्ष्मणमन्त्रि-द्वारा आप अनिश्चित काल के लिये अनिश्चित विदेश यात्रा में पधारे हुए हैं। विश्रुत मन्त्री से ऐसा

जानकर यह कन्या अन्दर ही अन्दर दुःख पाती हुई आपके स्मरण में जीवन व्यतीत कर रही है।

इधर कुण्डिनपुर के नरेश अरिमर्दन का पुत्र चन्द्र-सेन हंसावली से विवाह करना चाहता था, इसीसे चन्द्रावली की प्रतीज्ञा और आपका विदेश गमन जानकर उसके मन में कुमति पैदा हुई। वह अपने नगर से निकल पड़ा। कनकपुर में पहुँच कर उसने आपकी सारी स्थिति का अध्ययन किया। इसके बाद वह एक मनुष्य को साथ लेकर यहाँ आया। उसने अपना नाम श्रीचन्द्र रखा। उसके छल कपट का हम लोगों को कोई पता न चला। हम और कन्या उसको सचमुच श्रीचन्द्र समझ कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उसने कपट जाल बिछा दिया। एक समय कनकपुर का व्यापारी हमारे यहां आया। उसने राजकुमार को पहिचान लिया। यह जानकर हम बड़े दुखी हुए कि श्रीचन्द्र के बदले में चन्द्रसेन ने हमें धोखा दिया है, हमारी पुत्री के दुख का तो क्या पूछना ? मन्त्री चिंतित हो उठे। विवाह विष होगया।

कुमारी हंसावली प्रायश्चित्त के लिए अग्नि में जलने को तैयार हुई। हमने बहुत रोका पर यह अपने आग्रह पर डटी रही। हमें अपनी अज्ञानता पर पश्चात्ताप हो

रहा है। चन्द्रसेन की क्रूरता, नृशंसता और अदूरदर्शिता पर क्रोध आ रहा है। उस अपराधी को भी हम यहां चोर की तरह बांध कर लाए हैं।

इस बात को सुन कर सान्त्वना देते हुए कुमार ने कहा—राजन् ! आपका या राजकुमारी का इसमें कोई दोष नहीं है।

सा सा सम्पद्यते बुद्धिः-सा मतिः सा च भावना।
सहायास्तादृशा ज्ञेया, यादृशी भवितव्यता॥

अर्थात्—जैसी होनी होती है, मनुष्य में वैसी ही बुद्धि मति और भावना उत्पन्न हो जाती है। वैसी ही उसे सहायता भी प्राप्त हो जाती है।

जो भावी संसार में, होती अपने हाथ।
राम न जाते हरिण संग सीय न रावण हाथ॥

अतः हे राजन् ! इसके लिए आप जरा भी दुखी न होइए, चन्द्रसेन के बंधन कटवा कर उसे यहां बुलाइये। राजा ने ऐसा ही किया। उसके आने पर श्री चन्द्रने कहा-अरे श्रेष्ठ राजकुल में जन्म लेकर भी तैंने यह नीच कुकर्म क्यों किया ? वह लज्जावनत हो कर बैठा रहा।

श्रीचन्द्र ने हंसावली से भी कहा—भद्रे ! इतनी दुखी क्यों हो रही हो। अवेश में आकर विना सोचे समझे

जल मरने का अकार्य मत करो । दुर्लभ मानव-भव बार नहीं मिलने का । आत्महत्या एक घोर पाप है । उसे करके अपने आप को क्यों कलंकित करती हो । चाहे मन से और वचन से वरण न किया हो पर पाणि-ग्रहण कर लेने पर वह निश्चित रूप से पति हो ही जाता है

सिंह-गमन सुपुरुष-वचन, कदली फले इक बार ।
तिरिया तेल हमीर-हठ, चढे न दूजी बार ॥

सज्जनों का वचन और स्त्रियों का व्याह एक बार ही होता है ।

हंसावली ने कहा—महापुरुष ! जो आप फरमाते हैं वह सच है । फिर भी आप सती स्त्रियों के कुल धर्म पर दृष्टि डालिए । स्त्री मन से जिसको अपना पति स्वीकार करलेती है वही उसका पति हो सकता है, दूसरा नहीं । मैंने आपके भ्रम में उसका हाथ पकडा था, लेकिन अब भ्रम के न रहने पर मैं उसे क्यों मानूं मैं दृढता से उसका त्याग करती हूँ शास्त्रों में कहा भी गया है ।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः ।
तथैवालिङ्ग्यते भार्या- तथैवालिङ्ग्यते स्वसा ॥

अर्थात्—मन ही मनुष्यों के बंध और मोक्ष का कारण है जिस प्रकार स्त्री का आलिंगन किया जाता है

वैसे ही बहन का भी किया जाता है, परन्तु मन बहन को बहन की दृष्टि से स्त्री को स्त्री की दृष्टि से जुदा कर देता है। मन से किया हुआ काम ही सब ठीक और शास्त्रीय माना जाना चाहिए। अतः मेरी आप से यही प्रार्थना है कि मेरे बिना मन से किये हुए कामों को व्यर्थ मान कर बिना किसी हिचकिचाहट के आप मुझे स्वीकार कर लें।

राजकन्या हंसावली के चतुराई भरे वचनों को सुनकर श्रीचन्द्रने कहा—राजकुमारी ! वास्तव में तुम सदाचारिणी हो। कांच और मणि का परिवर्तन निश्चय ही हो सकता है, परन्तु विवाहित स्त्री का विनिमय नहीं हो सकता। बुद्धि के भ्रम से दूध में डाला हुआ नमक क्या बदल सकता है ? कभी नहीं। ठीक उसी प्रकार भ्रम से किया हुआ विवाह, विवाह ही रहता है। भ्रमसे विवाहित पति पत्नी, पति पत्नी ही रहते है। वैसी स्त्री को मैं पर स्त्री ही मानता हूँ, और पर स्त्री को अपनाने से घोर पाप लगता है।

हंसावली ने कहा देव ! यदि आप मुझे पराई स्त्री ही समझते हैं, तो आग में जल मरने के सिवाय मेरे लिये दूसरा क्या मार्ग हो सकता है ? मैंने तो मन वचन

से आपको ही अपना पति माना है, और मानती हूँ। छल-कपट से बने हुए पुरुष को पता लग जाने के बाद पति मानना मेरे लिये एक घोर अपराध है। मैं ऐसे पुरुष को पर पुरुष मानती हूँ और पर पुरुष से संबंध करना क्या घोर पाप नहीं है ?

वज्रलेप के समान राजकुमारी के ऐसे अमिट निश्चय को जानकर राजा श्रीचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। सबके सामने उनने कुमारी की शील-दृढ़ता को सराहा। दण्डनीय और निरोध करने योग्य उस अपराधी चन्द्रसेन को दया करके राजा से छुटकारा दिलवा दिया। वे कहने लगे—

राजन् ! संसार की स्थिति ही ऐसी है। सभी प्राणी विषयों द्वारा सताये जाते हैं। वासना ही सब दुःखों की जड़ है। मन में जरासी शिथिलता आने पर वासना बढती ही जाती है, और मनुष्य को अपने स्थान से गिरा देती है। मदिरा मनुष्य को उन्मत्त बनाती है पर वासना में उससे अनंत गुणी मादक शक्ति होती है। मदिरा एक जन्म तक ही काम करती है, और वासना अनंत जन्म तक पीछा नहीं छोड़ती। वासना को सर्वथा जीतने वाले पुरुष जिन भगवान् कहलाते है और वासना को जीतने का अभ्यास करने वाला जैन होता है। अनंते जन्म-जन्मा-

न्तर होने पर भी सच्चे जैनत्व के अभाव में हम संसार के दुःखों से मुक्त नहीं हुए हैं। सर्वथा वासना को जीतने वाले और वासना को जीतने का अभ्यास करने वाले महापुरुष सदा वंदनीय होते हैं। वह दिन धन्य, परम-धन्य होगा जब कि हम वासनाओं पर काबू कर लेंगे।

इस प्रकार जीवन को उन्नत बनाने वाले श्रीचन्द्र-राज के प्रवचन को सुनकर राजा, मंत्री, राजकन्या, आदि सभी लोग बड़े प्रसन्न हुए। चन्द्रसेन कुमार-श्रीचन्द्र के चरणों में गिरकर कहने लगा—स्वामिन्! आपने मेरे प्राणों की तो रक्षा की ही है पर इससे भी बढकर वासना विजय-विवेक को समझाकर आपने मेरा परम उपकार भी किया है। आज से मुझे आप अपना एक छोटासा सेवक समझें।

इधर कुमारी हंसावली के ज्ञान-चक्षु भी खुल गये। उसके मनोभावों में सहसा परिवर्तन हो गया। उसका मुख-मण्डल ज्ञान की ज्योति से चमक उठा। वह हाथ जोड़कर बड़ी नम्रता से कहने लगी—देव! पहिले तो आपने सौंदर्य, शौर्य, औदार्य आदि गुणों से मेरा मन हर लिया था, और आज इस प्रकार का अद्भुत ज्ञान सुनाकर, आपने मेरी रक्षा की है। आज से मैं आपको

अपना धर्म-गुरु मानती हूँ। अब मैं वासनाओं पर मरने वाली नहीं हूं प्रत्युत वासनाओं का विजय करूंगी। आपकी दया से आज मैंने जैन धर्म के सच्चे स्वरूप को समझ पाया है। आज से पूर्ण वीतरागी-श्रीजिन भगवान् को—देव, वीतराग भावमें रमण करने वाले को गुरु, और उन्हीं के बताये विधि विधानों को-धर्म रूप मानूंगी छल कपट से हुए विवाह के बंधन को काटकर मैं अब जीवन पर्यन्त ब्रह्मचारिणी रहूँगी। शील ही मेरे जीवन का आदर्श रहेगा।

राजा श्रीचन्द्र ने कहा देवी! तुम धन्य हो। तुम्हारे जैसी सती माताओं के कारण ही हमारा मस्तक गौरव से ऊंचा है। हमारा देश आर्य देश कहलाता है। तुम्हारे त्याग और तप की बराबरी कौन कर सकता है? इस त्याग और तप को मैं वंदन करता हूँ।

राजा वज्रसिंह और उनका परिवार राज कन्या हंसावली की वीर-प्रतिज्ञा को सुन कर बड़े प्रसन्न हुए। सारा वायु मण्डल ही आनन्दमय हो गया। राजा वज्र-सिंह ने बड़े भारी समारोह के साथ कुमार को नगर प्रवेश कराया। यहां श्रीचन्द्र कुमार से प्रार्थना की कि कुमार! हंसावली के मनोरथ तो दैव योग से सफल न हो सके,

पर हमारी एक प्रार्थना को आप सफल बनावें। हंसावली की छोटी बहीन चन्द्रावली विवाह के योग्य हो चुकी है, उसका पाणि ग्रहण कर के हमें कृतकृत्य करें।

हंसावली मदन सुन्दरी और राजा वज्रसिंह के विशेप आग्रह करने पर श्रीचन्द्र ने विवाह मंजूर किया। बड़े ठाठ के साथ विवाह संपन्न हुआ। कुछ दिन के लिए कुमार यहां ठहरे।



३७

जीवन एक संग्राम है। इसमें कई दांव पेच खेलने होते हैं! धीर और वीर पुरुष ही इसमें फतेह पा जाते हैं। संसार में हार और जीत दोनों साथ २ चलती हैं। चूके को चौरासी के गोते खाने पड़ते हैं। इसमें अनुकूल और प्रतिकूल ऐसे दो प्रकार के संघर्ष चलते हैं। विवेकी विजयी होता है, और अविवेकी का कचूमर निकल जाता है।

राजा श्रीचन्द्र भी अपने जीवन संग्राम का ठीक ढंग से संचालन कर रहे थे। रुद्रपल्ली में राजा वज्रसिंह के यहां—सुसराल के स्वर्ग-सुखों को भोगते हुए उनने एक रोज कनकपुर का ख्याल किया। राजा वज्रसिंह से बड़े आग्रह से आज्ञा लेकर रति और प्रीति के समान परम सौंदर्य शालिनी दोनों स्त्रियों को साथ लेकर कामदेव के

जैसे कुमार ने कनकपुर की ओर प्रस्थान किया। दल-बल के साथ नवलक्ष देश की सीमा पर उनने पड़ाव डाल दिया।

इस के बाद कुछ गुप्त चरों के साथ राजा पद्मनाभ को, मंत्रिराज गुणचन्द्र को और प्रधान लक्ष्मणदेव को अपने आगमन की सूचना भेज दी। सूचना पाते ही वे लोग बड़ी तेजी से वहां आ पहूँचे। राजकीय ढंग से राजा श्रीचन्द्र ने सबकी सलामी ली। युद्ध के समाचार पूछे--कि क्या हाल चाल है?। प्रधान मंत्री गुणचन्द्र ने हाथ जोड़ कर कहा—राजाधिराज! गुणविभ्रम अत्यन्त पराक्रमी और दुर्जेय शत्रु है। वह घेरा डाले पड़ा है टस से मस नहीं हो रहा। वह कहता है दश गुणा दण्ड लेकर ही हटूंगा। राजेन्द्र! आज तक तो इसका पलड़ा भारी ही रहा है। सारा कनकपुर एक प्रकार से इसकी कैद में दुःख पा रहा है। उसे छह राजाओं की सहायता प्राप्त है। वह हमारे देश को जबरन् छीनना चाहता है।

महाराज! हम बड़े भारी पशो-पेन्च में थे कि क्या करना? इतने में आपका शुभागमन हो गया। आपके शुभागमन से आज हमारी सेना का रंग और ही हो गया है। हमारे सेनापति सेना के साथ भारी प्रसन्नता से

उत्साहित हो उठे हैं। जोश का एक नया तूफान उफन रहा है।

यह सुनते ही राजा श्रीचन्द्र का शरीर वीर रस की साक्षात् मूर्ति हो गया। आंखे लाल हो गईं। भौंहें कमान की तरह तन गईं। शत्रुओं पर प्रहार करने वाली भुजायें फड़क उठीं। वह शीघ्रता से सब में वीरता के भाव भरता हुआ चन्द्रहास खड्ग को हाथ में लेकर सहस्र किरण सूर्य के समान अपनी सेना में प्रदीप्त हो उठा। राज राजेश्वर श्रीचन्द्र को वहां आये जानकर शत्रुओं के सिपाही कांप उठे। उनके हृदयों में खलबली मच गई। मुखमंडल निस्तेज हो गये। चेहरों पर मारे भय के हवाइयां उड़ने लगीं। अब उन्हों ने अपनी जीत की आशा को छोड़ दी।

राजाधिराज श्रीचन्द्रने साम-दाम भेद और दण्ड की राजनीति में चतुर अपने दूत को गुणविभ्रम के पास भेजा, और कहलाया की तुम ने पहिले कनकपुर नरेश से जो दण्ड लिया है, उस को सौगुना कर के हमारे खजाने में जमा करा दो। अन्यथा लडने की पूरी तैयारी कर मोर्चे पर आजाओ।

राजा गुणविभ्रम को दूतने महाराज श्रीचन्द्र का सन्देश सुना दिया। सुनते ही वह आग-बबूला हो गया।

अंदर से वौखला कर उपर दृढता दिखाते हुए उसने कहा—जा अपने उस छोकरे से कह देना कि तुझे युद्ध के मैदान में ही मैं जवाव दुंगा।

दूत लौट आया। महाराज श्रीचन्द्र अपने सन्देश का जवाब सुन कर अपनी फौज़ों को मैदाने जंग में पहूँ-चने का आदेश दे दिया। दोनों ओर से मजबूत मोर्चे लग गये। दोनों सेनायें अपने २ स्वामी की आज्ञा पाकर आपस में भीड़ गई। बडा भयंकर युद्ध होने लगा। जयश्री कभी इधर और कभी उधर डोलती दिखाई देने लगी। राजा गुणविभ्रम ने मौका पाकर बाणों की भयंकर बौछार करके महाराज श्रीचन्द्र की सेना को तीतर बीतर कर दिया।

अपनी सेना के पैर उखड रहे हैं। राजा पद्मनाभ, वज्रसिंह और लक्ष्मण मंत्री घिरे जारहे हैं। यह सब देख कर राजाधिराज श्रीचन्द्र शीघ्रता से हाथी पर सवार हो गये। शत्रु के निकट पहुँच कर कहने लगे कि—महो-दय ! अपनी कुशलता चाहते हो तो अब भी झुक जाओ, और यदि लडना ही है, तो आओ पहिले वार कर दो।

गुणविभ्रम ने कहा—कि अभी तू बच्चा है, युद्ध के मैदान से हट जा, यदि लौटने की इच्छा ही नहीं है, तो

ले अपना शस्त्र संभाल ले। यह कह कर उसने श्रीचन्द्र पर तलवार का प्रहार किया। राजाधिराज श्रीचन्द्र ने बडी फुर्ती से अपने चन्द्रहास से उसे बीचमें ही काट दिया। चन्द्र हास के सामने वह निस्तेज हो गया। श्रीचन्द्र ने गुण-विभ्रम को हाथी से गिरा दिया। सैनिकों ने उसे कस कर बांध लिया और एक लकड़ी के पींजडे में उसे डाल दिया। बाकी के राजाओं को भी और उन की सारी सेना को हराकर हिरासत में ले लिया। सभी पराजित अधिकारी अपराधियों की भाँती श्रीचन्द्र के सामने हाथ बांधे खडे थे। विजयश्री कुमार से और कुमार विजयश्री से-वर वधू के रुपमें एक दूसरे से शोभा पा रहे थे।

कल्याण पुर में और उसके सातों देशों में अपने मंत्रियों को भेज कर श्रीचन्द्र ने अपनी आज्ञा प्रचलित करवा दी। कनकपुर में उसके निवासियों ने विजयी महाराज श्रीचन्द्रका नगर, हाट, मकान, मन्दिर, महल-राज-मार्ग आदि खूब सजाकर जय जय शब्दों से बडे भारी समारोह के साथ स्वागत किया।

कुछ समय वहां ठहर कर कुमार अपनी दोनों स्त्रियों के और अधीन स्थ राजाओं के साथ मातृ दर्शन की उत्कण्ठा से श्री पर्वत पर बसे हुए अपने श्री चन्द्रपुर नगर

की ओर चले। मार्ग में ही माता सूर्यवतीजी के पुत्ररत्न यानि भाई उत्पन्न होने की खुशी के समाचार कुमार को मिले। अपने भाई के उत्पन्न होने की खुशी में कुमार ने भारी समारोह किया। भारी खुशियाँ मनाई गई। सारे अधीनस्थ देशों में भी उत्सव आनन्द मनाये गये। राजा गुण विभ्रम को इस खुशी में कैद से छोड़ दिया गया। दूसरे भी कई कैदी छोडे गये।

कुमार ने गुणविभ्रम का यथायोग्य सत्कार किया। उसने भी अपने सभी अपराधों के लिये विनीत भाव से क्षमा चाही। कुमार ने उसे अपने पास बिठाकर पुनः इज्जत प्रदान की। वहां से चलते हुए क्रमशः भारी ठाठ के साथ चन्द्रपुर में प्रवेश किया, जनता ने अपने राजा का पितृ प्रेम से स्वागत किया और राजा ने प्रजा को अपने पुत्रवात्सल्य से आनंदित किया। राजमहल में कुमार श्रीचन्द्र ने अपनी माता श्रीसूर्यवतीजी को बडे विनीत भाव से प्रणाम किया। मदनसुन्दरी आदि बहुएँ सासूजी के पैरों पडीं। माता ने पुत्रवती हो, सौभाग्यवती हो, ऐसे आशीर्वाद दिये। राजाओं ने मन्त्रियों ने भी महारानी सूर्यवतीजी को प्रणाम किया। स्वागत शिष्टाचार खूब अच्छे ढंग से हुआ।

श्रीचन्द्र ने अपने छोटे भाई को गोदी में लिया, गुण लक्षणों के अनुसार उसका एकांगवरवीर ऐसा नाम रक्खा। राजाओं के नाम पत्र लिखे गये। पत्र पाकर सभी राजा लोग श्रीचन्द्र की सेवा में आ उपस्थित हुए। कईयों ने कन्याएँ देकर, कईयों ने धन, रत्न, हाथी घोड़े आदि अपूर्व वस्तुएँ भेंट कर अपनी कृतज्ञता प्रकट की। पद्मिनी चन्द्रकला वामांग, वरचन्द्र, सुधीराज और धनंजय ये लोग भी एक बड़ी भारी सेना के साथ वहां आ पहुँचे।

कुमार के वैभव को देखकर सभी लोग बहुत खुश हुए। महाराज श्रीचन्द्र ने भी वामांग को सचिव, धनंजय को सेनापति इस प्रकार उन सबको अलग २ यथायोग्य-पदों पर नियुक्त किये। रानी चन्द्रकला को महारानी बनाया। क्षत्रिय कुमार कुंजर को और मल्ल-भील को उचित शिक्षा के साथ वहीं श्रीपर्वत के रक्षाधिकारी कायम किये।

सारे परिवार के साथ श्रीचन्द्र ने भगवान श्रीजिनेश्वर-देव के मंदिर में वंदन पूजन किया। अष्टान्हिक महोत्सव कर के अपने सम्यग्दर्शन को निर्मल किया। निर्ग्रंथ पंचमहाव्रत-धारी त्यागी संयमी साधु गुरुओं की सेवा

भक्ति की। उनके सत्संग से विशेष धर्म-लाभ को प्राप्त किया।

तदनंतर अपनी माताजी को, भाई को, रानियों को मित्रों को, मंत्रियों को साथ लेकर भारी समारोह के साथ कुशस्थल की ओर महाराजा श्रीचन्द्रराज रवाना हुए। हाथी, घोडे, रथ, मनुष्य, सैनिक, बैलों, ऊंटों, पालकियों आदि से उनकी सेना लहराते हुए विशाल समुद्र की तरह शोभा पारही थी। उस सेना के दबाव से शेषनाग विचलित हो उठा। कूर्मराज घबडा उठे। पृथ्वी अंदर को धँसने लगी। दिशाओं के हाथी कराह उटे। पैरों से उडी हुई धूल से आकाश में सूरज ढंक गया। पहाड़ कांपसे गये। समुद्रों में यावत् सारे संसार में हलचल मच गई।

पहाड़ पर पड़ाव करते हुए महाराजा श्रीचंद्रराज अपने अभीष्ट-स्थान की ओर बढते जा रहे थे। मार्ग में स्थान २ पर कहीं मन्दिर, कहीं धर्मशाला, कहीं किले कहीं प्याउएँ, कहीं नहरें आदि नव निर्माण करते और कराते जाते थे। क्रमशः वे कनकपुर पहुँचे। वहां कुछ दिन ठहर कर कल्याणपुर गये। राजा गुणविभ्रम को पहले की तरह पदस्थ किया। उनकी राजकन्या गुणवती

से विवाह किया। मदन सुंदरी के मुह से यहां सुवर्ण-पुरुष आदि के वृत्तांत को सुनकर महारानी सूर्यवतीजी चंद्रकलाजी आदि सब लोग बडे विस्मित हुए।

वहां से भी राजा को, गुणवती रानी को, एवं स्वर्ण पुरुष को, साथ लिया। जंगल में जहां पर वड़ के पेड़ में मणिगृह छिपा हुआ था। वहां से सार वस्तुएँ ग्रहण की रत्न चूड़ के मृत्यु-स्थान पर आये। उसके दाह स्थान पर एक जिन मन्दिर बनवाया। वहाँ से कान्ती पुरीगये कान्ती नरेश नरसिंह ने वड़े उत्सव के साथ नगर प्रवेश कराया, कान्ती के पास में ही वड़गाँव में गुणंधर कलाचार्य रह रहे थे। श्रीचन्द्रने अपनी पत्नी सहित वहाँ जाकर गुरु और गुरुपत्नी को नमस्कार किया और अपूर्व भेंट अर्पण की। गुरु के पुत्रों, कुटुम्बियों और बाँधवों आदि का भी यथा योग्य सत्कार किया। कलाचार्य ने भी अपने शिष्य श्रीचन्द्रकुमार को भूरि भूरि अशीर्वाद दिये।

इसके बाद रानी प्रियंगुमंजरी और राजा नरसिंह साथ वह हेमपुर को गये। वहां पर मदनपाल का पिता मकरध्वज राज्य करता था। मदनसुन्दरीने श्रीचंद्र को अपना पति बनाया है यह सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए। उन दोनों के साथ फिर वहां से राजा श्रीचन्द्र चल-

कर कांपिल्य पुर आये। वहां पर बड़ी धूमधाम से उनका पुर प्रवेश हुआ। वहां पर उनने अपनी माता के आग्रह से कनकवती आदि चारों कन्याओं के साथ बड़ी सजधज और धूमधाम से विवाह किया।

वीणारत्न नामक गायक का भी नगर कहीं आस पास में ही था। जब उसने सुना कि महाराज श्रीचन्द्र कांपिल्यपुर में पधारे हुए हैं, तो वह भी वहां आ उपस्थित हुआ, उसने प्रसन्न हो कर महाराजा की प्रशंसा के कई आश्चर्य उत्पन्न करने वाले श्लोक पढे। जैसे—

वल्गत्तुंगतुरंग-निष्ठुरतर-क्षुण्ण द्रणाद्मातले।
निर्भिन्न द्विप-कुंभ-मौक्तिककण-व्याजेन बीजावलिं ॥
खड्गस्ते वपतिस्म कुण्डलपते ! लोक-त्रयीमण्डप-
प्राप्त प्रौढ़तमस्य कीर्तिलतिकागुल्मस्य निष्पत्तये ॥

अर्थात् हे कुंडलेश्वर ! आपकी कीर्तिरूपी लता को पुष्पित बनाकर त्रिभुवन में फैलाने के लिये अपका घोड़ा रणभूमि को खोद कर बीज बोने योग्य बताना है और आपकी तलवार मदमस्त हाथियों के कुंभस्थलों को चीर कर उनमें से निकले हुए मुक्ता कणों को बीज के रूप में बोती है, तथा हताहतों से निकला हुआ रक्त उसकी सिंचाई करता है।

श्रीचन्द्र ने प्रसन्न होकर उसको पाँचलाख के मूल्य का धन दिया। औरों ने भी उसे यथा शक्ति इनाम देकर संतुष्ट किया। वह इनाम में पाये हुए सभी रत्न, सुवर्ण, आभूषणादि को लेकर श्रीचन्द्र की सराहना करता हुआ प्रसन्नता से अपने डेरे पर चला गया। रात्रि में चोर उसका सर्वस्व हरण करके ले गये। जब सुबह हुआ तो उसने अपने मालकी एक दम चोरी हो गई, देखी। घबडाते हुए उसने राज सभा में आकर श्रीचन्द्र से सारा हाल कह सुनाया। इस बात को सुनकर श्रीचन्द्र ने वहां के राजा जितशत्रु को उपालम्भ दिया।

तब जितशत्रु ने महाराज से निवेदन किया कि स्वामिन्! यहाँ पर तीन चोर हैं, और वे बहुत प्रयत्न करने पर भी पकड़े नहीं जा रहे हैं। उन्होंने इस नगर को चोरियां करके परेशान कर रक्खा है। यह उत्तर पाकर राजाधिराज श्रीचन्द्र ने वीणारव को पहले से दुगुना धन दिया। वह भी प्रदत्त धन राशि को लेकर पहले की तरह अपने डेरे पर चला गया।

इधर महाराज श्रीचन्द्र स्वयं गुटिका के प्रयोग से अदृश्य होकर रात्रि में नगर में इधर उधर घूमने लगे। आधी रात के समय उनने तीन मनुष्यों को कहीं देखा।

गौर से देखने पर उनने दो को तो अच्छी तरह पहचान लिया, मगर तीसरे को न पहचान सके। तब वे उनके काम देखने के विचार से वहीं रुक गये।

चौर आपस में विचार करने लगे। लोहखर ने कहा, यहाँ पर जो राजा आया है उसने गायक को कल से दुगुना धन दिया है सो चलो वहीं चलें।" तब वज्रजंघ बोला, "सुनो! आगन्तुक राजा के पास एक सुवर्ण-पुरुष सुना जाता है, सो चलकर उसे ही क्यों न चुरा लिया जाय जिससे अपना जन्मजन्मान्तर का दारिद्र ही दूर हो जाय। तुम अवस्वापिनी विद्या के जानकार और तुम्हारा भाई धन की गंध का जानकार है। तुम्हारा भतीजा में एक बार सूंघे हुए धन को गंध मात्र से ही जान लेता हूँ।"

लोहखर ने उत्तर दिया, भाई! यह राजा बड़ा धर्मात्मा भाग्यशाली, न्यायी और परोपकारी है इसलिये इसका कोई कुछ भी हरण नहीं कर सकता। अपना किया हुआ उद्यम व्यर्थ जायगा। इस प्रकार सलाह करके लोहखर ने हाथ से कुछ धूल उठाई और उसे मंत्रित करके वीणारव के डेरे की ओर ऊपर को उछाल दी। फिर वे

तीनों उस गायक के डेरे की ओर चले। उस मर्म को जानने वाले श्रीचन्द्र भी उनके पीछे हो लिये।

बाद में वे वहाँ जाकर गंधज्ञान से धन का अपहरण करके वापिस उसी जगह लौट आये और फिर वहाँ से नगर के बाहिर निकल गये। किसी एक मठ में पहुँचकर उन्होंने उसके पीछे की ओर एक बड़ी शिला को उखाड़ कर नीचे के भोंयरे में सब धन रख दिया। बाद में फिर उस शिला को उस पर रखकर उन्होंने बाबाओं का वेश बनाया और उस मठ में आकर सो गये। श्रीचंद्र इस क्रिया को देखकर अपने स्थान पर लौट आये।

इधर जब प्रातःकाल हुआ तो वीणारव जगा। उसको अपनी कुछ वस्तुएँ अस्त व्यवस्त पड़ी मिलीं। उसको चोरी होने का सन्देह हुआ। ज्योंहीं उसने जाकर अपना कोठा सँभाला त्योंही वह चीख पड़ा। उसके हृदय में घिग्घी सी बंध गई। उसका सर्वस्व चुराया जा चुका था! वह मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिरने को ही था, कि साहस ने उसका साथ दिया। वह सम्हल गया। दौड़ता हुआ श्रीचन्द्र के पास आ पहुँचा। महाराज! 'मेरा तो आज भी फिर सब कुछ चला गया' कहता हुआ उनके चरणों में गिर पड़ा और अपने भाग्य की निन्दा करने लगा।

यह सुनकर वहाँ पर उपस्थित, सेठ साहूकारों राजाओं और मंत्रियों के सामने कुण्डलपुर नरेश श्रीचन्द्र ने राजा जितशत्रु को धिक्कारते हुए कहा, "राजन्! आपके राज्य में बार बार चोरियां होती हैं। प्रजा को सुख नहीं है। फिर आप क्या राज्य करते हैं? जिस राजा से अपने देश का शासन भी ठीक नहीं सम्हलता। उसकी इज्जत लोगों में कैसे रह सकती है? राजा जितशत्रु ने मारे लज्जा के सिर नीचा करलिया।

श्रीचन्द्र ने सभा में एक बीड़ा रक्खा और सभी सदस्यों को सम्बोधित करते हुए बोला, "जो कोई भी व्यक्ति किसी भी उपाय द्वारा चोरों को पकड़ लेगा उसको यहाँ मिली हुई विवाह की पहरामणी में दे दुंगा।" सब लोगों ने उत्तर देते हुए कहा, महाराज! हम में से यहाँ कोई भी बीड़ा उठाने वाला नहीं है।" इस प्रकार करते धरते कुछ न बन पड़ा और इस चर्चा में ही सूर्य सिर पर आगया।

इधर सूर्यवतीजी ने पुत्र को दैनिक कार्य्यों में विलम्ब करते देखा, तो उनने कहला भेजा, "पुत्र! आज देव-पूजन भी अभी तक नहीं हुआ है और न भोजन ही हुआ है। अतः अब तुम्हें जल्दी आजाना चाहिये। क्योंकि—

या रुद्र पविनाशिनी स्मृतिहरी पंचेन्द्रियाकर्षिणी।
चक्षुः श्रोत्रललाटदैन्यकरणी वैराग्यमुत्पादिनी॥
बंधूनां त्यजनी विदेशगमनी चारित्रविध्वंसिनी।
सेयं धावाति पंच-भूत-दमनी प्राणापहर्त्री क्षुधा॥

अर्थात्-जो सुन्दर रूप को बिगाड़ ने वाली, स्मरण शक्ति को नष्ट करने वाली, इन्द्रियों को मुर्झाने वाली, आंख कान और ललाट आदि को मलिन और निर्बल करने वाली वैराग्य उत्पन्न कराने वाली, बंधुओं का त्याग कराने वाली, परदेश में ले जाने वाली, चारित्र और सतीत्व को भंग करने वाली पांच-भूतों का दमन करने वाली और प्राणों का नाश करने वाली है वह भूख बड़ी तेजी से पेट में खलबली मचा देती है।

श्रीचन्द्रने संदेश लाने वाले सेवक को संकेत से ही समझा दिया कि आज बड़ी भारी मंत्रणा हो रही है अतः मैं आनेमें असमर्थ हूँ सो तुम जाकर माताजी से अर्ज करदो कि आप सब शीघ्र ही भोजन करलें। मेरेलिये तनिक भी इन्तजार न करें। मेरा रखा हुआ बीड़ा आज तक कभी निष्फल नहीं गया। इसलिये मैं जब तक यह मेरी प्रतिज्ञा पूरी न हो जायगी तब तक भोजन नहीं करूंगा। गुणचन्द्र ने कहा, "महाराज! आपको ऐसे वचन

सहसा अपने मुख से नहीं निकालने चाहियें कारण कि न मालूम यह चोरी कितने दिनों बाद जाकर पकड़ी जावे"

यह सुनकर श्रीचन्द्र एक दम वहां से उठ खडे हुए और उन राजाओं के साथ बगीचे में जाकर पैदल ही वन विहार करते हुए उस मठ के पास जा पहुँचे। वहां पर उनने पांच छः योगियों के साथ पान खाये हुए उन तीनों चोरों को देखा। राजा श्रीचन्द्र ने मठ के सामने की चबूतरी पर बैठ कर उन सभी योगियों को अपने पास बुलाया। वे सब वहां से चले आये और आशीर्वाद देकर बैठ गये।

आप लोगों में कौन कौन योगी और कौन कौन भोगी हैं ? राजा ने पूछा राजन् ! हम लोग तो योगी हैं और आप भोगी हैं। योगियों ने उत्तर दिया। तो फिर यह पान की लालिमा आपके मुख में क्यों ? राजा ने कहा।

यह सुन उन तीनों का मुँह काला पड़ गया। महाराज का संकेत पा कर गुण चंद्र ने उन तीनों को हिरासत में लेलिया साथ के मनुष्यों ने हुक्म पाकर उस मठ के पास की शिला को उठा कर दूर फेंक दिया, उसके नीचे एक विशाल और अद्भुत भूगृह था, उसमें अपार

धन राशि भरी हुई थी। यह देख सभी श्रीचन्द्र के भाग्य, बुद्धि और परोपकारिता की प्रशंसा करने लगे।

इसके बाद श्रीचन्द्र ने उस चोरी के धन में जिस जिस का धन था उन सब को पहचान पहचान कर दे दिया। उन तीनों चोरों को राजा जितशत्रु के हवाले करके और बाकी बचे हुए धन को लेकर अपने निवासस्थान पर लौट आया।

इधर राजा जितशत्रु ने उन चोरों को खूब निर्दयता से पिटवाया, परन्तु उन्होंने लेश मात्र भी अपना अपराध स्वीकार नहीं किया। अन्त में राजा ने उनके पास चोरी से सम्बन्ध रखने वाली कुछ वस्तुएँ और कुछ चिन्ह आदि देख कर उन्हें मृत्यु दण्ड की आज्ञा दे दी। सिपाही उन्हें लेकर वध्यभूमि में शूली के पास पहुँचे।

जब श्रीचन्द्र को इस बात का पता लगा तो उनने उन चोरों को वहाँ से अपने पास बुलाया, और पूछा, कि बताओ तुम लोग कौन हो ? और तुम्हारे क्या क्या नाम हैं ? इस पर उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तब कुमार ने कहा, लोहखर ! क्या तुम मुझे नहीं जानते ? महेन्द्रपुर की सीमा में मैंने तुमको पुत्री समेत दया करके जिन्दा छोड़ दिया था। मैं अवस्वापिनी विद्या जानता हूँ।

क्या वह मुझे तुमने नहीं दी थी ?" क्या तुम रत्न खर नहीं हो ? राजा ने दूसरे से पूछा। पहले खाये हुए आम के फल तुम्हें याद नहीं हैं ? अब जल्दी बताओ यह तीसरा कौन है और इसका क्या परिचय है ?

इतना सुनते ही वे तीनों उनके चरणों पर गिर पड़े और गिड़गिड़ा कर माफी माँगने लगे। बादमें चोरों-ने अपना वक्तव्य शुरु किया, "राजन् ! लोहजंघ इस नामका एक बड़ा मशहूर चोर हो गया है। उसके तीन पुत्र हैं। एक रत्नखर, लोहखर, और वज्रखर। ये तीनों कभी कुण्डलपुर में, कभी महेन्द्रपुर में, कभी पहाड़ों में, कभी नदियों के कगारों की खोहों में निवास करते हैं। वज्रखर के पास तालोद्घाटनी विद्या थी परन्तु उसके मरने के बाद वही विद्या उसके पुत्र वज्रजंघ को प्राप्त हुई। रत्नखर को पिता ने अपना सब से छोटा पुत्र समझ कर अदृश्यगु-टिका दीथी। लोहखर मैं हूँ ही। इस प्रकार मैंने आपके समक्ष हमारा सारा वास्तविक हाल कह सुनाया है, अब आज से आप ही हमारे स्वामी हैं।"

महाराज श्रीचंद्र गुणी थे, गुणियों का आदर करते थे। उन्होंने विद्यागुण संपन्न उन चोरों को जीवन-दान किया। अपने सत्संग से उन को भी वीतराग मार्ग के अनु-

यायी बनाये। अपने प्रयाण में उन्हें भी साथ ले लिया। क्रमशः महेन्द्रपुर में पहूंच कर वहां की उस चौर गुफा से धन निकाल कर जिस का था उस को दे दिया। राजकुमारी सुलोचना के साथ बडे ठाठ से ब्याह भी कर लिया।

प्रधान मंत्री गुणचंद्र को चौदह राजाओं के साथ कांपिल्य-पुरसे सेना आदि को लाने के लिये भेजा। साथ साथ चलने वाले श्रीलक्ष्मण, सुधीराज, सुंदर और बुद्धिसागर नाम के मंत्रियों ने आगे जाकर महाराजा प्रतापसिंह को वधाई दी। उन्होंने कहा कि महाराज! आप के चिरंजीवी कुमार श्रीचंद्रजी अपनी माता भाई और रानियों के साथ आपकी सेवा में आ रहे हैं। महेन्द्र-पुर से तिलकपुर, रत्नपुर, और सिंहपुर होते हुए यहां पहूँचेगे।

इधर से गुणचन्द्र ने कुमार से कहलाया देव! आप के द्वारा छोडा हुआ गंध हाथी दूसरे के काबू में नहीं आ रहा। यह जान कर महाराज श्रीचन्द्र अकेले वहां पहूँचे। उनके प्यार भरे वीर-वर्त्तात्र को देख कर हाथी पानी पानी हो गया।

गजारूढ कुमार अपने मित्र गुणचन्द्र के साथ अपनी चन्द्रमुखी-चन्द्रलेखा आदि रानीयों को एवं राजा वीर-

वर्मा के परिवार को लेकर महेन्द्रपुर लौट आये। वहां के राजा त्रिलोचन को साथ लेकर मार्ग में आने वाले राजाओं से आदर पाते हुए वे वसन्तपुर पहूँचे। वहां का राज्य वीरवर्मा को देकर वे कुछ दिन वहां ठहरे।

पत्रों द्वारा बुलाये हुए, और स्वेच्छा से आये हुए राजा लोग वहां एकत्रित हुए। श्रीचन्द्र राजमुकुट-कुण्डल-छत्र चामर आदि राज्य-चिन्हों से अलंकृत हो कर अपने उस गंधहाथी पर सवार हुए ऐरावत—स्थित इन्द्र के समान चलते हुए तिलकपुर पहूँचे।

तिलकपुर के राजा तिलकसेन ने कुमार का भारी स्वागत किया। इधर से पुत्र का आगमन सुन कर महाराजा प्रतापसिंह अपने भारी लवाजमे के साथ कुशस्थलपुर से निकल पडे। सेठ लक्ष्मीदत्त भी राजा की आज्ञा को शिरोधार्य करके आठ व्यवहारीयों के कुटुम्ब के साथ सामान तैयार करने के लिये रत्नपुर में गया।

गुप्तचरों से पिताजी पधार रहे हैं, ऐसा जानकर श्री चन्द्रराज सारे दलबल के साथ पितृ—मिलन के लिये सामने आये दूरसे दोनों एक दूसरे के बाजों को सुनकर आनन्दित हुए। सेना की अग्रिम टुकडियों ने एक दूसरे के राज्य–ध्वजों के दर्शन किये। कुछ आगे बढने

पर कुमार की दृष्टि महाराज प्रतापसिंह के हाथी पर पड़ी। कुमार अपनी सेना को पंक्तिबद्ध बनाकर पिता का फौजी स्वागत करने के लिये, आगे बढे। महाराज प्रतापसिंह हाथी से उतर पड़े। कुमार श्रीचन्द्र ने बड़े विनीत भावसे पिता के चरणों में प्रणाम किया। पिता ने बडे प्यार से अपने वीर शिरोमणि बेटे को हृदय से लगा कर अनेकों हार्दिक भाव भरे आशीर्वाद दिये। दोनों फौजों का परस्पर में प्रेम स्वागत हुआ।

महाराज का संकेत पाकर सेवकों ने रत्नजडाउ सुवर्ण सिंहासन लगा दिया। क्षण भर में वह स्थान पारिवारिक सभा के रूप में परिणत हो गया। सिंहासन पर महाराज ने अपनी गोदी में कुमार को बिठाकर असीम प्यार किया। महारानी सूर्यवती ने भी महाराज के दर्शन कर अपनी चिर-वियोग-व्यथा को शान्त की। सब की आंखों में हर्ष के आंसू थे। हृदय गद् गद् हो रहे थे। सारी बहुओं ने अपने सास ससुर को भक्ति भाव से प्रणाम किया सबने आशीर्वाद पाकर अपने को कृतार्थ माना। जंगल में मंगल हो गया।

विजित और संबंधित राजाओं ने अपनी इज्जत के अनुरूप महाराजा की भेटें की। सब का परिचय कराया

गया। लक्ष्मण और विसारद आदि मंत्रियों ने कनकपुर और कुण्डलपुर राज्यों की भेटें अर्पण की।

कुमार श्रीचन्द्र ने अपना अपूर्व खड्ग, सुवर्णपुरुष, पारसमणि, और अनमोल रत्न, घोडों सहित सुवेग रथ गंधहाथी आदि सारी वस्तुएँ पिता के समक्ष हाजिर की।

सासुओं ने सौतों ने सैन्धी आदि सखियों ने परस्पर में एक दूसरे को नमस्कार कर यथोचित रीतिरिवाज़ संपन्न किया। एक दूसरे के कुशल समाचारों से अवगत होकर महाराजा प्रतापसिंह ने कुमार मित्र गुणचन्द्र के मुह से श्रीचन्द्र के चरित्र को वडे चाव से सुना। बहुत २ आनन्दित हुए। कुमार ने अपने छोटे भाई वरवीर को पिता की गोद में लिटा दिया। वाद में महाराज ने भी महारानी के वियोग की, अवधूत मिलन की बातें कह सुनाई। अवधूत का नाम लेते समय महाराज के हृदय में एक टीस सी चलती थी। उस ने मेरे प्राण बचाये, मैं कुछ नहीं कर सका इस बात का खेद जाहीर करने लगे।

कुमार ने हँसते हुए कहा पिताजी आपकी दया से उसका सब जगह कल्याण ही कल्याण होगा। उस का भविष्य चमक उठेगा। आप उसकी चिंता न करें।

३८

वर्तमान की अवस्था प्रायः भूतकाल के कार्यकलापों पर अवलम्बित होतीहै। उन्ही कार्य-कलापों से पैदा होने वाले सूक्ष्माति सूक्ष्मतम संस्कारों को हम भाग्य, दैव, विधि, कर्म, तकदीर और नशीब रूप से मानते हैं। उनमें जो शुभ होते हैं उन्हें पुण्य, और अशुभ होते हैं उन्हें पाप रूप मानने की परिपाटी चली आ रही है। पुण्य-पाप रूप कर्म आत्मा और जड द्रव्य दोनों के संबंध से हुआ करते हैं। दुःख, पाप–कर्मों का फल और सुख, पुण्य-कर्मों का फल माना जाता है। इन का नियंत्रण काल, स्वभाव, नियति, और पुरुषार्थ से हुआ करता है। इन्हीं को शास्त्रों में पांच समवाय नाम से बताया है। अच्छी और बुरी दोनों अवस्थाओं के कर्ता धर्ता हमारे

लिये हम खुद ही हैं। परमेश्वर खुदा या गोड़ नाम की कोई दूसरी महाशक्ति का इस के साथ कोई सीधा संबंध नहीं होता।

हमारा चरित्र-नायक कुमार श्रीचन्द्र भी अपने ही पुण्य-कर्मों से जीवन का विकास करता हुआ सुखी, और सम्पन्न हो गया था। अनुकूल काल, स्वभाव, नियति, पूर्वकृत-कर्म और पुरुषार्थ के समवाय से ही कार्य सिद्धि हो सकती है। कुछ न होते हुए भी सब कुछ बन जाने का नाम ही तो कार्य सिद्धि है।

तिलकपुर की सीमा में महाराजाधिराज प्रतापसिंह को उनकी प्रियतमा महारानी सूर्यवतीजी अपने परम प्रतापी पुत्र कुमार श्रीचन्द्रराज के साथ मिली। पिता पुत्र के उस सुखदायी मिलन से सर्वत्र आनंद ही आनंद का अनुभव होने लगा। संबंधितव्यक्तियों को उन की यथा-योग्य सेवा का सिरोपाव दिया गया। जंगल में मंगल हो गया।

उधर तिलकपुर के राजा तिलकसेन राधावेध साधना के समय से कुमार श्रीचन्द्र को चाह रहे थे। आज उन्हें पता लगा कि वे कुमार ही अपने प्रतापी पिता महाराज

प्रतापसिंह के साथ अतर्कित रूप से हमारी सीमामें आ गये हैं। उल्लसित मन से उनने भी वहां पहुँच कर महाराज से तिलकपुर आने का निमंत्रण किया। उनके अनुरोध से महाराजा अपने चिरंजीवी के साथ बडे भारी स्वागत समारोह से तिलकपुर में पधारे। तिलकसेन की राजकुमारी तिलक मंजरी ने श्रीचन्द्रराज के गले में वर-माला डाली। महाराजा प्रतापसिंह ने अपने पुत्र का विवाह बड़ी धूमधाम से किया।

इस प्रसंग में रत्नपुर से लक्ष्मीदत्त सेठ और लक्ष्मी-वती सेठानी भी वहां पर आये। कुमार ने उनको माता पिता के रूप में ही मान्यता प्रदान की। उन दोनों माताओं और पिताओं के एवं पुण्यशाली कुमार श्रीचन्द्र के हृदय में उस समय अनंत आनंद का समुद्र उमड़ पड़ा। उसी समय वहां कुमार के नानाजी दीपशिखा के अधिपति राजा दीपचंद्रदेव और सिंहपुर के स्वामी श्वसुर शुभगांग नरेश भी वहाँ आ पहूँचे। सब के मनोरथ सफल हो गये।

विवाह के बाद कुमार श्रीचन्द्रराज वहां से तिलक नरेश एवं अपने माता पिताओं के साथ रत्नपुर की ओर रवाना हुए। रास्ते में जहां पिता से प्रथम वार मिलन

हुआ था, वहां प्रियमेलक नाम का नगर बसाया । कुछ आगे बढकर समुद्र के किनारे पर अपने पिता महाराजा के नाम से प्रताप नगर बसाया । उन्हीं के नाम से सोने चांदी के सिक्के चलाये ।

इधर कर्कोटक द्वीप के स्वामी रविप्रभ का पुत्र कनकसेन अपनी कनकसेना आदि नव बहिनों के साथ समुद्र मार्ग से वहां आया । उसने महाराजा प्रतापसिंह से अपना परिचय देकर प्रार्थना की कि–देव उमा और खर्परा नाम की जोगणियों से गवाते हुए आपके प्रतापी कुमार श्री चन्द्र राज के गुणों से आकृष्ट हुई ये मेरी बहिने स्वयंवरा हो कर पिताकी आज्ञा से यहां आई हैं। हमारी इन बहिनों का विवाह यहां सम्पन्न होना चाहिये । महाराजा ने प्रसन्नता से अनुमति प्रदान की और वहीं उन कन्याओं के साथ श्रीचन्द्रराज का विवाह बड़े ठाठ से कर दिया ।

उस समय दहेज रूप में दश हजार हाथी, तीस हजार घोड़े, एक करोड़ पैदल सेना और अपरिमित सोना चांदी मणि रत्न आदि कर्कोटक द्वीप से लाई हुई सारी दहेज सामग्री कुमार को प्रदान की गई । अद्भुत गुण और सौन्दर्य शालिनी उन कन्याओं ने अपने सास श्वसुर

के पावों धोक दी। समस्त सामाजिक रीति रीवाज संपन्न हुए।

वार्ता के प्रसंग में महाराजाने उस उपकारी अवधूत की चर्चा छेड दी। कुमार कुछ बहाने से बाहर जाकर अवधूत का वेश बनाकर आगया। महाराजा अवधूत को देख कर खुश होगये। धीरे २ अवधूत ने अपनी डाढी हटाई कुमार को पहिचान कर कहा कि अरे बेटा! क्या अवधूत भी तु ही है। तेरी लीला अपरंपार है। तब उसने सारी घटना का वर्णन किया। सुनकर सारा राजन्य परिवार और अन्तःपुर दांतों तले उंगली दबाने लगा।

इस प्रकार नित नये विनोदों को करते हुए कुमार महाराज के साथ कुशस्थलपुर पधारे। पुरवासियों ने कुमार के सद्गुणों और सच्चरित्रों से प्रसन्न हो कर अनेक उत्सव समारोह किये। इस प्रकार कुशस्थलपुर में अमोद प्रमोदों का एक विशाल कार्य क्रम हो गया। महाराजा-ने एवं सारी राज-सभाने कुमार के अलौकि चरित्र को गुणचंद्र के मुख से सुन कर ये सब पूर्वकृत पुण्य-कर्मो के ठाठ हैं, कहते हुए बडा आनन्द अनुभव किया।

इधर भील्लराज मल्ल ने भी कुमार को प्रणाम किया उसे वासुतिका की रक्षा का अधिकारी बनाया गया।

राजा शुभगांग की प्रार्थना से महाराजा की आज्ञा से कुमार एक रोज सिंहपुर पधारे। गुणचन्द्र वहां साथ ही था। वहां उसके पूर्व जन्म की जन्मभूमी थी। उसे देख कर वह मूर्छित हो गया। कुमार ने उसे सावधान किया और उससे उसके पूर्व जन्म का सारा हाल सुना। सब को इस बात का पता चला कि निमित्त देखने वाला धरण ही गुणचंद्र है। इसने पूर्वभवमें तीर्थों का आराधन कर उस पुण्य द्वारा की हुई हत्या के पापसे छुटकारा पाकर इस रुप में जन्म पाया।

गुणचंद्र की पत्नी कमल श्री को भी जाती-स्मरण हो आया। मैं पहिले जन्म में धरण की पत्नी श्रीदेवी थी। दूसरे भाव में जिनदत्ता हुई, और यह तीसरा भव कमलश्री का हुआ। लोगों ने उनके चरित्रों को सुनकर तीर्थों की महिमा-परमेष्टी महामंत्र का प्रभाव मुक्त-कण्ठ-से गाया। राजा शुभगांग ने अपनी पुत्री चंद्रकला और श्रीचंद्रराज को उस समय नहीं दिया गया दहेज अपूर्व ढंग से दिया।

मातामह-नानाजी श्रीदीपचंद्रदेव के आग्रहसे दीप शिखा में कुमार की पधरावणी हुई। रानी प्रदीपावती जो कुमार की नानीजी लगती थीं उनने अपने दौहित्र कुमार

श्रीचंद्रराज का भारी लाड प्यार किया। रास्ते में पिता की आज्ञा से कुमार ने राजा कनकदत्त की राजकन्या कुमारी रूपवती से ब्याह किया।

एक दिन कुमार ने अपने जीवन का सिंहावलोकन करते हुए अपने भाई जयकुमार आदि कुमारों के कैद की बात याद कर के अपने पिता से विनीतभाव से प्रार्थना की कि देव! आप उन्हें अपराधों की माफी देकर उदार-भाव से मुक्ति दीजियें। कुमार की प्रेरणा से महाराजा ने भी उन्हें छोड दिया। वे लोग पछताते हुए महाराजा और कुमार श्रीचन्द्र के पास गये। उनको कुमार ने योग्य पद प्रदान किया। इस प्रकार समय आनन्द से बीतने लगा।



३१

संसार तप और त्याग का ही पूजारी है। जिस के जीवन में तप और त्याग की जितनी मात्रा होती है, वह उतनी ही पूजा का पात्र बन जाता है। यही बात अतीत में वर्तमान में और भविष्य में ज्ञानी पुरुषों ने फरमाई है। इसीलिये उन्हीं तप और त्याग से संबंधित पुरुषों की जीवन कथायें लोग बड़े आदर के साथ गाते और सुनते हैं।

हमारे चरित नायक कुमार श्रीचंद्रराज की लीला-पूर्ण जीवन कथा को, मानव, दानव और देवता सर्वत्र गाया करते थे।

एक दिन की बात है। विद्याधरों के स्वामी मणिचूड और रत्नध्वज अपनी महा विद्या को साधकर मेरुपर्वत के नंदन वन से लौट कर पातालनगर में चले आये।

उनको आया देख रत्नवेगा आदि बहुत प्रसन्न हुईं। रत्नवेगा ने उनके जाने के बाद जो जो घटनाएँ घटीं, और श्रीचंद्र आदि का जो आगमन हुआ वह सब उन्हें कह सुनाया। श्रीचंद्र का आगमन सुन कर उन को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्हें अपने कार्य की सिद्धि का पूर्ण रूप से विश्वास हो गया। वे दोनों शीघ्र ही अपना विमान तैयार कर के वहां से उड़े और कुशस्थल के बाहर जहाँ पर श्रीचन्द्र का पड़ाव पड़ा था वहाँ पर आकाश से उतरने लगे।

आकाश से उतरते हुए और रत्नों की कान्ति से आकाश को देदीप्यमान करते हुए उन दोनों को देख कर श्रीचंद्र सभा में सहसा उठ खडा हुआ। नीचे उतर आने पर परस्पर में प्रणाम आदि की प्रथा के पूर्ण होने के बाद वे दोनों संकेत पाकर योग्य सिंहासनों पर बैठ गये। कुछ देर बाद उन्होंने अपने आगमन का प्रयोजन कुमार को कह सुनाया। कुमार ने विना किसी आनाकानी के उनकी प्रार्थना स्वीकार करली और अपने माता पिता, मित्र, सेठ, सेठानी, अधीनस्थ राजाओं और अपनी पत्नियों समेत विमान में बैठ कर आकाश मार्ग से पाताल नगर में पहुंचे वहां जाकर आवश्यक सामग्री तैयार करके वे उन दोनों विद्याधरों के साथ वैता-

ढ्य पर्वत पर स्थित नगर के बाहरी प्रदेश में जा पहुँचा। वहाँ उसने मनुष्य आदिकों से परिपूर्ण भूखण्ड को देखा गुप्तचरों को इस बात का पता लगाने का आदेश दे कर वह एक सघन वृक्ष की छाया में विश्राम करने लगा।

कुछ ही समय बाद गुप्त चरों ने आकर सूचना दी कि राजन् ! यहाँ पर धर्म घोष सूरिजी महाराज विराजमान हैं और सुग्रीव आदि सभी विद्याधर उनका उपदेश सुन रहें हैं। इतना सुनते ही कुमार उन सब के साथ श्री गुरु माहाराज के पास जाकर वन्दना करके उचित स्थान पर बैठ गया। उस समय आचार्य महाराज उपस्थित भव्यों को तप कर्मपर श्रीचंद्र कुमार की प्रसिद्ध कथा फरमा रहे थे। उस समय उसको स्वयं वहां आया देख, वे और भी विशेष रूप से तपस्या के प्रभाव को बतलाने वाली देशना देनेलगे।

न नीचै र्जन्म स्यात् प्रभवति न रोग व्यतिकरो,
न वाप्यज्ञानत्वं विलसति न दारिद्र्य-ललितं।
पराभूति र्न स्यात् किमपि न दुरापं किल यतः।
तदेवेष्ट-प्राप्तौ कुरुत निज शक्त्या पि सुतपः॥

अर्थात्–तपस्या के प्रभाव से मनुष्य का उत्तम कुल में जन्म होता है। वह सदा नीरोग रहता है। दरिद्रता

और अज्ञान उसके पास तक नहीं फटकते। कभी कहीं पर भी उसकी पराजय नहीं होती। उसके लिये कुछ भी दुष्प्राप्य नहीं होता। अतः अपने मनोरथों को पूर्ण करने-के लिये मनुष्यों को चाहिये, कि अपनी सामर्थ्यानुसार तप करें।

तपस्या से सभी प्राणियों को सब प्रकार की सम्पत्तियां मिलती हैं। सर्वत्र उनका आदर होता है, और अन्त में वे मोक्ष को प्राप्त होते हैं। देखो! श्रीचन्द्र को तपस्या के प्रभाव से कैसा अलौकिक लाभ हुआ, श्री चन्द्र के विषय में श्रोताओं के पूछने पर उन्होंने उसके चरित्र की कुछ मोटी मोटी बातों पर प्रकाश डालते हुए कहना शुरु किया।

भरत क्षेत्र में कुशस्थल नामका एक बड़ा रमणीय नगर है। वहां पर प्रतापसिंह नामके एक प्रसिद्ध क्षत्रिय राजा राज्य करते हैं। उनकी महारानी सूर्यवती के गर्भ से श्रीचन्द्र का जन्म हुआ है। उसकी माता ने अपने सौतेले पुत्रों के भय से अपने उस नव जात शिशु श्रीचंद्र-को राजकीय उद्यान में एक शुष्कपुष्पपुंज के भीतर छिपा कर त्याग दिया था। कुल देवी का आदेश पाकर लक्ष्मीदत्त नाम का एक सेठ उद्यान में जाकर आभूषण

और मुद्रा से विभूषित उस श्रीचन्द्र को अपने घर ले आया। पति-पत्नी-ने मिल कर बड़ी धूमधाम से उसका जन्मोत्सव मनाया। वह लक्ष्मीवती की गोदी में शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह बढ़ने लगा।

इधर महारानी सूर्यवती को नवजात पुत्र के विरह में अतीव व्याकुल देख, राज्य की कुल-देवी ने रात्रि में आकर यह आश्वासन दिया कि भद्रे! दुःखी मत हो तुम्हारा पुत्र श्रीचन्द्र तुम्हें बारह वर्ष बाद मिल जायगा।

इस प्रकार प्रारम्भ से लेकर पितृमिलन तक उन्होंने उसका सारा चरित्र कह सुनाया। इसके बाद उन्होंने सुग्रीव को सम्बोधित करते हुए कहा, राजन्! देखो! यह वही श्रीचन्द्र तुम्हारे सामने विद्यमान है जिसका उज्ज्वल चरित्र मैं तुम्हारे सामने अभी कह रहा था। महाराज प्रतापसिंह, महारानी सूर्यवती, रानी चन्द्रकला और गुणचन्द्र आदि सारा परिवार यहां पर मौजूद है। यह सुन कर वहां पर उपस्थित सारी जनता ने एक साथ श्री चन्द्र को धन्य २ कहा।

बाद में कुमार श्री चन्द्र ने भी आचार्य महाराज से बड़ी नम्रता पूर्वक पूछा कि महाराज! मैंने पूर्व-भव में जिनेश्वर भगवान् द्वारा बतलाया हुआ ऐसा कौन सा

पुण्य किया था ? जिससे मुझे ये सब देवताओं से भी बढ़ कर सुख सामग्रियाँ प्राप्त हुई हैं। उसकी प्रार्थना का उत्तर देते हुए आचार्य देव ने फरमाया।

पुण्यात्मन् ! तुमने अपने पूर्व भव में ऐरवत नामक क्षेत्र में विधि पूर्वक आयम्बिल—वर्धमान तप किया था यह सारा ऐश्वर्य उसी तप के प्रभाव से तुम्हें प्राप्त हुआ है। तुम्हारे पूर्व-भव की कथा इस प्रकार है—

ऐरवत क्षेत्र के बृंहण नामके नगर में जयदेव नामके राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम जयादेवी था। बहुत से देवी और देवताओं को मनाने के बाद उनके नरदेव नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब वह शिक्षा पाने योग्य हुआ तो राजा ने शुभ महूर्त में उसी नगर के एक ख्यातनामा विद्वान् के पास विद्याभ्यास करने के लिये उसे रख दिया।

जयदेव राजा के वर्द्धमान नामका एक धनवान सेठ अभिन्नहृदयी मित्र था। उसके वल्लभादेवी नामकी पत्नी थी। उनके चंदन नामका एक पुत्र हुआ जिसे देख कर सेठ दम्पती माता—पिता ने पढ़ने लिखने योग्य हुआ समझ उसे उसी विद्वान् के पास पठनार्थ भेज दिया।

वहाँ पर राजकुमार और श्रेष्ठि-पुत्र दोनों समवयस्क और मिलनसार होने के कारण बहुत जल्दी ही परस्पर में अत्यन्त स्नेही बन गये। शिक्षा पाते हुए क्रम से वे दोनों सारी कलाओं में कुशल होगये। परस्पर में अगाधस्नेह होने के कारण उनका एक काम, एक वचन और एक चित्त था। आखिर हृदय को हरा भरा बनाने वाला यौवन भी खेलता कूदता और मचलता उनके पास आ पहूँचा। वे उसके पूरे शिकार हो गये।

इधर क्षितिप्रतिष्ठ नगर के राजा प्रजापाल ने अपनी पुत्री अशोकश्री के विवाह के लिये अपने नगर के उद्यान में एक विशाल स्वयंवर मण्डप तैयार करवाया। देश विदेश के राजा और राजकुमार निमंत्रण पाकर वहां एकत्रित होने लगे। राजकुमार नरदेव भी अपने प्रियमित्र चन्दन के साथ वहाँ जा पहुंचा। स्वयंवर में आये हुए सभी राजाओं और राजकुमारों को छोड़ कर राज-कन्या ने श्रेष्ठि पुत्र-चन्दन-के गले में वरमाला डाल दी। राजा प्रजापाल ने अपनी राज कन्या अशोकश्री का चन्दन के साथ और अपनी भानजी श्रीकांता का विवाह नरदेव के साथबड़ी धूमधाम से कर दिया। वहां से वे दोनों दहेज में मिली हुई सामग्री को और अपनी नवोढ़ाओं को साथ लेकर बड़े ठाट बाट से अपने नगर को लौट आये।

पूर्व--कर्मों के उदय से छह महीनों के बाद ही चन्दन को अपने आदमियों के साथ विदेश जाना पड़ा। वह पाँच व्यापारी जहाजों को लेकर रत्न-द्वीप में गया। वहाँ पर उसे खूब लाभ हुआ। वहाँ से कोणपुर की ओर लौटते हुए वह और उसके जहाज तूफ़ान के कारण संकट में पड़ गये। एक बहुत बड़ा जहाज टूटफूट गया, और बाकी के अलग २ हो कर कहीं के कहीं चले गये। दैवयोग से चंदन का जहाज शर्वरमंदिर नामके बंदरगाह पर आ लगा। वहाँ पर उस जहाज को मोतियों से भर कर वह घूमता घामता बारह वर्षों से कोणपुर के तट पर जा पहुँचा।

इधर जहाज के टूटफूट जाने पर जो लोग लकड़ी के लट्ठों की सहायता से पहले ही वृहंणपुर में आ पहुँचे थे। उन्होंने चंदन सेठ के जहाज डूबने के समाचार लोगों से कह दिये, ऐसे दर्द और शोक भरे समाचार सुनकर चंदन के पिता, उसके मित्र, और अशोक श्री आदि बहुत दुःखी हुए। उन्होंने कई कोसों तक के समुद्री किनारे को छान-मारा परन्तु चंदन का कहीं पता न चला। आखिर छः सात साल के बाद लोकापवाद से अशोकश्री-चंदन की स्त्री ने विधवा-वेष

धारण कर लिया, मगर उसके दिल में पति के मिलने का पूरा पूरा विश्वास था। समय बीतते क्या देर लगती है। इसी आशा में उसके बारह वर्ष व्यतीत हो गये। बारह वर्ष के बाद वहां के निवासियों को अचानक ही एक दिन चंदन के लौट आने के समाचार मिले। यह सुन कर चंदन के पिता और अशोकश्री आदि की प्रसन्नता का कोई ठिकाना ही न रहा। वे सब के सब उसके सम्मुख दौड़ पड़े। पिता, श्वसुर, मित्र, पत्नी, और पुर-वासियों को हर्षित करता हुआ और यथायोग्य दान देता हुआ वह उन सबके साथ अपने नगर वृंहणपुर में बड़ी धूमधाम से प्रविष्ट हुआ।

अशोकश्री द्वारा किया हुआ धर्म रूपी कल्पवृक्ष आज फलित हो उठा। दुःख कपूर की तरह उड़ गया मानो वह कभी था ही नहीं। अशोकश्री अपने पति के साथ बड़े आनन्द से फिर से रहने लगी।

पिता के परलोक सिधारने पर राज-कुमार नरदेव उस नगर का राजा बना। तब उसने अपने मित्र चंदन सेठ को नगर-सेठ बनादिया।

एक समय विहार करते करते कोई ज्ञानी गुरु उस नगर में आ निकले। सूचना पाते ही राजा सेठ, श्रीकांता,

अशोकश्री और अन्य पुरवासियों के साथ उनके दर्शनार्थ गया। वहाँ जाकर सब के साथ गुरुमहाराज को नमस्कार करके उचित स्थान पर बैठ गया। गुरुदेव ने धर्मलाभ का अशीर्वाद देकर धर्मोपदेश देना शुरू किया।

तक्रादिव नवनीतं, पङ्कादिवपद्म ममृतमिवजलधेः।
मुक्ताफलमिव वंशाद्धर्मः सारं मनुष्यभवात्॥ १॥

अर्थात् जिस प्रकार छाछ का सार मक्खन कीचड़ का सार कमल, समुद्र का सार अमृत, बाँस का सार मोती है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य जन्म का सार धर्म है। अतः हे भव्यात्माओं! हर तरह से धर्म का पालन करते रहो। यही तुम्हारी मनोकामनाओं को पूर्ण करेगा।

उपदेश के समाप्त होने पर राजा ने हाथ जोड़ कर आचार्यदेव से पूछा कि भगवन्! किस कर्म के प्रभाव से अशोकश्री को पति का वियोग और संयोग हुआ? इस प्रश्न के उत्तर में गुरुदेव ने कहा कि :—

राजन्! प्राणी अपने ही द्वारा किये गये शुभाशुभ—कर्मों के कारण सुख दुःख भोगते हैं। उनके लिये कोई दूसरा कर्म नहीं बाँधता।

चंदन सेठ इस भव से पहले तीसरे भव में श्रेष्ठी पुत्र था। इसका नाम सुलस था। इसके बाद दूसरे भव में यह कहीं कुलपुत्र हुआ। यह अशोक श्री उस जन्म में कुलपुत्र की पत्नी थी। इसने उस जन्म में हँसी हँसी में वियोग कराने वाला अंतराय कर्म बाँध लिया। सुलस के भवमें भी यह उसकी भद्रा नामकी पत्नी थी। उस समय भी इसको चौवीस वर्षों का वियोग सहना पड़ा। सुलस ने एक दिन के अन्तर से पाँच सौ आयम्बिल किये, और उसकी स्त्री भद्रा ने निरंतर दो बार पाँच पाँच सौ आयम्बिल किये। उस तपस्या के प्रभाव से वे दोनों स्वर्ग को प्राप्त हुए और बाद में वहाँ से चव कर भद्रा तो राजा की पुत्री अशोकश्री और सुलस चंदन सेठ हुआ है। पूर्व जन्म के स्नेह के कारण ही इसने चंदन को अपना पति बनाया है। उसी पूर्वजन्म के कर्मबन्धन के कारण ही इन दोनों का विछोह हुआ। इसने पूर्व जन्म में रस कूप में से जिस मनुष्य को बाहर निकाला था वही तुम स्वर्ग से चवकर इस भव में इसके मित्र बने हो।

आचार्य देव के इतना कह कर रुक जाने पर चंदन ने कहा, "सूरीश्वर! अगर हमारे वैसे कर्म आज मौजूद भी हैं, तो हमें बताइयें कि हमारे यह कर्म या अन्य अवशिष्ट कर्म किस प्रकार नष्ट होंगे।"

आचार्य महाराज़ ने फ़रमाया। "भव्यात्मन् ! [य]दि तू अपने सम्पूर्ण कर्मों का नाश चाहता है तो [जि]नेश्वर भगवान द्वारा बताये हुए तत्त्वों को सुन। [अ]पने पापों के क्षय के लिये शास्त्रो में बताई हुई विधि [के] अनुसार आयम्बिल वर्धमान तप कर। ऐसा करने से तेरे सारे निकाचित दुष्कर्म भी नष्ट हो जावेंगे।

गुरुदेव के कथनानुसार चंदन ने अपनी स्त्री के साथ उस तप को करना प्रारम्भ किया। उसकी देखा देखी उसके कुटुम्बियों ने, पडौसियों ने और ओर भी कई स्त्री पुरुषों ने इस तप को करना शुरू किया। दही, दूध, घृत और पक्वान्न आदि खाने योग्य स्वादिष्ट पदार्थों से भरे पूरे घर में रहते हुए भी वे दोनों उस तप में इतने तत्पर हुए कि कोई भी उन्हें उस तप से विचलित करने में समर्थ नहीं हुआ उसके मित्र नरदेव ने उनके तप की प्रशंसा की परन्तु उसने उनके दतौन वगैरह न करने पर अपने दिल में कुछ घृणा प्रकट कर नीचगोत्र का कर्म बांधा। तप समाप्त होने पर उन्होंने विस्तार पूर्वक उद्यापन आदि किये और सप्त क्षेत्रों का भी पोषण किया।

तदनन्तर पंचत्व को प्राप्त हो कर अच्युत देवलोक में चंदनसेठ इन्द्र हुआ और अशोकश्री उसी देव लोक में सामानिक देव हुई। अच्युतेन्द्र तो वहाँ से चव कर

कुशस्थल में तुम श्रीचन्द्र हुए और वह तुम्हारा सामानिक देव चव कर तुम्हारी प्रियतमा चन्द्रकला हुई। घृणा करने के कारण नरदेव भी बहुत से भव भटक कर सिंह पुर में ब्राह्मण-कुल में पैदा हुआ, नाम धरण रक्खा गया। उसी भव में उसने सिद्धाचल की यात्रा की उसके प्रभाव से वह इस भव में मंत्री पुत्र गुणचन्द्र के रूप में तुम्हारा अत्यंत प्रियमित्र हुआ है। वह तुम्हारी उपमाता था और हालिक सेवक वे दोनों पुण्य के योग से कुशस्थल में सेठ लक्ष्मीदत्त और सेठानी लक्ष्मीवती के रूप में उत्पन्न हुए। उन्होंने पूर्वभव के स्नेह के कारण ही अपने पुत्र की तरह तुम्हारा पालन किया। तुम्हारे साथ तप करने वाली वे सोलहों स्त्रियें राज-कन्याएँ हुई जो तुम्हारी प्रियतमाएँ बनीं। सुलस के भव में जो वेश्या थी वह भील-राजकुमारी मोहिनी बनी। इस प्रकार आचार्य देवने श्रीचन्द्र का सारा चरित्र कह सुनाया।

अपने चरित्र को सुनकर कुमार को जातिस्मरण हो आया। गुरु द्वारा फरमाये हुये अपने पूर्व भवों को उसने साक्षात् ज्ञान से देखा। उन चन्द्रकला आदि रानियों ने और मित्र ने भी पहले की तरह अपने पूर्व जन्मों को देखा और वे सब उस समय उन पूज्य सूरिजी महाराज की स्तुति करने लगे।

इसके बाद विद्याधरेन्द्र सुग्रीव की पुत्री रत्नवती ने भी अपने पूर्वजन्म की स्मृति के योग से परम प्रतापी श्रीचन्द्र-को अपना पति स्वीकार किया उसी समय श्रीचन्द्रने वहाँ गुरु देव के सामने रत्नचूड़ की हत्या प्रकट करके रत्नवेग आदि से क्षमा माँगी। सुग्रीव और मणिचूड़ दोनों को आपस में एक दूसरे से क्षमा मँगवा कर उनमें मैत्री करवा दी। फिर उन दोनों के साथ वह धूमधाम से मणिभूषण नगर में प्रविष्ट हुआ। वहाँ पर दक्षिण और उत्तर श्रेणि के विद्याधर राजा अपनी अपनी कन्याओं और रत्नादिकों की भेंट लाये। श्रीचन्द्र ने उनको यथायोग्य सन्मानित किया।

तदनन्तर रत्नवती रत्नचूड़ा मणिचूलिका और रत्नकांता आदि विद्याधरों की दूसरी पुत्रियों के साथ भी कुमार ने विवाह किया। उनके दहेज में उसको बहुत सी अमूल्य वस्तुएँ और आकाशगामिनी आदि विद्याएँ प्राप्त हुई। फिर सुग्रीव आदि एक सौ दश विद्याधर नरेशों ने मिल कर बड़े भारी उत्साह से बल और भाग्य में सर्व श्रेष्ठ श्रीचन्द्र को विधिपूर्वक विद्याधरों का चक्रवर्ती बनाया। बाद में उसने बड़े प्रेम और ठाटबाट से सिद्धाचल तीर्थराज की यात्रा की फिर माता-पिता, स्त्री, मित्र और विद्याधरों के साथ चक्री श्रीचन्द्र ने वैताढ्य पर बसे हुए सभी नगरों का निरीक्षण किया।

इसके वाद विद्याधरों की सेना के विमानों से आकाश को चित्र विचित्र करता हुआ, रत्नों की कान्ति से आसमान में बिजली चमकाता हुआ, सुरीले गम्भीर बाजों की आवाज़ से मेघगर्जन का भ्रम उत्पन्न करता हुआ, हाथियों के मद रूपी जल से पृथ्वी को सींचता हुआ, याचकों की दरिद्रता रूप गर्मी को दूर करता हुआ श्रीचन्द्र रूपी इन्द्र क्रमशः कुशस्थल नगर में आ पहुंचा।





सूर्य के प्रकाश ने अपनी लम्बी २ भुजाओं से अन्धकार को गर्दनियाँ दे दी हैं। कमल खिल उठे हैं। भौंरे गूंजते हुए प्रसन्नता की सुरीली तान छेड रहे हैं। कुशस्थल की प्रकृति में कुमार श्रीचन्द्र की पधरावणी से एक अलौकिक आलोक के दर्शन हो रहे हैं।

राज-प्रासाद सुंदर ढंग से सज रहे हैं। जगह २ तोरण वन्दनवारें लहरा रही हैं। स्थान २ पर कुंकुम बिखर रहा है। नगर के मुख्य २ चौराहों पर दरवाजे बन रहे हैं। उन पर रंग बिरंगे वस्त्रों की सोना चांदी के बरतनों की, हीरे पन्ने मणिरत्नों की, केले के थम्भों की औरपांच-वर्ण के फूलों की सुन्दर सजावट हो रही है। सच्चे मोतियों की झालरियां, पुष्पमालायें, मकानों के

दरवाजों पर खिडकियों पर लटक रही हैं। चारों ओर धूपदानों में दशांग धूप की लपटें उठ रही हैं। गुलाबजल के छिडकाव हो रहे हैं। जात २ के अतरों की मधुर महक दिल और दिमाग को तरोताजा कर रही है। बहुमूल्य जरकशी वस्त्रों के वितान बंधे हुए हैं। फर्शों पर मखमली कालीनें बिछी हुई हैं।

उसी प्रसंग में ठोर ठोर गाना बजाना और नृत्य के ठाठ लग रहे थे। पुरनारियाँ मंगल गीत आलाप रही थीं। सुंदर बहुमूल्य वस्त्रालंकारों से सुसज्जित स्त्री पुरुष मूर्तिमान पुण्य स्वरूप कुमार श्रीचंद्र के दर्शन करने की खुशी में इधर उधर घूम रहे थे।

इतने में तोप के धमाके होने शुरु हुए। दूर २ से इकट्ठे हुए नागरिक राजमार्ग के दोनों ओर जमा हो गये। जिनके मकान राजमार्ग के दोनों ओर थे उनकी तो खूब बन पडी। किनारे के पेड़ मकान उनके छज्जे चबूतरे कपोतपालिकाऐं दर्शकों की भीड़ से भरचक भर गई थीं। उस समय का दृश्य रंग बिरंगे फूलों से भरे एक विशाल उद्यान के समान प्रतीत होता था।

शुभ घडि आगई। कुमार श्रीचन्द्र बडी धूमधाम से नगर में प्रविष्ट हुए। किले पर सलामी की तोपें दगने

लगीं। कवि, बन्दि, चारण, भाट आदि लोग उनकी यशोगाथायें गाने लगे। सवारी राजमार्ग को शनैः शनैः पार करती हुई दुर्ग के सिंह-द्वार पर जा पहूँची। मार्ग में लोगो ने फूल वर्षाये। कन्याओं ने पीले चांवल उछाले राज मार्ग फूलों से पट गये। स्थान २ पर सधवा-स्त्रियों ने सच्चे मोतियों के स्वस्तिकों से वधा २ कर कुमार का स्वागत किया।

दरबार में पहूंच कर कुमार ने कवियों, चारणों, विद्वानों को मनचाहा दान दिया। दरबारियों ने नागरिकोंने अपने कुमार की भेटें की। महाराज प्रतापसिंह और महारानी सूर्यवती के सौभाग्य में चार चांद लग गये।

महाराजा प्रतापसिंह रत्नजटित स्वर्णसिंहासन पर जा विराजे। श्रीचन्द्रराज भी उन्हीं के श्रीचरणों में सिंहासनासीन हुए। उस समय विद्याधर–राजाओं से, राजाओं से और दरबारियों से विराजित वह राज-सभा इंद्रसभा का तिरस्कार कर रही थी।

उसी समय कुण्डनपुर के राजा अरिमर्दन एक बंदरिया को लेकर वहां आये। राजा के साथ बंदरी को देख सारी सभा चकित हो गई ! राजा अरिमर्दन ने बड़े विनीत भाव से कहना शुरु किया कि—

महाराजाधिराज ! पहिले मुझसे अज्ञात अवस्था में अपराध हो गया है महिरबानी करके उसकी माफी बख्शें ! कुमार श्रीचंद्र ने कहा–कैसा अपराध ? और कैसी माफी साफ २ कहियें ताकि पता चले।

कुमार के ऐसा पूछने पर—राजा अरिमर्दन ने हाथ जोडकर सारी घटना कह सुनाई। तब पिता की आज्ञा पाकर श्रीचंद्र ने उस वंदरीया की आंखों में काले अंजन का प्रयोग करके उसे एक रूपवती रमणी के रूप में परिणत कर दिया। सब लोग चकित हो गये।

वंदरीपना मिट जाने से राजकुमारी सरस्वती लज्जा से अपना सिर झुका कर अपने सास-ससुर के चरणों- में नमस्कार कर के चंद्रकला आदि रानियों में जाकर खड़ी हो गई। अरिमर्दन ने लाया हुआ दहेज महाराज- की सेवा में समर्पित किया। साथ ही हंसावली के साथ धोखा करनेवाले अपने कुमार चंद्रसेन की तरफ से भी पूर्णतया क्षमा चाही। महाराज ने उसे अपनी फौज में सन्माननीय पद पर स्थापित किया।

भील्लराज मल्ल की कन्या मोहिनी पितृदत्त-दहेज सामग्री के साथ अपने भीलबंधुओं को लेकर वहां आई। कुमारने उसे भी रहने को एक सुंदर महल दे दिया।

इस प्रकार सभी स्नेही–साथी—सखा और सेवक वहां आये, और अपना २ परिचय देकर महाराज द्वारा संमानित सत्कारित हुए। सारे कुशस्थल में प्रसन्नता का वातावरण छागया।

कुमार श्रीचंद्रराज ने अपने भुजबल भाग्य-बल और बुद्धिबल से सहज में ही समुद्र पर्यंत तीन खण्ड पृथ्वी-का साम्राज्य संप्राप्त किया। सोलह हजार देशों के स्वा-मियोंने अधीनता स्वीकार की। रथ हाथी घोडे और सैनिकों की अपरिमित संख्यासे अर्धचक्री के जैसे प्रभुता-सम्पन्न श्रीचंद्रराज की सर्वत्र जयजयकार होने लगी।

महाराजा प्रतापसिंह ने मौका देखकर शुभ दिन के, शुभ मुहूर्त्त में शास्त्रोक्त विधि से कुमार का अपूर्व और अवर्णनीय ढंग से महामहोत्सव पूर्वक राज्याभिषेक किया। सभी बड़े २ राजा महाराजा विद्याधर सामन्त मंत्री सेठ सेनापति आदि उस समय उपस्थित थे। कुमार श्रीचन्द्र एक छत्रधारी राजराजेश्वर की उपाधि से विभूषित हुए। चन्द्रकला को प्रधान--राजमहिषी का पद प्राप्त आ। कनकावली—पद्मश्री-मदनसुंदरी-प्रियंगुमंजरी-रत्नचूला-रत्नवती-मणिचूला--तारलोचना--गुणावली--चन्द्रमुखी--चन्द्रलेखा–तिलकमंजरी-कनकावती-कनकसेना सुलो-चना और सरस्वती ये सोलह पट्टरानियां बनाई गई।

चन्द्रावली—रत्नकान्ता और धनवती आदि रूप लावण्यवती एकसो सोलह रानियाँ हुई। चतुरा कोविदा आदि हजारों भोग-पत्नियाँ बनी।

प्राचीन पुण्यों और भोग-कर्मों की महिमा से एवं अनेक-रूपकारिणी महाविद्या से उतने ही रूप बना कर श्रीचन्द्रराज उनके साथ आनन्द पूर्वक समय बीताने लगे। सुग्रीव-विद्याधरेन्द्र को उत्तर—श्रेणि का एवं रत्नध्वज और मणिचूड-विद्याधर को दक्षिण-श्रेणि का साम्राज्य प्रदान किया। अपने जय आदि चारों भाईयों को उनके मनपसंद देशों का स्वामित्व प्रदान किया।

सर्वत्र धर्म और सुख-शान्ति का सौराज्य हो गया। उनके गुणचन्द्र बुद्धिसागर लक्ष्मण आदि सोले हजार महामात्य और अमात्य हुए। उनकी सेना में बयाँलीस हजार हाथी दश क्रोड घोड़े अडतालीस क्रोड पदातियों की बड़ी तगड़ी संख्या थी। महासेनाधिपति का पद धनंजय को दिया गया।

राजराजेश्वर श्रीचन्द्र की राजसभा-वीणारव जैसे गायकों से हरि-तारक-अंगद आदि भट्टों से सुबुद्धि जैसे विद्वानों से विराजमान थी। सर्वत्र शांति का साम्राज्य छागया। सारी पृथ्वी को अनृणी बना दी। तब सभी ज्योतिषियों ने संसार में चन्द्र संवत्सर की स्थापना की।

महाराजाधिराज श्रीचन्द्र ने हजारों जिन-मंदिर लाखों धर्मशालायें कुवे-तलाव-बावडियाँ दानशालायें बाग बगीचे नगर आदिकों का निर्माण कराया। हमेशा श्रीजिनेश्वर-भगवान की पूजा, आवश्यकादि नित्य-कृत्य, गुरु-भक्ति, सत्संग, दान शील तप और भाव रूप चतुर्विध धर्म की आराधना में अपनी शक्ति का सदुपयोग किया। सिद्धा-चल गिरनार सम्मेतशिखर आबु अष्टापद आदि तीर्थों-की संघ यात्रायें कर के जन्म को सफल बनाया।

साधर्मियों में तन-मन-धन से वात्सल्य दिखाते हुए धर्म भावना बढाई। कुव्यापारों का निषेध किया। कोई किसी को न सता सके ऐसा अभय-अमारी का ढिंढोरा पिटवा दिया।

इस प्रकार धर्म अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों को साधते हुए महारानी चन्द्रकला की कूख से उन को पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। महाराजा प्रतापसिंह ने पौत्र-दर्शन का आनंद-लाभ पाया। उसका नाम पूर्णचन्द्र रखा। दूसरी रानियों के गर्भ से भी पुत्र पुत्रियाँ पैदा हुए। इस प्रकार अनेक सुयोग्य पुत्रों से राजाधिराज श्रीचन्द्र अतीव शोभा पाये।

कुमार एकांगवरवीर भी युवावस्था को पाया। महाराजा महामल्ल की महारानी शशिकला से पैदा हुई

प्रेमकलादेवी के साथ महाराजा प्रतापसिंह ने उसका विवाह बड़ी धूमधाम से किया। इस प्रकार संपन्न परिवार के साथ महाराजा सुखपूर्वक विराजमान थे।

एक दिन वनपालक ने बधाई दी कि आज महाज्ञानी श्री-सुव्रत आचार्य महाराज पधारे हैं। महाराजा अपने पुत्र पौत्रों और अन्तः पुर की रानियों के साथ गुरुवंदना के लिये पधारे।

गुरुमहाराज श्री सुव्रत आचार्य ने धर्मलाभ के साथ सुधा-मधुर वाणी में वीतराग धर्म का विशिष्ट स्वरूप धर्म देशना में फरमाया। महाव्रत रूप सर्वविरति-साधु धर्म और अणुव्रत रूप देशविरति-गृहस्थ धर्म की सुन्दर व्याख्या की। श्रीसुव्रतमहाराज की देशना से प्रभावित हो महाराज-प्रतापसिंह महारानी—सूर्यवती नगरसेठ लक्ष्मीदत्त सेठानी लक्ष्मीवती मंत्री मतिराज आदि प्रवुद्ध हुए। परिवार की आज्ञा से संवत्सर-दान देते हुए शासन प्रभा-वना करते हुए बडे ठाठ से उन सब ने दीक्षा ली। कइयों-ने सम्यक्त्व ग्रहण किया।

अपनी २ शक्ति के अनुसार सब ने कुछ न कुछ व्रत ग्रहण किया। श्रीचन्द्र ने अपनी रानियों के साथ गृहस्थ-धर्म स्वीकार किया। श्रीसुव्रताचार्य महाराज को एवं

नवदीक्षित साधु-साध्वियों को वंदन कर के श्रीचन्द्रराज आदि अपने २ घरों को लौट आये। श्रीसुव्रताचार्य महाराज भी अपने परिवार के साथ अन्यत्र विहार कर गये।

राजाधिराज-श्रीचन्द्र का राज्य मानों धर्म का साम्राज्य था। सब को अपने २ धर्मपालन में स्वतंत्रता थी। सब के प्रति उनका समान प्रेम था। शासन की प्रभावना, अभिवृद्धि और धर्म के साथ प्रशस्त कर्मों का प्रचार उनका जीवनोद्देश्य था।

राजर्षि–प्रताप, महर्षि–लक्ष्मीदत्त, महत्तरा-सूर्यवती, साध्वी लक्ष्मीवती आदि सब उत्कृष्ट चारित्र पालन कर के अन्तिम अनशन से स्वर्गवासी हो एकावतारी हुए। उनके देहोत्सर्ग-स्थान पर बड़े २ स्तूपों की रचना की गई। पूजा का प्रबंध किया गया। राजा और रानियों ने बड़ी २ रथ यात्रायें निकलवाई। उनके सोलह सौ पुत्र-पुत्रियाँ हुई। सतरह पुत्र बडे प्रसिद्ध हुए।

बारह वर्ष तक कुमार पद में समस्त कलाओं में कुशल हुए। सौ वर्ष तक एकछत्र साम्राज्य का भोग किया। सारी प्रजा को सुखी किया। पारसमणि और सुवर्ण पुरुष के योग से उनने स्थान २ पर दानशालायें

सडकें खुलवाई और नई बनवाई। सडकों के दोनों ओर नये पेड़ लगवाये। जैन धर्म के विश्वव्यापी सिद्धान्तों का प्रचार-कीर्तिस्तंभों पर बडी २ लाटों पर गुफाओं की भित्तियों पर, अंकित कर करके-किया। शास्त्र लिखवाकर साधु-संतों को विद्वानों को भेंट किये।

'वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां'—के सिद्धान्त को स्मरण रखनेवाले महाराजाधिराज श्रीचन्द्र ने अपने छोटे भाई एकांगवरवीर को श्रीपर्वत के चन्द्रपुर का ज्येष्ठ पुत्र पूर्णचन्द्र को कुशस्थल पुर का राज्य सौंप दिया। दूसरे भी कनकसेन आदि राजकुमारों को अलग २ देशों के राज्य बांट दिये। सब को प्रसन्न कर दिया। स्वयं नव प्रकार के परिग्रह की मूर्च्छा से मुक्त होने लगे।



४१

जड़ और चेतन ये दोनों अनादि तत्त्व हैं। इन दोनों-के मिश्रण का नाम ही संसार है। संसार में चार गतियां हैं। नरक-गति और तिर्यंच-गति पाप से प्राप्त होने वाली दुर्गति कही जाती हैं, तो मनुष्य गति और देव गति पुण्य से प्राप्त होती हैं। मनुष्य गति में सम्यग्-दर्शन समग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की साधना से जड़ और चेतन में भेद पैदा हो जाता है। कर्मों के अभाव में चेतन सच्चिदानन्द रूप होकर आत्यन्तिक और एकान्तिक मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

आचार्य श्री धर्मघोष उसी एकान्तिक और आत्य-न्तिक मोक्ष के लक्ष्य को अपनाते हुए जनता में उसका प्रचार भी करते हैं। अपने साधु-परिवार के साथ एक दिन कुशस्थल के बाहरी उद्यान में उनका समवसरण हुआ।

वनपालक ने राजाधिराज श्रीचन्द्र को आचार्य श्री के आगमन से अवगत किया। सत्संग-प्रेमी महाराजा ने अपने जन परिवार के साथ आचार्यश्री के दर्शन वंदन एवं सिद्धान्त-श्रवण का लाभ लिया।

आचार्यश्री ने आत्म–गुणों का वर्णन करते हुए ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप और शक्ति–प्रयोग का विधान किया। भोग में फंसकर जीव अजीव के पास अधिक पहूंचता है, और त्याग की साधना से जीव अपने रूपको पाता हुआ परमात्मा बन जाता है। इस निरूपण को आत्मसात् करते हुए महाराजाधिराज राजराजेश्वर श्रीचन्द्र ने त्याग धर्म को अपनाने की भावना व्यक्त की। उस समय चन्द्रकला आदि रानियाँ, गुणचन्द्र आदि मन्त्रि लोग, आठ हजार नागरिक, अनेकों सेठ साहुकार, और चार हजार सन्नारियाँ भी उसी त्याग मार्ग को अंगीकार करने के लिये तैयार हुए।

बड़े ठाठ से भागवती दीक्षा का महासमारोह सम्पन्न हुआ। गृहस्थी के त्याग से अनगार-धर्म को स्वीकारते हुए सबने सर्वविरति चारित्र रूप अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अममत्व–इन पांच महाव्रतों को स्वीकार किया। गुरु-कृपा, कठोर-साधना, और निरन्तर अभ्यास

के परिणाम से द्वादशांगी के वेत्ता होकर श्रीचन्द्र राज–ऋषि आठ वर्ष तक छद्मस्थ भाव में विचरते हुए, ज्ञाना-वरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चारों घनघाती कर्मों को खपा कर निर्मल अनन्त केवल ज्ञान केवल दर्शन को प्राप्त हुए। लोकालोक के त्रैकालिक भावों को संपूर्ण रूपसे जानने देखने लगे।

उनके केवल ज्ञान का उत्सव राजाओं ने सुरासुरों-ने बड़ी धूमधाम से मनाया राजर्षि श्रीचन्द्र केवली होकर गामानुगाम विचरते हुए लोगों को धर्म-मार्ग के अनु-यायी बनाये। नव्वे हजार करीब नर-नारियों को दीक्षा देकर महाव्रतधारी साधु साध्वी बनाये। सम्यक्त्व अणुव्रत आदि नियमों को दिलाकर उनने गृहस्थों को अणुव्रती-श्रावक संघ में सम्मिलित किया। गुणचन्द्र आदि साधुओं को एवं चन्द्रकला कमलश्री आदि साध्वियों को भी केवल ज्ञान हुआ।

इस प्रकार पैंतीस वर्षों तक भव्यात्माओं को बोध देते हुए श्रीचन्द्र केवली एकसौ पचपन वर्ष की पूर्णायु को भोगकर अक्षय–मोक्षपद को प्राप्त हुए। इसी बात को शास्त्रकारों ने इस प्रकार कही है—

साहिय वास सयं जो, तिखंड-निव-सय-सेवियपयकमलो।
एगच्छत्तं रज्जं, पालइ इन्दुव्व सिरिचंदो।

कम्मट्ठ-गंठि-अद्ध-अट्ठहिं वरिसेहिं सच्छ जोगेण।
संखविय़ं जेण मुणीसो-सिरिचन्दो केवली जयउ॥
तित्थयरपासतित्थे, पणपन्नसयाउअं च पालित्ता।
सिद्धिं पत्तो जो तं, सिरिसिरिचंदं णमह णिच्चं॥
आयंबिल वद्धमाणं-महातवं वद्धमाण-सुभावेण।
सययं कुणंतु भव्वा ! लहंतु लहुयं सिवंसोक्खं॥

अर्थात्—तीन खण्ड के सैकडों राजाओं से सेवित चरण श्रीचन्द्रराज ने कुछ अधिक सो वर्ष तक एक-छत्र साम्राज्य का स्वामित्व किया। दीक्षा लेकर स्वच्छ योगों से आठ वर्ष में आठ कर्मों के आधे चार घनघाती कर्मों-का अन्त करके जिनने केवल ज्ञान पाया, एसे मुनीश्वर श्रीचन्द्र केवली की जय हो। इस प्रकार एक सो पचपन वर्ष की पूर्णायु को पालकर तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ स्वामी के तीर्थ में सिद्धि को पाये उन श्रीचन्द्र महाराज को हमेशा प्रणाम करो। हे भव्यात्माओं ! बढते हुए भावों से श्रीचन्द्रराज के जैसे आयंबिल वर्द्धमान तपको करो और जल्दी से शिव-सुख को प्राप्त करो।

श्रीचन्द्र केवली के परिवार में जो साधु साध्वी हुए उनमें से कई मोक्ष गामी, कई अनुत्तर विमानवासी देवता, और कई एकावतारी हुए। जो भवान्तर में मोक्ष जावेंगे।

गणधर श्रीगौतम स्वामीजी गणतंत्र के अध्यक्ष महाराजा चेटक प्रमुख श्रोताओं को लक्ष्य कर फरमाते हैं कि—

सेणिय-निवस्स भणिय, रायगिहे भगवया परम-गुरुणा।
जह सिरिचंदचरित्तं, तह कहियं रायवर ! तुज्झ ॥

अर्थात्—राजगृह नगरमें परम गुरु भगवान श्री महावीरस्वामी ने राजा श्रेणिक को श्रीचन्द्र चरित्र फरमाया वैसे ही हेमहाराज चेटक ! आपको मैंने कथा रूप से कह सुनाया है।

गणधर श्रीगौतमस्वामी के श्रीमुख से श्रीचन्द्र के चारू चरित्र को सुनकर राजा चेटक बड़े प्रभावित हुए और तपोधर्म की साधना के लिये दृढ–संकल्प किया।

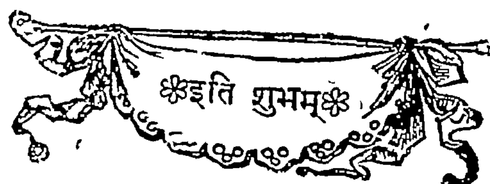
महाज्ञानी श्रीसिद्धर्षि महाराज आदि पूर्वाचार्य प्रणीत प्राकृत संस्कृत भाषा निबद्ध श्रीचन्द्र चरित्र के आधार से आचाम्ल वर्द्धमान तप की महिमा को बताने वाला श्रीचन्द्र केवली चरित्र श्री परमगुरु की परमदया से हिन्दी में लिखने का प्रयास किया है। इसमें कुछ कमी की गई हो अथ च प्रसंगवश कहीं अधिकता आगई हो तो—

मिच्छा मि दुक्कडं

सुखसागर भगवान जिन-हरिपूज्येश्वर आप।
परम-गुरु मेरा हरें, पाप-ताप मां-बाप!॥
श्री कवीन्द्र गुरु योग तें-बीकानेर सुठाम।
इस सिरिचन्द चरित्र को-पूरा किया तमाम॥
पुण्य विवेक दयामयी-पूज्य दयागुरु पास।
इन्द्रिय निधि निधि चन्द्रमित-वर्ष दीवाली खास॥
बुद्धिश्री ने यह लिखा-है यह प्रथम प्रयास।
तपकर्ता तप साधकर-पावें आत्म प्रकाश॥

ॐ तत्सत्-गुरुभ्यो नमः

विक्रम संवत् १९९५ की दीपावली के दिन बीकानेर में
पूज्य श्री दयाश्रीजी महाराज की अन्तेवासिनी
साध्वी बुध्दिश्री ने श्रीचन्द्र चरित्र को
हिन्दी भाषा में लिखकर
पूर्ण किया।



|| अर्ह नमः ||

वन्दे वीरं जिनहरि-गुरुं सर्वलोक प्रधानम् ।

* वर्द्धमान तप विधि *

शुद्धदेव, शुद्धगुरु और शुद्ध धर्म की श्रद्धा रखते हुए आत्मस्वरूप की साधना में लीन भव्यात्मा आसोज के महीने में सुद पक्ष से इस तप की शरुआत करे। प्रारंभ में कम से कम पांच ओली तो करनी ही चाहिये। एक आंबिल एक उपवास दो आंबिल एक उपवास ऐसे पांच आंबिल एक उपवास करने पर पांच ओलियां होती हैं। आगे छह आंबिल एक उपवास यावत् सौ आंबिल एक उपवास करने पर यह वर्द्धमान तप होता है। निरंतर करने पर चौदह वर्ष तीन महीने और वीस दिन लगते

हैं। इसमें ओंह्रींनमो अरिहंताणं-इस पद की वीस मालायें जपनी चाहियें। अरिहंत के बारह गुणों को याद कर के बारह नमस्कार करने चाहियें। बारह साथिये करने चाहियें। फेरी फिरते समय ये दूहे बोलने चाहिये—

इच्छारोधन रूप तप—आतम गुण अवधार।
द्रव्य भाव से कीजियें—तप है तारण हार॥
परमेष्ठी पद पांच हैं—आदि नमो अरिहंत।
सांचे मन से समरते—होवे भव भय अन्त॥

अरिहंतके १२ नमस्कार

१. अशोकवृक्ष प्रातिहार्य संयुताय श्री अर्हते नमः।
२. पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य संयुताय श्री अर्हते नमः।
३. दिव्यध्वनि प्रातिहार्य संयुताय श्री अर्हते नमः।
४. चामरयुग प्रातिहार्य संयुताय श्री अर्हते नमः।
५. स्वर्ण सिंहासन प्रातिहार्य संयुताय श्री अर्हते नमः।
६. भामण्डल प्रातिहार्य संयुताय श्री अर्हते नमः।
७. दुंदुभि प्रातिहार्य संयुताय श्री अर्हते नमः।
८. छत्रत्रय प्रातिहार्य संयुताय श्री अर्हते नमः।
९. अपायापगमातिशय संयुताय श्री अर्हते नमः।
१०. ज्ञानातिशय संयुताय श्री अर्हते नमः।
११. वचनातिशय संयुताय श्री अर्हते नमः।
१२. पूजातिशय संयुताय श्री अर्हते नमः।

हमेशा तप के दिन दुपहरी में एक बार देव-वन्दन करें। देव वन्दन में वर्द्धमान तप के चैत्य-वन्दन स्तुति और स्तवनों का उपयोग करे—

★ वर्द्धमान तप चैत्यवन्दन ★

(१)

(द्रुत विलम्बित छन्दः)

करम के बल को झट तोड़के,
सहज में तप साधन से यहां।
परम सच्चित आतम रूप हो,
जगत में जिन वीर जयी हुए।१।

विशद भाव भरा भगवान ने,
सुखद शासन सर्व हितार्थ दी।
कह दिया, जिसने सुन पा लिया,
जगत में जन धन्य वही हुआ।२।

विनय पूर्वक भाव विशेष से,
वरधमान करें तप साधना।
सुखसमुद्र बनें भगवान वे,
'हरि कवीन्द्र' नमोऽस्तु उन्हें सदा।३।

(२)

(वसंत तिलका छन्दः)

आनन्द–धाम विभुवीर—जिनेश देव,
देवाधिदेव उपदेश विशेष––दाता ।
ज्ञाता समस्त जग के उपकारकारी,
वन्दूं सदा विनय से भव भीतिहारी ॥१॥

श्रीवर्द्धमान–तप–धर्म निरूपणा से,
श्रीवर्द्धमान गुणवान सुभव्य होते ।
आयंबिलादि उपवास परंपरा से,
संख्या बढे शतक की सिरिचन्द जैसे ॥२॥

इच्छा निरोध तपका करना बताया,
श्रीवीर ने वहिर अंतर भाव भेदे ।
हो निर्जरा सुतप से भव वन्ध टूटें,
श्रीवीर की हरि–कवीन्द्र सुकीर्ति गावें ॥३॥

(३)

(हरिगीतिका छन्दः)

श्रीवर्द्धमान महान ज्ञानी चरम तीरथनाथ ने,
श्री वर्द्धमान महान तप फरमा दिया जगनाथ ने ।

आंबिल तथा उपवास से बढते हुए तप साधना,
जन जो करें संसार में उनकी सफल आराधना ॥१॥

आराधना आराधकों को मोक्ष पदका दान दे,
शुभ ज्ञान दे विज्ञान दे निज आत्म-शुद्धि विधान दे ।

पुण्य प्रधान महान तारणहार तीर्थंकर कहा,
शासन सुवासित आतमा हो कर्म को काटूं अहा! ॥२॥

कर्म कटने को ही कहते निर्जरा हैं ज्ञानिजन,
निर्जरा के साथ संवर से मिटे सारा विघन ।

विघ्न लय से आतमा परमात्म पदवी को वरें,
परमातमा की पुण्य कीर्ति हरिकवीन्द्र सदा करें ॥३॥

(४)

(दोहा-छन्दः)

समवसरण सिंहासने, बैठा श्रीभगवान ।
परिषद बारह बीच में, वन्दूं विनय विधान ॥१॥

चारों मुख से चहुँदिशे, निज निज भाषा भाव ।
उपदेशे समझें सहू-धन धन प्रभु प्रभाव ॥२॥

दान-शील-तप भावना-भेद धरम के चार।
नर-नारी आराध कर-तिर जावें संसार ॥३॥
वर्द्धमान संख्या करे-आंबिल तप जो सार।
मिटे दुःख दुर्भाग्य सब-बढे पुण्य संभार ॥४॥
श्री पारस प्रभु शासने-ज्यों सिरिचन्द कुमार।
आत्मसिद्धि पाई नमो-'हरि कवीन्द्र' तपधार ॥५॥

(५)

(दोहा-छन्दः)

वर्तमान-शासन-धणी वर्द्धमान भगवान।
वर्द्धमान तप उपदिशे-वर्द्धमान गुणखान ॥१॥
तीर्थंकर तारक प्रभु-भवजल तारण-हार।
वर्द्धमान तप साधना-समझावें सुखकार ॥२॥
इक आंबिल उपवास इक-दो आंबिल उपवास।
तीन आंबिल उपवास यों-सौआंबिल उपवास ॥३॥
करें भविक जो भाव से, ज्यों श्रीचन्द्रकुमार।
इह-पर भव सुख पा लहें सर्व सिद्धि अधिकार।४।
सुख सागर भगवान जिन हरिपूज्येश्वर वीर।
कवीन्द्र आतम रूप से गाउं जय महावीर ॥५॥

★ वर्द्धमान तप स्तुतियाँ ★

॥ स्तुति १ ॥

आतम ज्ञानी का मिटता है मिथ्यात्व,
मिथ्यात्व मिटे से प्रकटे जीवन तत्त्व।
विकसित जीवन ही होवें अरिहंत देव,
कर वरधमान तप-साधन साधू सेव ।१।
अव्रत मिटने से प्रकटे सुव्रत भाव,
सुव्रत जीवन में प्रकटे पुण्य-प्रभाव।
पुण्यातम प्राणी वरधमान तप धार,
सिद्धि गति पावें गाउं जय जय कार ।२।
भव भाव टिकाउ कष, कषाय हैं चार,
जो क्रोध मान अरु माया लोभ विचार।
कर वरधमान तप तज दो दूर कषाय,
आगम विधि सुन लो बोध बुद्धि गुणदाव ।३।
मन वच काया व्यापार योग अविरोध,
कर श्री जिन शासन में निज आतम शोध।
यातें सुख-सागर पद में हो भगवान्,
सुर गण नायक हरि गुरु कवि करें वखान ।४।

॥ स्तुति २ ॥

हैं दान शील तप भाव धरम के भेद,
आराधें उनका मिट जाता है खेद।

धर्मीजन जीवन सुखसागर भगवान,
श्री वर्द्धमान जिन वन्दूं विनय विधान ।१।
श्री वर्द्धमान प्रभु तीर्थंकर जिनवीर,
थे दीर्घ तपस्वी परमातम पद धीर ।
जिनने जीवन से दिया जगत को ज्ञान,
ज्ञानी सिद्धों को नमूं सहित बहुमान ।२।
तप की है महिमा भारी भाव प्रधान,
श्री वर्द्धमान तप करो भविक गुणवान ।
सिरिचंद नरेश्वर जैसे केवल ज्ञान,
पाओगे पावन आगम विधि विधान ।३।
दश चार वरष में मास तीन दिन वीस,
आंबिल उपवासे वढते विसवा वीस ।
जो करें निरन्तर तप भाविक नर नार,
सुर गणनायक हरि गुरु कवि करें जयकार ।४।

॥ स्तुति ३ ॥

संकट कट जावें, पावें संपति योग,
श्रीचंद्रनरेश्वर जैसे शिव सुख भोग ।
जो वर्द्धमान तप करें करावें भाव,
धन वर्द्धमान प्रभु भाषें पुण्य प्रभाव ॥१॥

तप ज्योति जानो, तप मंगल गुण धाम,
आतम गुण तप है, तप उत्तम परिणाम।
हो कर्म निर्जरा इच्छा रोधन रूप,
तप से ही होते, सिद्ध नमो निज रूप ॥२॥

चौदह वर्षों में तीन मास दिन वीस,
हो वरधमान तप करें भविक सुजगीश।
सुव्रत विधि साधन प्रवचन सारोद्धार,
समझावे जगमें जिन आगम जयकार ॥३॥

सुखसागर जगमें वर्द्धमान भगवान,
शासन में करते सविवेकी गुणवान।
जो वरधमान तप गाते कीरति सार,
सुर गण नायक हरि कवीन्द्र वारंवार ॥४॥

॥ स्तुति ४ ॥

सविवेक दयामय बोध बुद्धि दातार,
श्रीवर्द्धमान जिन विजयी जगदाधार।
शासनपति भाषें वर्द्धमान तप सार।
तपसी हो कर के वन्दूं वारंवार ॥१॥

आतम परमातम हो जाता है आप,
तप आराधन से मिटे करम संताप।

श्रीवद्र्धमान तप जो करते नर नार,
ज्योतिर्मय होते नमो सिद्ध अविकार ॥२॥

बढते भावों से वरधमान तप जोग,
आराधें उनका हो भव–भाव–वियोग।
आंबिल उपवासे सौ तक संख्या धार,
फरमावे जय जय प्रवचन–सारोद्धार ॥३॥

श्रीजिन हरि पूज्येश्वर शासन परधान,
तप वद्र्धमान नर नारी करें सुजान।
नित कवीन्द्र कीर्तित चन्द्र नरेश समान,
सुख भरते शासन देवी–देव महान ॥४॥

॥ स्तुति ५ ॥

शासने पार्श्वनाथस्य–जातः श्रीचन्द्र–केवली।
वद्र्धमान—तपोवेधा—वद्र्धमानसुखाय नः ॥१॥

एकादि—शतपर्यन्तै—राचाम्लैर्वद्र्धमानकं।
उपवासान्तरं कृत्वा–तपः सिद्ध्यन्ति तान्भजे ॥२।

तप—आत्मगुणः प्रोक्तो—निर्जरापरनामकः।
कुर्व्वतां कर्मसंक्लेशा—पगमःप्रभवेच्छिवम् ॥३॥

जिनचन्द्र–जिनाधीश—वद्र्धमानस्यशासनम्।
श्रितानां श्रीकृते नित्यं–भूयाच्छासनदेवता ॥४॥

श्री वर्द्धमान-तप-स्तवन

॥ स्तवन १ ॥

(तर्ज—सुणो चन्दाजी सीमंधर)

अरिहंत नमो वद्र्धमान तप करके भविजन भाव से ।
भवमें न भमो वद्र्धमान तप करके भविजन भाव से ॥टेर॥

आतम-गुण तप उज्ज्वल करियें,
निज कर्म-मैल सब परिहरियें ।
इच्छारोधन तप आदरियें अरिहंत नमो वद्र्धमान ॥१॥

इक इक बढते आंबिल करियें,
उपवासान्तर कर सौ भरियें ।
कर वद्र्धमान तप जय वरियें अरिहंत नमो वद्र्धमान ॥२॥

पारस प्रभु शासन अधिकारी,
श्रीचन्द्र नरेश्वर अवतारी ।
गये शिवपुर तप कर बलिहारी अरिहंत नमो वद्र्धमान ॥३॥

कर्मोदय—भय कट जाते हैं,
जय विजय निकट में आते हैं ।
सुख सभी प्रकट हो जाते हैं अरिहंत नमो वद्र्धमान ॥४॥

जब भाव कुसुम कलियां खिलती,
अंतरतम हृत्तन्त्री हिलती ।
तप से तब सुख सुषमा मिलती-अरिहंत नमो वद्र्धमान ॥५॥

सुखसागर की सीमा तप है,
तप जीवन में प्रभु का जप है।
बिन उसके सब जग गपशप है-अरिहंत नमो वर्द्धमान ॥६

भगवान वीर के शासन में,
धारो तप हो दृढ आसन में।
हो हरिकवीन्द्र परकाशन में अरिहंत नमो वर्द्धमान ॥७॥

॥ स्तवन २ ॥

(तर्ज-अवधू सो जोगी गुरु मेरा आशावरी)

वन्दों वीर प्रभु अविकारी,
शासन जय जयकारी। वन्दों टेर।
समकित धारी श्रेणिक राजा-आदिक सब नरनारी।
समवसरण में प्रभुमुख सुनते तप गुण मंगल कारी॥
वन्दों वीर प्रभु अविकारी ।१।
वर्द्धमान तप ओली साधक-होवें जो अधिकारी।
अकपट अशठ तथा अविकारी-हो जावें भवपारी॥
वन्दों वीर प्रभु जयकारी ।२।
नगर कुशस्थलपुर के स्वामी-नामी श्रीचन्दराजा।
तप कर त्रिभुवन ताजा होकर-सारे आतम काजा॥
वन्दों वीर प्रभु जयकारी ।३।

ो जाती विपती संपतियां, दुःख भी हों सुख-सारे।
ाप ज्योति जीवन में होती, भटके न भव-अंधियारे।
वन्दों वीर प्रभु जयकारी ।४।
ुखसागर भगवान महोदय शासन सुखद बताया।
हरि कवीन्द्र यश गाते हर दम पार परन्तु न पाया ॥
वन्दों वीर प्रभु जयकारी ।५।

वर्द्धमान तप-बृहत्स्तवन

(दूहा)

ओं अर्हं के ध्यान--से-वद्‌र्धमान हो भाव।
वद्‌र्धमान तप भाव से-फैले पुण्य प्रभाव ॥
वर्तमान शासन पति-वद्‌र्धमान भगवान।
फरमावें जगजीव को—मोक्ष हेतु परधान ॥
अष्ट करम-दल बल टले-अष्ट परम गुण हेत।
अष्टम अंग विशेष में-वद्‌र्धमान संकेत ॥
तप ज्योति संसार में, जीव सुज्योति स्थान।
तप ज्योति को प्रकट कर, पावो पद कल्यान ॥
श्रेणिक महाराजा प्रति-वद्‌र्धमान भगवान।
फरमावें तप कीजियें-ज्यों सिरिचन्द महान ॥

ढाल--१

(तर्ज-जिया बेकरार है नैया मझधार है)

तप से बेड़ा पार है तप ही तारणहार है।
सुनलो भवि प्राणी तप-जगमें जय जयकार है॥

हो गणधारी श्री गौतम स्वामी
शासन पति अनुगामी हो शासन पति अनुगामी हो
वैशाली के समवसरण में उपदेशे अभिरामी हो

तप से बेड़ा पार है ।१।

हो परम उपासक चेटक राजा
गण शासक गुणखाणी हो गण शासक गुणखानी हो।
परम गुरु पद वन्दन करके,
सुने सुधामय वाणी हो सुने सुधामय वाणी हो ।तप।

हो करम काठ को भेदनहारा,
तप ही तेज कुठारा हो तप ही तेज कुठारा हो।
क्षमा सहित जन जो कर पावें,
तप मंगल श्रीकारा हो तप मंगल श्रीकारा हो ।तप।

सब तप में आंबिल तप जानो,
विघन घनाघन टारे हो विघन घनाघन टारे हो।

वर्द्धमान भावों से करते,
श्रीचन्द समसुखकारे हो श्रीचन्द समसुखकारे हो ।तप।
हो एक से लेकर सौ तक चढते,
उपवासान्तर करना हो उपवासान्तर करना हो ।
वर्द्धमान तप पूरण होते,
सहजे शिव सुख वरना हो सहेजे शिव सुख वरना हो ।
हो आतम का गुण तप है पावन
जीवन उज्ज्वल कारी हो जीवन उज्ज्वल कारी हो ।
सुविहित सद्गुरु गम विधि पाकर
आराधो अधिकारी हो आरोधो अधिकारी हो ।तप।
हो चेटक राजा सविनय पूछे,
कौन हुआ सिरिचन्दा हो कौन हुआ सिरिचन्दा हो ।
फरमावें श्री गौतम स्वामी
सुनो चरित सुखकंदा हो सुनो चरित सुख कंदा हो ।तप।

ढाल—२

(तर्ज—गज़ल—भिखारी बनके आयाहूँ)

वही जन धन्य हैं जगमें-तपस्या भाव करते हैं ।
क्षमा का भाव धरते हैं-नहीं जो क्रोध करते हैं ।टेर।
कुशस्थलपुर नगर स्वामी-प्रतापीसिंह राजा थे ।
सती सूरजवती रानी-कँवर श्रीचंद ताजा थे ।वही।

करम से भाई हो शत्रु-करम से शत्रु हो भाई।
कँवर श्रीचंद के भी तो-करम से शत्रु थे भाई।वही
विकट संकट निकट में हो, प्रकट हो किन्तु पुण्याई।
नही फिर दुःख होता है, समझलो सार हे भाई।वही
जनमते राजघर छूटा-परंतु दुःख ना पाये।
तपस्या जोर से कीथी-सदा वे सुख ही सुख पाये।वही
वणिक घर में बढे थे पर-रहे रजपूत तेजस्वी।
कँवर श्रीचन्द्र थे जगमें-यशस्वी खूब ओजस्वी।वही
तपस्या के प्रभावों से-भरा था भाव जो भारी।
उसी के योग से उन को-मिली चन्दरकला नारी।वही।
बढे धन से बढे जन से-बढे सनमान से भी वे।
बढे भावों से तप करके-हुए थे केवली भी वे।वही।
प्रभु पारस के शासन में-हुए थे जो महाभागी।
उन्हीं की कीर्तियाँ गाते, भविक जन भावना जागी।वही।
तपस्वी की सदा जय हो, तपस्वी आप निर्भय हो।
तपस्या जो करें उनके, करम के क्लेश भी लय हो।वही।

ढाल--३

वर्द्धमान तप कीजियें, वर्द्धमान धर भाव।
वर्द्धमान गुण प्राप्ति ही, वर्द्धमान पद दाव॥

(तर्ज-तेरे पूजन को भगवान बना मन मंदिर०)

भावें श्रीगुरुगौतम—स्वाम, तपस्या से सुख होय तमाम ।
तपस्या गुरुगम विधिविधान, करो अध्यातम हो कल्यान ॥
बाहिर के शत्रु मिटजावें, अंतर के शत्रु हट जावें ।
जगत यह मित्र रूप बन जावे, तप की महिमा महा महान ।भा०
तपस्या द्रव्य-भाव दो भेद, करते टारे सारे खेद ।
प्रकटता जीवन भाव अभेद, निजातम गुण है यह तप जान ।
तपस्या तत्व निर्जरा मानी, समझो सेवो सद्गुरु ज्ञानी ।
भवमें भटकें वे आसानी करें तप तपसी का अपमान ।भा०।
आंबिल वर्द्धमान तप करते, श्रीचंदजैसे वे सुख वरते ।
आतम उज्ज्वल गुण से भरते, विचरते आतम लब्धिनिधान
सुखकर वीर प्रभु की वानी, आतम परमातम पद दानी ।
चेटक नृप सुनते विनय विधानी, करते वन्दन विकसित प्रान।
आतम सुखसागर भगवाना, होता जिन हरि पूज्य प्रधाना ।
तपपद धारक वर प्रणिधाना, गावें कीर्ति कवीन्द्र महान ।भा०।

कलश

इम वद्र्धमान जिनेश शासन भाव भासन साधना,
तप वर्द्धनाम विशेष करते आत्मगुण आराधना ।
उनकी समुज्ज्वल कीर्तियाँ विस्तार से गाया करें,
सुकवीन्द्र साधुभाव से तप भावना भाया करें ।



इस प्रकार दूसरे भी वर्द्धमान तप सम्बन्धी चैत्यवंदन स्तवन स्तुति गाये जा सकते हैं। तपस्या के दिन सुबह साम प्रतिक्रमण करना चाहिये गुरुवंदन देववंदन करना चाहिये। कषायों और वासनाओं से परे रहना चाहिये। धर्मध्यान में समय बीताना चाहिये। भगवान की द्रव्य भाव से पूजा करनी चाहिये। पारणे के दिन साधर्मी वात्सल्य करना चाहिये। यथाशक्ति दर्शन ज्ञान चारित्र में आत्मा को लगानी चाहिये। इससे आत्मा परमात्म पद को प्राप्त होजाता है।

॥ इति श्री वर्द्धमान तप विधिः ॥



